तीर्थंकर

।। भक्तामर स्तोत्र विशेषांक ।। जनवरी १९८२ ।। वर्ष ११ ।। अंक ९ ।।

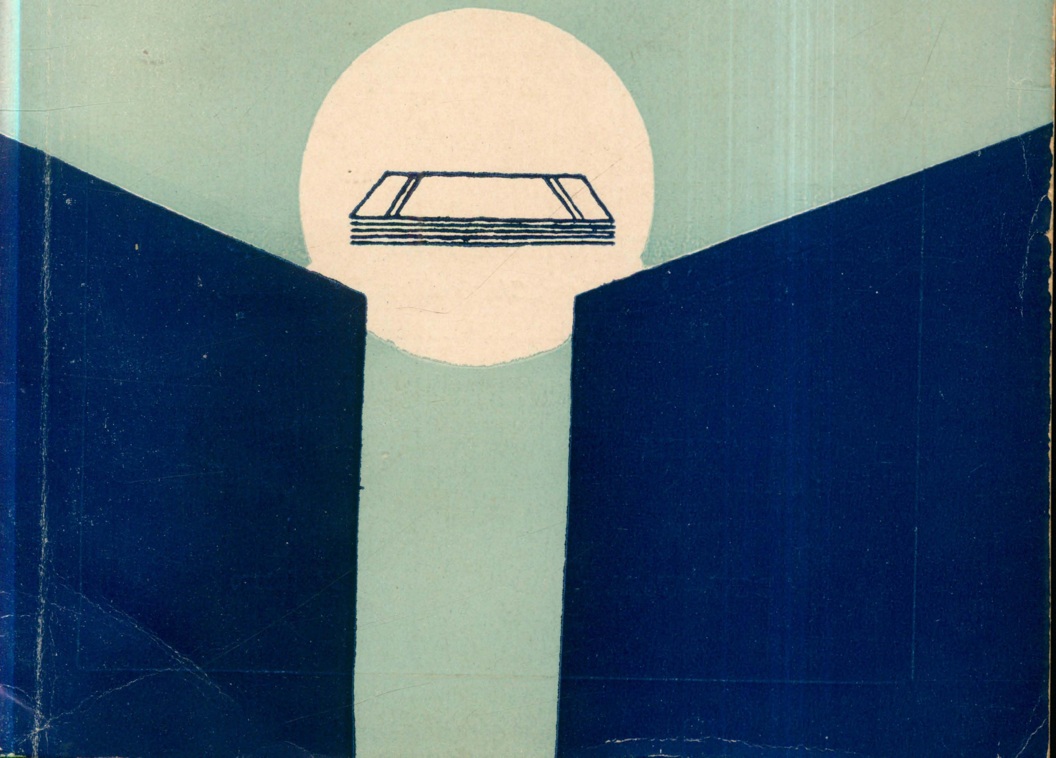

KNOW WELL ABOUT THE RAW MATERIALS YOU USE

WHETHER IT IS :
- ○ CAUSTIC SODA
- ○ SODA ASH
- ○ CHLORO-SOLVENTS
- ○ SODA BICARB
- ○ AMMONIUM BICARBONATE
- ○ CALCIUM CHLORIDE
- ○ UPGRADED ILMENITE
- ○ SALTS, LIQUID BROMINE.

PRODUCED BY US :

OUR TECHNICAL SERVICE DEPARTMENT WILL HELP YOU PRODUCE QUALITY PRODUCTS.

PLEASE WRITE TO :

Dhrangadhra Chemical Works Ltd.

'NIRMAL' 3rd Floor, 241 Backbay Reclamation,
Nariman Point, BOMBAY-400 021

Gram : SODACHEM
Telex : 011-2362

Phones: 234330, 234278, 234427, 230743

DCW—Working to a "CHEMICAL" future

तीर्थंकर

विचार मासिक

सद्विचार की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन

भक्तामर स्तोत्र विशेषांक

वर्ष ११; अंक ९; जनवरी १९८२
माघ वि. सं. २०३८; वी. नि. सं. २५०८

संपादन : डॉ. नेमीचन्द
प्रबन्ध संपादन : प्रेमचन्द जैन
आकल्पन : संतोष जड़िया

वार्षिक शुल्क : बीस रुपये; प्रस्तुत अंक : इक्कीस रुपये
आजीवन : एक सौ इक्यावन रुपये; विदेशों में वार्षिक : सत्तर रुपये

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर-४५२ ००१, मध्यप्रदेश
दूरभाष : 5804

नईदुनिया प्रिंटरी, बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग, इन्दौर-९ से मुद्रित

भक्तामर प्रणत मौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय चित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

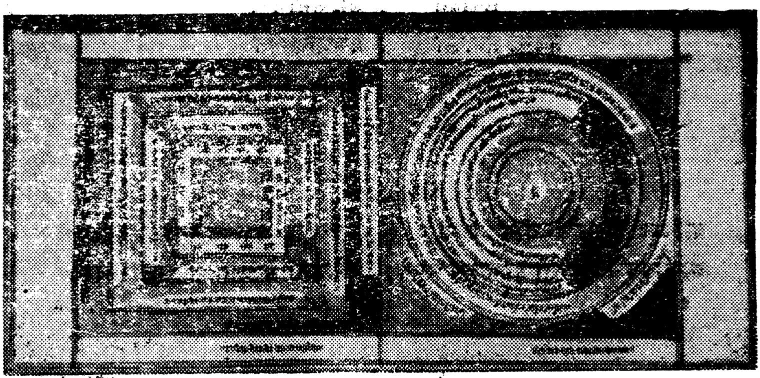

© सर्वाधिकार सुरक्षित, हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर

क्या / कहाँ

एक कालजयी स्तोत्र – संपादकीय ५

पाँच कविताएँ : संकल्प; समर्पण; हाँ, मैं; शक्ति दो; एक ही धुन –
– दिनकर सोनवलकर ९

स्तोत्र : ऋत की सरिता–मुनि रामकृष्ण ११

जैन स्तोत्रों का रसास्वाद – प्रा. जनार्दन भाई दवे १४

वीतरागा भक्ति – गणेश ललवानी १७

भक्तामर स्तोत्र: प्रतीक-चित्र, मूल, पद्यानुवाद, गद्यानुवाद, ऋद्धि, मन्त्र, प्रभाव, अन्वय + अर्थ, यन्त्र-चित्र २१-११९

श्लोक (१) पृष्ठ २४, श्लोक (२) २६, श्लोक (३) २८, श्लोक (४) ३०, श्लोक (५) ३२, श्लोक (६) ३४, श्लोक (७) ३६, श्लोक (८) ३८, श्लोक (९) ४०, श्लोक (१०) ४२, श्लोक (११) ४४, श्लोक (१२) ४६, श्लोक (१३) ४८, श्लोक (१४) ५०, श्लोक (१५) ५२, श्लोक (१६) ५४, श्लोक (१७) ५६, श्लोक (१८) ५८, श्लोक (१९) ६०, श्लोक (२०) ६२, श्लोक (२१) ६४, श्लोक (२२) ६६, श्लोक (२३) ६८, श्लोक (२४) ७०, श्लोक (२५) ७२, श्लोक (२६) ७४, श्लोक (२८) ७६, श्लोक (२८) ७८, श्लोक (२९) ८०, श्लोक (३०) ८२, श्लोक (३१) ८४, श्लोक (३२) ८६, श्लोक (३३) ८८, श्लोक (३४) ९०, श्लोक (३५) ९२, श्लोक (३६) ९४, श्लोक (३७) ९६, श्लोक (३८) ९८, श्लोक (३९) १००, श्लोक (४०) १०२, श्लोक (४१) १०४, श्लोक (४२) १०६, श्लोक (४३) १०८, श्लोक (४४) ११०, श्लोक (४५) ११२, श्लोक (४६) ११४, श्लोक (४७) ११६, श्लोक (४८) ११८।

भयहर/नमिऊण स्तोत्र – विद्याधर जोहरापुरकर १२१
भक्तामर स्तोत्र : पद्यानुवाद-सर्वेक्षण – अगरचन्द नाहटा १२६
राजस्थान में 'भक्तामर स्तोत्र' की लोकप्रियता – डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल १२९
शत-शत तुम्हें प्रणाम (कविता) – बाबूलाल जैन 'जलज' १३४
'भक्तामर स्तोत्र' : बहिरंग और अन्तरंग झाँकी – कन्हैयालाल सरावगी १३५
भक्तामर की यशोपताका (कविता) – राजमल पवैया १४०
जैन भक्ति : स्वरूप और सार्थकता (बातचीत - एक)
–एलाचार्य मुनि विद्यानन्द/डॉ. नेमीचन्द जैन १४१
भक्तामर स्तोत्र : डगर भक्ति से मुक्ति तक (बातचीत - दो)
–मुनि जयन्तविजय 'मधुकर' / डॉ. नेमीचन्द जैन १५२
जैन भक्ति-मार्ग – पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री १५९
वन्दना (कविता) – बाबूलाल जैन 'जलज' १६६
एक श्लोक : सत्तर पद्यानुवाद (एक रोचक छानबीन)
प्रस्तुति : पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद' १६७
'–मौलिमणिप्रभाणाम्' यात्रा मूलाधार से सहस्रार तक – गणेश ललवानी १८३
भक्तामर-यात्रा-कथा – डॉ. प्रेमसुमन जैन १८४
भक्तामर में आत्मदेव की स्तुति – पं. नाथूलाल शास्त्री १८७
समणसुत्तं-चयनिका – डॉ. कमलचन्द सोगानी १९१
धर्मस्थल-परिशिष्ट १९३
कसौटी (पुस्तक-समीक्षा) २०९
समाचार-परिशिष्ट २१३

चित्र-सूची

काव्य-यन्त्र; संख्या १४ : पृष्ठ १२८ के सामने
काव्य-यन्त्र; संख्या २६ : पृष्ठ १२८ के सामने
काव्य-यन्त्र; संख्या २८ : पृष्ठ १२९ के सामने
काव्य-यन्त्र; संख्या ३२ : पृष्ठ १२९ के सामने
श्लोक-प्रतीक संख्या ३ : १८२ ; गणेश ललवानी

एक कालजयी स्तोत्र

कबीर की एक पंक्ति है–'धुबिया जल बिच खड़ा पियासा'। इस स्तोत्र के बाँचने/घोखने/ पाठ करने वालों पर यह शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है। हमें नहीं मालूम कब से हम इस स्तोत्र का अनवरत पाठ करते आ रहे हैं, किन्तु नहीं जानते कि इसकी गहराइयाँ क्या हैं, गूढ़ताएँ क्या हैं, और यह कि स्तोत्रकार का इसकी रचना के पीछे क्या उद्देश्य है? सही है कि इसे आचार्य मानतुंगसूरि ने स्वान्तःसुखाय रचा था, किन्तु बात इतने पर ही खत्म नहीं है, वह इससे आगे, बहुत आगे है।

धोबी तालाब के तट पर कपड़े पछीत रहा है, उन्हें निर्मल कर रहा है, किन्तु स्वयं की अशुद्धियों का ख्याल उसे नहीं है। कपड़े के साफ होने से भला क्या किसी का मन उजला/साफ हो जाता है? इस संदर्भ में कबीर की एक और पंक्ति मन-मस्तिष्क के फेरे देने लगती है–'मन ना रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा। आसन मारि मंदिर में बैठे, ब्रह्म छाँड़ि पूजन लागे पथरा।' संत कवि कहना चाहता है कि जब तक साधना को हम मन से नहीं जोड़ते, उसे केवल तन पर छोड़ देते हैं तब तक उसका कोई स्वस्थ नतीजा सामने नहीं आता। भक्ति को लेकर कबीर की ही एक पंक्ति है–'भक्ति का मारग झीना रे। साधन के रसधार में, रहे निशिदिन भीना रे। राग में सुत ऐसे बसे जैसे जल में मीना रे।' भक्ति का रास्ता सूक्ष्म है। वहाँ नखशिख समर्पण चाहिये। जैसे जल के प्रति मछली की अनन्य प्रीति है, वैसी विरल अविरल प्रीति जब तक अपने आराध्य के प्रति नहीं बनती, कुछ हो नहीं पाता।

यही बात लागू होती है भक्तामर-जैसे कालजयी स्तोत्र के पाठकर्ताओं पर। वे उसे पढ़ते हैं, किन्तु उसकी सार्थकता के तट तक नहीं पहुँच पाते। यह जाने बिना कि स्तोत्र अस्तित्व में कैसे/किन स्थितियों में आया, लगभग डेढ़ हज़ार वर्षों के दीर्घ कालान्तर में उसमें क्या जुड़ा, क्या कम हुआ; उसे कौन-कौन से युगों से हो कर गुज़रना पड़ा। वक्त का धुआँ तैर कर जब हम मानतुंगसूरि की कारयित्री प्रतिभा तक अपनी पहुँच बनाते हैं, तब कहीं जाकर हमें बहुत-से रहस्यों की अधिकृत सूचना मिलती है।

एक कालजयी स्तोत्रकार के सम्बन्ध में काल-निर्णय की चर्चा उतनी ही व्यर्थ है, जितना आकाश फटने पर थेंगले लगाना, खरगोश के सिर पर सींग खोजना। जिस स्तोत्र ने काल को जीत लिया और जो भक्ति/अध्यात्म/दर्शन के क्षेत्र में

निर्द्वन्द्व/निःसंकोच/अभीत खड़ा है, उसके बारे में समय या रचयिता के एकाधिक होने की बहस अर्थहीन और असंगत है, कोई मतलब नहीं रखती।

यों मानतुंग क़रीब एक दर्ज़न हुए, किन्तु इससे 'भक्तामर स्तोत्र' की रसवत्ता या गुणवत्ता पर शायद ही कोई असर पड़ता है। पण्डित/विद्वान् बहस में बीत जाता है, किन्तु भक्त आनन्द-विभोर हो उठता है। कभी ज्ञान में से भक्ति आविर्भूत होती है, तो कभी भक्ति में से ज्ञान; कौन जाने किसके लिए कौन क्षण क्या सिद्ध हो; जो नहीं जानते और निष्काम चित्त/अहैतुक मन से स्वयं को आराधना में डाल देते हैं, वे मृत्यु का अनायास ही जीत बैठते हैं/मृत्युंजयी हो उठते हैं।

'भक्तामर स्तोत्र' का जितना-जितना परिमन्थन हम करते हैं, उतना-उतना मर्मबोध हमें होता है। भक्तामर मात्र जिन-भक्ति का आधार स्तोत्र नहीं है अपितु वह जैनधर्म/दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को भी हमारे सम्मुख पूरे सामर्थ्य के साथ पेश करता है। स्तोत्रकार ने आरंभ और मध्य में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है, जो समग्र स्तोत्र को जैनाध्यात्म के मूल से जोड़ देती है। मसलन 'सम्यक्' शब्द को हम लें। यह शब्द संपूर्ण स्तोत्र में दो बार प्रयुक्त है और बड़ी महत्त्व की स्थिति में प्रयुक्त है। प्रथम श्लोक में कवि ने कहा है: 'सम्यक्प्रणम्य जिन-पादयुगम्'। प्रणाम मानतुंग को असली करने हैं, मात्र दिखावे में सिर नहीं झुकाना है। असली प्रणाम अर्थात् तन-मन दोनों की अपूर्व संयुक्तता में से आविर्भूत प्रणाम। जब हम जानते हैं कि हम किसे, क्यों और कैसे प्रणाम कर रहे हैं; हमारा झुका हुआ मस्तक किन चरणों में है, तब कहीं प्रणाम की सार्थकता बनती है। 'सम्यक्' जैनों का एक बुनियादी विशेषण है। 'तत्त्वार्थसूत्र' का प्रथम सूत्र है: 'सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। 'सम्यक्' यहाँ भी है। सम्यक् दर्शन/सम्यक् ज्ञान/सम्यक् चारित्र/सम्यक् प्रणाम; इस तरह भक्तामर स्तोत्र के 'सम्यक्' शब्द को जब हम जैनदर्शन की अन्तरात्मा (सम्यक्त्व) से जोड़ कर देखते हैं तब अधिक उपलब्ध करते हैं।

यही शब्द २३ वें श्लोक में फिर आया है, जहाँ भक्त की सम्यक् प्रणति ने मृत्यु को चुनौती दी है। वह कहता है कि तुम्हारे सम्यक् आराधन में मृत्यु को जीतने का रहस्य छुपा हुआ है। श्लोक-पंक्ति है—'त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं'; यानी तुम्हें ठीक-ठीक उपलब्ध कर मृत्यु को भी जीता जा सकता है।

यह मृत्यु को जीतना क्या है? क्या सारा काव्य इस कालजयता की ओर उत्तिष्ठमान नहीं है? क्या भक्तामर स्तोत्र के माध्यम से मानतुंगसूरि ने हमें मृत्यु से आगे निकल जाने का मार्ग नहीं बता दिया है? क्या वे लोग ही हमें मृत्युं-जयता की डगर नहीं दिखाते रहे हैं, जिन्होंने स्वयं मृत्यु को अतिक्रान्त कर लिया है? इस तरह 'भक्तामर स्तोत्र' मृत्यु पर विजय-पताका फहराने के मन्त्रबोध का

कालजयी काव्य है। 'सम्यक्' का प्रयोग विलक्षण है और हमारे जीवन को एक नया मोड़/अभिनव उत्थान देने वाला है। दर्शन के साथ तो 'सम्यक्' पहले से ही जुड़ा हुआ था, भक्ति के साथ उसे जोड़ कर आचार्यवर ने वह सब कर दिया है, जो और-और लोग करना लगातार चूकते रहे हैं।

कुआ जितना ऊँडा होता है, जल उसका उतना ही मधुर, निर्मल और विश्वसनीय होता है। जल की विमलता, मिठास और शीतलता कुए की गहराई पर निर्भर करती है। स्तोत्रादि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। इनमें आप जितने गहरे जाएँगे, स्वानुभूति की मिठास और वैमल्य उतने ही अधिक आपकी अंजलि में सिमिट आयेंगे। 'भक्तामर' का हर श्लोक एक गहरा कुआ है। इसमें आप जितने गहरे अपना चित्त-पात्र दर्शन की डोर से बाँधकर डालेंगे उतना ही निर्मल/मीठा जल आपको मिलेगा। मानतुंग ने जिस निर्मलता से श्लोक-सृष्टि की है यदि उस/उतनी, गहरी/निष्कलुष/पतित-पावनी/निष्काम भूमिका पर बैठ कर हम रसा-स्वाद लेंगे तो अनायास ही जीवन के ऐसे किसी तुंग शिखर पर जा पहुँचेंगे जहाँ प्रकाश के अलावा कुछ होगा ही नहीं। 'सही पहुँच, सही गन्तव्य' के सूत्र पर हमें, वस्तुतः, चलना होगा ताकि हम अपनी संपूर्ण यात्रा निर्बाध संपन्न कर सकें।

प्रश्न केवल पृष्ठभूमि का ही नहीं है, बल्कि 'भक्तामर स्तोत्र' की बनावट को समझने का भी है। लोग अक्सर इस ओर ध्यान दिये बिना ही अपने क़दम उठाये चलते हैं, अतः न तो स्तोत्र की महत्ता को वे समझ पाते हैं और न ही इससे कोई लाभ ले पाते हैं।

सहज ही मन में उठता है कि रचयिता ने वसन्ततिलक वृत्त (सिंहोन्नता उद्धर्षिणी, मधुमाधवी इस वृत्त के अन्य नाम हैं) को ही 'भक्तामर स्तोत्र' के लिए क्यों चुना? इतने सारे वृत्त/छन्द (मनोरम, हरिलीला, प्रहरण कलिका, अनन्द, वासन्ती) उसके सामने थे तो फिर उसने इस वृत्त को ही क्यों चुना? १४ अक्षर वाले इस वृत्त में ऐसी कौन-सी खूबियाँ हैं, जिनकी ओर रचयिता का ध्यान बरबस गया है?

पहली खूबी यह है कि वसन्ततिलक शक्वरी जाति का वृत्त है। शक्वर कहते हैं बलीवर्द, बैल, वृषभ को। भगवान् आदिनाथ का लाँछन बैल है। भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश का प्राण वृषभ है। वृषभ का सम्बन्ध शिव से भी है। वह न्याय, धर्म, और सत्कर्म का पर्याय शब्द भी है। लगता है आचार्य मानतुंग का ध्यान इन तथ्यों की ओर अवश्य गया है।

दूसरा चमत्कार सुनिये। इस वृत्त में १४ अक्षर हैं, जिन्हें 'तगण भगण जगण जगण गुरु गुरु' के क्रम में संयोजित किया गया है। 'ज' मोक्ष, गति, कान्ति विषय का प्रतीक है; 'त' अमृत का; 'भ' भ्रम का – इस तरह अमृत से आरंभ होकर

भ्रम-विध्वंसन करता हुआ दुगने वेग से मोक्ष-गौरव की ओर जाने वाला यह वृत्त है; कहीं इसीलिए तो मानतुंगसूरि ने इसे नहीं चुना है ? और देखें। वसन्ततिलक में ७ लघु और ७ गुरु अक्षर हैं। बेहद अच्छा संतुलन है। न छोटे को शिकायत, न बड़े को। इस तरह वृत्त के हर चरण में विष को बुहार कर अमृत इस तरह बरसाया गया है कि मोक्ष, कहें मोक्षमार्ग, अनायास सामने आ खड़ा हुआ है।

स्तोत्र के एक श्लोक में १४×४=५६ अक्षर हैं अर्थात् पूरे स्तोत्र में २८८८ अक्षर हैं। अब आप इस अक्षर-संख्या का चमत्कार देखिये। २ के अंक से हर ८ का गुणा कर दीजिये, ४८ श्लोक आपके सामने आ खड़े होंगे। छोड़िये इसे भी। दूसरा श्लोक लीजिये। इसमें 'प्रथमं जिनेन्द्रम्' की स्तुति का संकल्प है। आठवें श्लोक को लीजिये, जिसमें स्तोत्रकार का प्रखर आकिंचन्य-बोध तो प्रकट हुआ ही है, भक्ति की महिमा भी अपनी सर्वोत्कृष्टता में अभिव्यक्त हुई है। सवाल आधेय का उतना नहीं है, जितना आधार का है। पानी की बूंद कमलिनी के पत्ते पर मोती बनी है, इसमें पानी की बूंद का भला क्या, प्रश्न तो कमलिनी के पात की स्निग्धता/अनुरक्तिपूर्ण विरक्ति का है। कोई भी सांसारिक कमलिनी के पात की बूंद तब बन सकता है, जब वह संसार में होकर भी संसार में न हो। संसार में आप हों भी और संसार में तब भी न हों, ऐसे में ही आपकी क्षणभंगुरता को एक विशिष्ट आभा मिल पाती है। यह सब भक्ति की महिमा तो होगी ही, जीने की एक विशिष्ट शैली भी होगी।

इसके बाद १६ वें श्लोक पर आइये। इसके प्रथम शब्दोच्चार के साथ ही आपका ध्यान उस दीप की ओर चला जाता है जो आपकी काया में आठों याम पूरी अखण्डता में बल रहा है। यह दीपक तीनों लोकों को उजागर करने वाला है। आप हैं ऐसे दीपक, मैं हूँ ऐसा दीपक, वे हैं ऐसे दीपक। ध्यान उस परम आराध्य की ओर तो जाता ही है; किन्तु यह है वीतरागा भक्ति जिसमें ध्यान 'उस ओर, इस ओर, दोनों ओर' पूरी अप्रमत्तता में जाता है। उस ओर से प्रत्यावर्तित ध्यान जब इस ओर आता है तब फिर एक ऐसा दीया अपनी परम ज्योति में प्रज्वलित दीख पड़ता है जिसमें न तेल है, न बाती है, न काजल है। इस तरह इस श्लोक में वर्णित दीपक उस परम ज्योति का परम प्रतीक है जो अन्तिम सत्य है।

इसके बाद लें २४ वाँ श्लोक जिसमें गागर में सागर समा गया है। इसमें १५ संबोधनों/अभिधानों के माध्यम से आचार्य मानतुंग ने जहाँ एक ओर अपनी पूर्ववर्ती दार्शनिक मान्यताओं का अनेकान्तात्मक शैली में स्मरण किया है, वहीं आत्मा की अनन्त शक्ति को भाषा के तल पर समझाने का यत्न भी है। यदि ४८ वें

(शेष पृष्ठ २१५ पर)

संकल्प

पछताता तो हूँ
मगर सज़ा नहीं देता
अपने आपको—
शरीर को/मन को/

हमेशा हमेशा के लिए
मिटा नहीं पाता

मन के सन्ताप को।
अचेतन के पाप को।
वितृष्णा से

मुँह तो फेरता हूँ
मगर तोड़ नहीं पाता
निरर्थक एकरसता को।

डरता ही रहता हूँ
अंधेरे में छलाँग
लगाने से

बचता ही रहता हूँ
अनजानी दिशाओं में जाने से।

मुझमें इतना संकल्प भरो—
कि इस जड़ता को

टुकड़े-टुकड़े कर सकूँ
ऐसा साहस दो—
कि खतरों से लड़ते-लड़ते ही
मर सकूँ।

—दिनकर सोनवलकर

समर्पण

अपनी जड़ों से कटकर
भला कैसे हो पाऊँगा
हरा-भरा ?

नहीं मिलेगी जब
प्राणों को ऊर्जा
तो कैसे फूटेंगे
सृजन के अंकुर

कैसे खिल पायेंगे फूल
रंग-गन्ध-भरे ?

आँसू-भीगे सुरों से
सींचता हूँ जब माटी को
तभी तो लगते हैं
रस-भरे फल

रचना की डाल पर;
समर्पण की प्रेरणा ही
लगाती है टीका
अभिव्यक्ति का
कविता के भाल पर।

हाँ, मैं

हाँ,
मैं धार्मिक हूँ—
दीवारों/वर्गों/
सम्प्रदायों/रूढ़ियों के विरुद्ध
उठता है मेरा हाथ—

अन्याय मिटाते हुए
मैं चलता हूँ
क़दम-दर-क़दम
पीड़ित और दुखी के साथ।

हाँ, मैं आस्तिक हूँ—
हर मनुष्य की
मूलभूत अच्छाई में
अटल है मेरा विश्वास
निर्भय, विनम्र

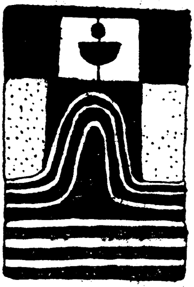

मैं खुद जाता हूँ
सबके पास ।

सबकी आँखों में
मेरा ही प्रतिबिम्ब
झलकता है;

हर आदमी के लिए
मेरे मन में
स्नेह का समुन्दर
मचलता है ।

शक्ति दो

चरणों में पड़ा हूँ ।
इतने दिन तक
अपनी काबलियत पर इतराता
दुनिया से लड़ा हूँ;
इस मुग़ालते में

खुद को डाले हुए—
कि यार, अक्लमन्दी में
मैं ही सबसे बड़ा हूँ ?

मगर आज
थक गये पाँव मेरे
उलटे पड़ने लगे दाँव मेरे ।
अब
सूझती नहीं कोई राह
ज्योति क्षीण होती है—
आह—

आज
फिर तुम्हारे द्वारे खड़ा हूँ
चरणों में पड़ा हूँ—
भक्ति चाहे ना दो ।

अपनी आस्था के लिए
लड़ने की शक्ति दो—
सबके दुख में जुड़ने की
सहज आसक्ति दो !

एक ही धुन

जैसे कोई कंजूस
धन का लोभी
हर समय
बस फायदे पर निगाह रखता है;
चाँदी-सोने की माया के पीछे
जीता है/मरता है ।

वैसे ही
तुम्हारे मन की हर पुकार
पहुँचनी चाहिये
प्रभु के कानों तक;

तुम्हारी आत्मा का
हर प्रणाम
समर्पित होना चाहिये
आराध्य के चरणों का ।

हर धड़कन की हो
एक यही धुन
कि रोम-रोम गाये
'राम' के गुन !

स्तोत्र : ऋत* की सरिता

जब मनुष्य अपने से बाहर संसार में चला जाता है, तब उसे रास्ता नहीं मिलता, वह भटक जाता है; किन्तु यदि वह बाहर से भीतर चला आये तो उसे रास्ता मिल जाता है। स्तोत्र मनुष्य को इसी ऋत का संकेत करते हैं।

□ मुनि रामकृष्ण

स्तुत्य पुरुष के प्रशंसात्मक पद्य-वाक्य स्तुति का रूप धारण कर लेते हैं। स्तोत्र अथवा स्तुति संस्तुत पुरुष की आत्मा के दिव्य प्रभाव की निर्मल अनन्त धारा है, जो निर्झर बनकर संसृति के कूलों पर प्रवाहित होती रहती है। इसी निर्झर के प्रशान्त कूलों पर आ कर मनुष्य अनादिकालीन अज्ञान-जन्य सन्ताप-ज्वाला बुझाता हुआ आत्मदर्शन की प्रशान्त अवस्था तक पहुँच जाता है। संस्तुत की तरह स्तुति-कर्ता भी निर्वाण का ऋत प्राप्त कर लेता है।

स्तोत्र स्तुत्य पुरुष की आत्मोपलब्धियों का प्रतिबिम्ब है। स्तोत्र के माध्यम से स्तुति-कर्ता स्तुत्य का सान्निध्य प्राप्त करता है—उसे अत्यन्त दुःखान्तक स्थिति तक पहुँच जाने का मार्ग मिल जाता है। जब मनुष्य अपने से बाहर संसार में चला जाता है, उसे रास्ता नहीं मिलता, भटक जाता है। मनुष्य बाहर से भीतर चला आये तो रास्ता मिल जाता है। स्तोत्र मनुष्य के लिए इसी ऋत का संकेत करते हैं – 'लेट मी सिट बाइ दी साइड फॉर ए मोमेंट ऑनली' —टैगोर

(क्षण-भर के लिए तुम्हारे सन्निकट बैठने का इच्छुक हूँ। इसके लिए मुझे तुम्हारी अनुमति चाहिये।)

महारण्य में परिभ्रमण करते हुए को किसी से मार्ग-निर्देश मिल जाए, तो वह उसे एक उपलब्धि मानता है। जिससे मार्ग-निर्देश मिला, उसके प्रति कृतज्ञ भी हो जाता है। कृतज्ञता की प्रतीति में यह मार्ग-निर्देशक का गुणानुवाद भी करने लग जाता है। स्तोत्र इसी उपकार की प्रतिक्रिया है। जब अन्धकार का आवरण हटाता हुआ सूर्य आकाश-मार्ग से अपनी किरणें कमलों पर प्रसारित करता है, तब वे अपने सुप्त दलों को विकसित करते हुए वृत्रहारि सूर्य का उपकार की भाषा में गुणानुवाद करते प्रतीत होते हैं। ऐसा क्यों है? यह प्रकृति है, स्वभाव है। स्तोत्र की भाषा भी उपकार की विशेष प्रतीति है – प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

प्रकृति से स्पन्दित उपकृत मनुष्य के मन में एक स्फोट आता है, जिससे वह स्तुत्य को अपना आराध्य बना लेता है और अपने चुने हुए श्रद्धा के शब्द-पुष्पों से गुणानुवाद करता हुआ उन्हें अर्चना में अर्पित करता है; अतः स्तुत्य की प्रतिदिन की अर्चना आराधक की प्रतिदिन की प्रक्रिया अथवा आचरण बन जाती है।

* सत्य, औचित्य, मोक्ष, उंछवृत्ति।

जो ऋत अर्चना के द्वारा स्तुतिकर्ता के आचरण में अवतरित होता है, उसका स्फोट काव्य की भाषा में किया जाता है; इसीलिए भक्तामर आदि तीर्थंकरों के स्तोत्रों के लिए काव्य-भाषा का प्रयोग किया जाता है। काव्य-भाषा कवि की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। इसी के द्वारा अपनी अनुभूतियों का, मनोभावों का वह ऐसा सम्प्रेषण करता है कि वे ही भाव दूसरों में भी समुद्भूत हो जाते हैं। सामान्य व्यक्ति भाषा को जिस रूप में पाता है, उसी का प्रयोग करता है, किन्तु कवि मनीषा के द्वारा, साधना के द्वारा ऐसी भाषा की कल्पना करता है, जो विशिष्ट होती है, भावोत्पादक और प्रभावोत्पादक होती है और जिस के द्वारा रस-विशेष की सृष्टि होती है। अर्थ को रमणीय बनाने की शक्ति काव्य-भाषा में ही होती है। इसी हेतु से ऋत-मन्दाकिनी को मनुष्य तक सम्प्रेषित करने के लिए स्तोत्र-निर्माताओं ने काव्य-भाषा के औचित्य को स्वीकृत किया। ऋत का काव्य-भाषा में ही स्फोट होता है, इसके लिए महान् कवि मिल्टन की काव्य-भाषा-विषयक प्रशस्ति प्रस्तुत की जाती है– 'पोएट्री कम्स डाउन टू जस्टीफाइ द वे ऑफ गॉड टू मैन ऑन अर्थ' (काव्य आकाश की वह सरिता है, जो भूतल पर उतर कर ऋत के औचित्य को भूतार्थ करती है।)

भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्र श्रमण-परम्परा के श्रद्धा-केन्द्र हैं। ये मनुष्य को कहाँ ले जाते हैं? शोध का प्रश्न है। स्तोत्र-रचयिताओं का देवता ऋत है। वही उनका स्तुत्य है। वह ऋत दुःखातीत है, वीतराग है। स्तोत्रों में जिस स्वरूप की व्याख्या हुई है, वे वीतराग थे, दुःखहीन थे और वे थे जो उत्तीर्ण हो गये थे। ऐसे ऋत और स्वरूप का नामकरण तीर्थंकर शब्द से हुआ। तीर्थंकरों की स्तुति-ब्याज से स्तोत्रों में ऋत के स्वरूप की व्याख्या हुई है। तीर्थंकर स्वयं-बोधि-प्राप्त थे। इनका प्रकाश अपना था – दूसरे का नहीं था। अपनी यात्रा के लिए आप दीपक बने। उस आलोक में जिस ऋत के दर्शन हुए, उसका स्वरूप था – सत्य, शिव और सौन्दर्य। ऋत के अन्तिम बिन्दु पर इनका सत्य अनन्त हो गया। शिवत्व अनन्त हो गया। सौन्दर्य अनन्त हो गया। स्तोत्र इन्हीं चार धाराओं का पवित्र सङ्गम है। यही ऋत आत्मा है।

आत्मा स्तोत्रों का प्रतिपाद्य है। स्तोत्र आत्म-विषयक पूरा दर्शन है। अन्धकार में भटकते हुए मनुष्य को दिशाबोध मिले, इसीलिए ऋत का प्रतिपादन करने वाले स्तोत्रों की रचना हुई। इनसे मनुष्य को दर्शन की दिव्यदृष्टि मिलती है। अतृप्ति के दुःख को दूर करने के लिए दर्शन का समाधान मिलता है। विश्व में अनन्त सम्पदा होने पर भी मनुष्य अतृप्ति के दुःख का अनुभव कर रहा है। जिस ज्वाला से वह दग्ध हो रहा है; उसी से त्राण माँगता है। यह आत्म-विस्मृति है–

अज्ञान है। जब तक यह रहेगी, मनुष्य जलता रहेगा। इसी अविद्या के अन्धकार में वह अनन्त इच्छाओं के दु:ख का अन्त नहीं कर पाया। अन्जलि-गत जल बिन्दु-धारा बन कर निकल जाता है। हाथ खाली हो जाते हैं। अर्जित विशाल सम्पदा भी देखते-देखते अदृश्य हो जाती है। मनुष्य के हाथ खाली हो जाते हैं। मनुष्य के हाथ संसार आया, चला गया। जो आज है, कल नहीं है – वह संसार है। अत: अनन्त इच्छाओं का मार्ग छोड़ देने के लिए, दिशा-परिवर्तन के लिए, मनुष्य को ऋत का ज्ञान कराना आवश्यक हो गया –

'ऋतं वाव दीक्षा' (ऋत से मनुष्य दीक्षित होता है) –उपनिषद्।

ऋत आत्मा प्रभुसत्ता है। जब सत्ता बाहर ब्रह्माण्ड में आसक्त हो जाती है, तो इस दीपक का प्रकाश बुझ जाता है। जब बाहर से हट कर अपनी ओर चली आये, तब यह दीपक जल उठता है। अज्ञान, जो अन्धकार का प्रतीक है, उसे मिटाने के लिए मनुष्य का आत्माभिमुख होना जरूरी है। यही आत्मानुभूति है। दीपक के जलते ही अन्धकार हट जाता है। आत्मानुभूति का दीपक जलते ही आत्म-विस्मृति-जन्य अन्धकार मिट जाता है। ज्वालाएँ शान्त हो जाती हैं।

वेदान्त-सम्मत भागवतधारा के आगमों में ब्रह्म-साक्षात्कार के उपायों की चर्चा हुई है। वहाँ भी 'सोऽहमस्मि' इत्याकार अखण्डाकार विद्या-वृत्ति से अविद्या का आवरण हट जाने से आत्मा निरावृत्त और स्वयं-प्रकाश हो जाती है—इस तरह विद्या और अविद्या की चर्चा की गयी है। यह प्रत्यावृत्ति-रूप उपासना है; अर्थात् मुमुक्षु स्व-प्रकाश-रूप विद्या की ओर लौट आता है। स्तोत्रों में इसी प्रत्यावृत्ति-रूप उपासना का दिशा-बोध मिलता है। स्तुति-कर्ता को आराधना में जो ऋत स्तोत्र में व्यक्त हुआ, वह उसे अपने ऋत-हेतु उपमान बना लेता है। जैसे, किसी आरण्यक पुरुष से गौ उपमान के द्वारा किसी को 'गौरिव गवय:' वाक्य से गो-सदृश गवय-पशु—जंगल की गौ – का बोध हो जाता है, आराधक को भी अपने ऋत आत्मा का बोध हो जाता है। मनुष्य ऋत से दीक्षित हो जाता है। उसकी प्रवृत्ति बदल जाती है। उसका पौरुष बदल जाता है। ऋत की दीक्षा से मनुष्य ऋषि बना, योगी बना। योगी ऋतानुगामी हो जाता है। उसके लिए संसार अनृत है। योगी उसे छोड़ कर वनों में चला जाता है। ये लोग वन के एकान्त-शान्त आश्रम में ऋत के अनु-सन्धान में लग गये। ऋत पर जो स्वर्ण-पात्र आवृत था, उसे समाधि के सत्पौरुष से उतार फेंका और वे सत्य, शिव, सौन्दर्य के उसी पवित्र सङ्गम पर आकर खड़े हो गये, जिसका दिशा-संकेत स्तोत्रों से मिलता है। □

—प्रा. जनार्दन भाई दवे

जैन स्तोत्रों का रसास्वाद

कुछ स्तोत्रों में दार्शनिकता का पुट अधिक है, तो कुछ में हितोपदेश है; लेकिन अधिकांश भावभक्ति के अन्तःस्रोतों से परिपूर्ण हैं। कई स्तोत्र मान्त्रिक माने गये हैं, जिनके श्लोक अनेक उपद्रवों से रक्षा पाने में विशिष्टाराधन के योग्य माने गये हैं।

स्तोत्र शब्द 'स्तु' धातु जिसका अर्थ स्तवन करना, स्तुति करना होता है, से बना है; इसलिए स्तोत्रों में भक्त अपने इष्टदेव की स्तुति करता है। लेकिन भक्ति बिना स्तुति भला कैसे हो सकती है? और भक्ति में अनुराग का होना अनिवार्य है। वैदिकों ने तो ईश्वर का अस्तित्व माना है, इसलिए उन्होंने भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा **सा परानुरक्तिरीश्वरे** ईश्वर में परमानुराग का नाम भक्ति है। जैन दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व तो माना नहीं गया है, फिर भी जिन्होंने अपने ही आन्तर शत्रुओं पर विजय पा कर ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य की आराधना करके, परम वीतराग बन कर पूर्वजन्मों के लक्षावधि कर्मों के परिणामों को सहन करते-करते नये कर्मों की जड़ों को पूरी तरह उन्मूलित करके श्रेष्ठतम कैवल्य की आराधना कर अर्हंत पद को पा लिया है, वैसे तीर्थंकर भगवन्तों का आश्रय लेना और चूंकि तीर्थंकर सब-के-सब अशेष अपरिग्रही हैं फिर भी उनकी शरण में जाने से उनकी आराधना से रत्नत्रयी की प्राप्ति में सरलता होना और पाप-ताप-सन्ताप का नष्ट होना जैनियों के लिए बिल्कुल स्वाभाविक है; इसलिए जैन स्तोत्रों में भी तीर्थंकर भगवन्तों के प्रति परानुराग होना भक्ति ही है।

वैष्णव सम्प्रदाय के एक अन्य आचार्य ने भक्ति की जो दूसरी व्याख्या दी है वह जैनों के लिए भी पूर्णतया यथार्थ है, यह है **माहात्म्यज्ञानपूर्वकस्तु सुदृढो सर्वतोऽधिकोऽनुरागो भक्तिः** अपने इष्ट के माहात्म्य का ज्ञान हो जाने से उनके ही ऊपर सबसे अधिक एवं तीव्र दृढ़ानुराग भक्ति है। गतानुगतिक भक्ति करने वाले स्तोत्र-रचना कर नहीं सकते हैं। जिन्हें अपने इष्ट की महिमा का अनुभव हो चुका है और जिनका चित्त अपने इष्ट के स्वरूप, गुण, स्वभाव, सामर्थ्य, अनुग्रह-कातरता आदि पर पूर्णतया अपना उत्सर्ग करने चला है, चित्त चित्त न रह कर एक रसद्रव बन कर अपने इष्ट की ओर दौड़ पड़ा है उनकी ऐसी भावविह्वल समर्पित दशा में जो भीतरी वाक्स्रोत फूट निकलता है, वही स्तोत्र होता है।

तीर्थंकर भगवन्तों के जन्मकल्याणक के अवसर पर देवाधिदेव सुरेन्द्र भी भावविभोर होकर स्तुति करता है तो ऐसी स्थिति में स्तोत्रों का आदि उद्गम

ढूँढ़ना व्यर्थ है। जैन साहित्य में अनेक सहस्रनाम स्तोत्र, प्रात:स्मरण स्तोत्र, सुप्रभातम् स्तोत्र, तीर्थंकर भगवन्तों के स्तुत्यष्टक, चैत्यवन्दना, चतुर्विंशतिकाएँ, कल्याणक और समवसरण के विपुल स्तोत्र उपलब्ध हैं। कुछ स्तोत्रों में दार्शनिकता का पुट अधिक है, तो कुछ में हितोपदेश है; लेकिन अधिकांश भाव-भक्ति के अन्त:स्रोतों से परिपूर्ण हैं। कई स्तोत्र मान्त्रिक माने गए हैं और अनेक उपद्रवों से रक्षा पाने में उनके श्लोक विशिष्टाराधन के योग्य माने गये हैं। एक बात और भी है कि **पूजात् कोटिगुणं स्तोत्रम्** – पूजन से स्तोत्र-पठन का फल कोटिगुण माना गया है तिस पर भी 'सा जिह्वा या जिनं स्तौति' जिह्वा की सफलता तो अर्हंतों की स्तुति में है। और तीर्थंकरों की तो महिमा ही ऐसी अनूठी है कि स्तुति किये बिना कैसे रहा जाए।

कविवर आचार्य मानतुंग तो इसलिए कहते ही हैं कि–

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्रचारु कलिकानिकरैक हेतु: ॥–भ. स्तो. ६

(मैं यद्यपि हूँ तो अल्पज्ञ, और विद्वानों के उपहास तुल्य भी मैं हूँ, फिर भी आपकी ओर बढ़ी हुई यह मेरी भक्ति ही मुझे आज आपका महिमा-ज्ञान कराने पर तुली हुई है सो क्या करूँ? वसन्त में मधुर कुहू-कुहू करने वाली कोयल की शक्ति तो आम्र-मञ्जरी के रसास्वाद से आयी है।) श्लोक के उत्तरार्द्ध में वर्णानुप्रास एवं शब्दानुप्रास का संगम बहुत सराहनीय है।

महाकवि धनञ्जय 'विषापहार स्तोत्र' में एक सुन्दर अर्थान्तरन्यास उपस्थित करते हुए कहते हैं–

तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादे: ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे–
नैकापि निर्याति धुनी पयोधे: ॥–वि. स्तो. १७

(हे भगवम्, यद्यपि आप अशेष अपरिग्रही हैं, आपके पास से फिर भी बहुतों के मनोरथों की संपूर्ति ऐसी सरलता से होती है, जो बड़े-बड़े धनेश्वरों से भी नहीं हो पाती। जैसे पर्वत पर तो जलाभाव है फिर भी नदियां वहीं से निकलती हैं, जलसंग्रह करने वाले समुद्रों से नहीं।)

जिनवरों की महिमा स्वयंसिद्ध है। ब्रह्मादि देवों को तीर्थंकरों से दोष वाले

बताकर तीर्थंकरों का गौरव स्थापित करना नहीं है ऐसा बताते हुए महाकवि धनञ्जयजी क्या ही सुन्दर कहते हैं–

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा
तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम्।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव
स्तोकापवादेन जलाशयस्य।। –वि. स्तो. ११

(वे ब्रह्मादि देव दोषरहित हों या दोषवान, उनके दोष-कथन में तुम्हारी गौरव-गाथा नहीं है, आप स्वतः प्रौढ़गुणी हैं। विशाल समुद्र की महिमा हे प्रभो! जलाशय की तुच्छता बताने से सिद्ध नहीं होती।)

भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति के सामर्थ्य को पूरा-पूरा जानने वाले श्री कुमुदचन्द्राचार्य प्रकट करते हैं–

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः।। –क. म. स्तो. १५।

(हे जिनेश! जिस तरह तीव्र अग्नि की ज्वालाओं के प्रभाव से धातुएँ अपना पूर्व पाषाणरूप को छोड़कर स्वर्णादि में परिणत होती हैं, वैसे ही आपके ध्यान योग के प्रभाव से संसारी जीव क्षणमात्र में संसारी शरीर को छोड़कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाता है।)

स्वामी समन्तभद्रजी की उक्ति से हम समाप्त करते हैं जिसमें उनकी भक्तिपूर्ण अनन्यता के शिखर पर आरूढ़ हो कर बोल उठी है–

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते
हस्तावंजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रेक्षते।
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरोनति परं सेवेदृशी येन ते
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती! येनैव तेजः पते।। –देवागम स्तोत्र।

(हे भगवन्! आपके मत में या आप ही में मेरी परम श्रद्धा है, स्मृति भी आपको लक्षित करके बनी रही है, मैं अर्चन भी आप ही का किया करता हूँ, नित्य प्रति में अञ्जलिबद्ध हो आपको वन्दन करने में व्यस्त हूँ, मेरे कान आपकी कथाएँ सुनने में लगे हैं, नेत्र आपके दर्शन में टकटकी लगाये हुए हैं, मेरा जो बड़ा व्यसन है वह आपकी स्तुति-गान का है, मस्तिष्क आपकी चरण-वन्दना में नित्य निरत है–ऐसी जो मेरी ये सब अनन्य सेवा है जिससे कि मैं स्वयं को बड़ा ही पुण्यवान एवं तेजस्वी मान रहा हूँ वह सब हे तेजराशे! आपकी ओर मेरी प्रवणता का ही परिणाम है और कुछ नहीं है। □□

वीतरागा भक्ति

लोग प्रश्न करते हैं कि हम जैनों के भगवान् या ईश्वर तो वीतराग हैं वे हमें कुछ दे नहीं सकते; अतः उनमें अनुराग कैसा ? भक्ति कैसी ? कैसे उससे प्रेम करें ?

□ गणेश ललवानी

ईश्वर के प्रति अनुराग को साधारणतया हम भक्ति कहते हैं।

जो अनुराग भव-बन्धन का कारण माना गया है, उसे ही जब हम ईश्वर में अर्पित करते हैं तो वही मुक्ति का कारण बन जाता है।

अनुराग जीवों का सहज भाव है; अतः भक्ति भी सहज है। पंचम आरे में जबकि जीवों के आयु, बल, वीर्यादि सभी कम होते जाते हैं, तब यदि हम भक्ति को ही ईश्वर-प्राप्ति (आत्मोपलब्धि) का एकमात्र साधन मानें तो वह अत्युक्ति नहीं होगी।

कहा भी तो है–'कलौभक्तिः' अर्थात् कलियुग में भक्ति ही एकमात्र साधन है।

भक्ति को जैन सम्प्रदाय ने ही नहीं अपितु सभी सम्प्रदायों ने अपनाया है।

नारद भक्ति की संज्ञा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–'सा तस्मै परम प्रेमरूपा' भगवान् में परम प्रेम ही भक्ति है (नारद सूत्र, अ : १, सू. : २)।

'सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात्'–निरोधरूपा होने से भक्ति में कामना नहीं रहती (नारद सूत्र, अ : २, सू : ७)।

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा'–भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठतर है (नारद सूत्र, अ : ४, सू : २५)।

जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूँ कि ईश्वर के प्रति अनुराग भक्ति है; अतः प्रीति इसकी आदि है, प्रीति इसकी मध्य है, प्रीति इसकी समाप्ति है। इसे प्राप्त कर जीव सर्वभूत के प्रति प्रेम-भाव प्राप्त कर द्वेष-रहित हो जाता है। इस प्रीति से कोई काम्य वस्तु प्राप्त नहीं होती; इसीलिए कर्म और ज्ञान योग को जबकि केवल साधन माना जाता है तब वहाँ भक्ति को साध्य और साधन उभय-रूपा माना जाता है।

भक्ति इसलिए साध्य है कि विषयों में हमारा जो अनुराग था उस अनुराग को हमने पूर्णतः ईश्वर में लगा दिया है और हम वही अर्थात् ईश्वर बन जाते हैं या बनने का प्रयास करते हैं।

मुझे विद्यापति का वह पद याद आ रहा है जहाँ उन्होंने लिखा है :

अनुक्षण माधव-माधव सोंगरिते
सुन्दरी भेली मधाई ।

(हर क्षण माधव (कृष्ण) का स्मरण करते-करते सुन्दरी (राधा) भी माधव बन गयी ।)

यह ध्यान की चरम स्थिति है । राजयोगी जिस समाधि को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा से प्राप्त करता है, भक्त उसे केवल ईश्वर-अनुराग से ही प्राप्त कर लेता है ।

अनुराग-त्याग बहुत कठिन है; फिर अनुराग-त्याग से एक प्रकार की शुष्कता भी आ जाती है; किन्तु हाँ, अनुराग को ईश्वर में अर्पित कर देना सहज है ।

योग-दर्शन भी इस बात को स्वीकार करता है । तभी तो कहता है–'ईश्वर प्रणिधानात् वा' ईश्वर में प्रणिधान करने से अर्थात् भक्ति करने से वह अवस्था प्राप्त की जा सकती है (योगदर्शन, अ : १, सू : २३) यही कारण है कि भगवत्-प्रेम या भक्ति शाश्वती मुक्ति का कारण बन जाती है ।

लोग प्रश्न करते हैं हम जैनों के भगवान् या ईश्वर तो वीतराग हैं । वे हमें कुछ दे नहीं सकते, अतः उनमें अनुराग कैसा ? भक्ति कैसी ? कैसे उनसे प्रेम करें ?

इसका प्रत्युत्तर तो यही है कि आप भक्ति को पूर्णतया समझ ही नहीं पाये हैं । जब तक विषय-वासना है, तब तक भक्ति नहीं है । फिर भक्त अन्य वस्तुएँ तो दूर, मुक्ति भी नहीं चाहता । वृक्ष का आश्रय लेने से जैसे छाया आपोआप मिल जाती है, वैसे ही ईश्वर-भक्ति से मुक्ति अपने-आप ही सुलभ हो जाती है ।

जहाँ विषय-वासना तो क्या मुक्ति की कामना तक नहीं है, वहाँ जिसकी हम भक्ति करते हैं, वह वीतराग हो तो क्या ?

योगदर्शन भी ईश्वर की जो संज्ञा निर्देश करता है वह यह है–'क्लेश-कर्म-विपाके अपरामृष्ट पुरुषः विशेषः ईश्वरः'–जिसके क्लेश कर्म विपाक नहीं रहता वही ईश्वर है (योग दर्शन, अ : १, सू : २४) ।

क्या हमारे वीतराग भगवान् की भी यही संज्ञा नहीं है ?

योगदर्शन के ईश्वर को अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । भगवान् में भी भग या षड् ऐश्वर्य रहते हैं । पर ईश्वर या भगवान् उनका प्रयोग ही नहीं करते । कमल-पत्र पर जिस प्रकार ओस की बूंदें रहती हैं उनमें उसी प्रकार सिद्धियाँ या ऐश्वर्य रहते हैं । हम वीतराग भगवान् को अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द-

रूप मानते हैं पर वे उसका प्रयोग कहाँ करते हैं? यदि प्रयोग करते तो न वीतराग रहते, न ईश्वर, न भगवान् ।

जो वीतराग हैं वे तो राज-राजेश्वर हैं ही; क्योंकि विश्व सम्पदा उनके पैरों-तले जा पड़ी है, किन्तु उनको उससे कोई प्रयोजन नहीं । हम आचार्य भगवन्तों को इसीलिए 'महाराज' कहते हैं कि वे सर्वसम्पदा का परित्याग कर सर्वसम्पदा के धनी बन गये हैं ।

अतः वीतराग भगवान् की भक्ति पूर्णतः हो सकती है । वीतराग भगवान् का कोई ऐश्वर्यमय रूप देखता है तो कोई वैराग्यमय रूप; किन्तु इसमें द्वन्द्व कहाँ ? कोई उसे अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि के धनी त्रिलोकीनाथ के रूप में देखता है, तो कोई सर्वव्यापी निरावरण दिगम्बर रूप में ।

फिर भी विरोध देखा जाता है, इसका कारण यह है कि उनकी भक्ति पराभक्ति नहीं है; गौणीभक्ति है । गौणीभक्ति में अक्खड़पन रहता ही है । यह अक्खड़पन जैनियों में ही नहीं हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मों में देखा जाता है। इष्ट के प्रति प्रेम से ही भक्ति का उद्भव होता है, लेकिन वह प्रेम जब निम्नस्तर का होता है; तो अन्य समुदाय पर आक्रमण तथा दोषारोपण आदि रूप ले लेता है ।

स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रकार के प्रेम या गौणीभक्ति को एक अतीव सुन्दर रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है । वे लिखते हैं–'इस प्रकार का प्रेम प्रभु के विषय में दूसरे का हस्तक्षेप निवारण की कुक्कुर-सुलभ सहज प्रवृत्ति रूप है । पर भेद यह है कि कुक्कुर की सहज प्रवृत्ति मानव-युक्ति से श्रेष्ठ है; क्योंकि प्रभु किसी भी वेष में उसके सम्मुख क्यों न आये कुक्कुर उन्हें शत्रु समझकर कभी भ्रमित नहीं होता' (भक्तियोग पृ० २-३); किन्तु जो अक्खड़ होते हैं उनमें विचार-शक्ति भी नहीं रहती । उनकी दृष्टि तो व्यक्तिगत विषय में इतनी उलझी हुई रहती है कि वे सत्य का अनुधावन ही नहीं कर पाते । वे तो केवल यही जानने के प्रयास में रहते हैं कि 'यह बात किसने कही है।' जो व्यक्ति स्व-सम्प्रदाय के प्रति न्याय-परक हैं, दयाशील हैं, प्रेमयुक्त हैं वे ही दूसरे सम्प्रदाय के प्रति निर्दय और कठोर होकर क्या नहीं कर बैठते हैं?

लेकिन भक्ति का यह दुरुपयोग भक्ति के निम्नस्तर में ही होता है, परिपक्व पराभक्ति में नहीं ।

वास्तव में भक्ति को साधन-रूप मानने से वह निम्नस्तर की हो जाती है; वहाँ, जहाँ बाह्य क्रिया-काण्डों में फँसकर मनुष्य अपने लक्ष्य को खो देता है, परन्तु भक्ति

साधन-मात्र ही नहीं, साध्य भी है। प्रेम जब हृदय में संचारित होता है तब उपासना पराभक्ति में रूपान्तरित हो जाती है।

आचार्य शंकर वेदान्त के 'अवृत्तिरसकृदुपदेशात्' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं– "तथा ध्यायति प्रोषितनाथा पतिमितिया निरन्तर स्मरण पतिं प्रति सोत्कण्ठा सैवमभिधीयते"–पतिप्राणा स्त्री विदेशगत पति का ध्यान करती है, यहाँ पर एक प्रकार साग्रह अविच्छिन्न स्मृतिलक्षित होती है। यह भक्ति है। (ब्रह्मसूत्र, अ : ४, पा. १, सूत्र : १)।

आचार्य रामानुज ब्रह्मसूत्र के 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस सूत्र की व्याख्या में लिखते हैं–"ध्यानं तैलधारावदविच्छिन्न स्मृतिसंतानरूपा ध्रुवास्मतिः। स्मृत्यु-पलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः इतिध्रुवायाः स्मृते खवगोपायत्व श्रवणात्। साच स्मृतिदर्शन सामानकारा"–एक पात्र से दूसरे पात्र में निक्षिप्त अविच्छिन्न तैल धारा की भाँति प्रवाहित ध्येय वस्तु का निरन्तर स्मरण का नाम ध्यान है। जब इस प्रकार भगवत् स्मृति की अवस्था प्राप्त होती है, तो समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है, इसीलिए शास्त्रों ने निरन्तर स्मरण को मुक्ति का कारण माना है। यहाँ स्मृति और दर्शन अभिन्न अभेद हो जाते हैं।

रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतवादी थे इसलिए स्मृति और दर्शन को अभेद मानकर इति करते हैं, किन्तु स्मृति आगे जाकर भक्त को भगवान् बना देती है। उसके न राग रहता है, न द्वेष। तभी तो श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण भक्त का लक्षण बताते हुए कहते हैं :

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करुणः एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी –अः. १२/१३

जिसका किसी के प्रति द्वेष नहीं है, सभी के प्रति जिसका मैत्री-भाव है। जीवों के प्रति जो करुणाभाव रखता है, जो ममताहीन है, निरहंकार है, क्षमावान है और सुख-दुःख में सर्वदा समभाव रखता है उसके शृंखल बन्धन तो क्या भव-बन्धन भी टूट जाते हैं। □□

भक्तामर स्तोत्र

प्रतीक-चित्र, मूल, पद्यानुवाद, गद्यानुवाद, ऋद्धि, मन्त्र, प्रभाव, अन्वय + अर्थ, यन्त्र-चित्र

इस अंक के २४ से ११९ तक ९६ पृष्ठों में भक्तामर स्तोत्र को एक विशिष्ट क्रम में संयोजित किया गया है।

एक-एक श्लोक के लिए दो-दो पृष्ठ समर्पित हैं।

क्रम है–

प्रतीक-चित्र

मूल

छह पद्यानुवाद, तीन गद्यानुवाद

ऋद्धि, मन्त्र, प्रभाव, अन्वय/अर्थ

यन्त्र-चित्र।

इस तरह कुल चौदह विषयों को कम-से-कम जगह में आवश्यक प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के साथ संजोया गया है।

सबमें पहले समांक पृष्ठों पर प्रतीक-चित्र हैं, जिन्हें संतोष जड़िया–जैसे सुधी रेखा-शिल्पी ने, जो एक विख्यात मूर्तिकलाविद् भी हैं, कागज पर तराशा है। शब्दार्थ को रेखाओं में बदलने का यह सूक्ष्म कार्य जड़िया ने रचना के सुकुमारतम स्तर पर पूरा किया है।

उसे जैन दर्शन की गहरी/बुनियादी जानकारी है, अतः उसके ये श्लोक-चित्र स्वयं इस तरह रेखायित हैं कि इनमें अनायास ही मूल रचनाकार की साधना मूर्तिमन्त हो सकी है। उस साधना की धड़कनों को रेखा-नाड़ियों पर स्वानुभूति की संवेदन-शील अंगुलियाँ रख कर देखा जा सकता है।

प्रतीक सादा हैं, अर्थवान् हैं, और इनकी सबमें बड़ी विशेषता यह है कि इन्हें जितनी बार देखा जाता है, उतनी बार ये और-और नये तथा अनुभूति-प्रवण हो उठते हैं।

इसके बाद शब्दशिल्पी/परमात्मसाधक मानतुंगाचार्य-रचित श्लोक है।

देखा गया है कि

'भक्तामर स्तोत्र' के प्रकाशन में काफी असावधानियाँ बरती गयी हैं। जहाँ तक 'तीर्थंकर-ग्रन्थालय' का सवाल है, हमारे पास ऐसी कोई मुद्रित प्रति नहीं है, जिसे

पूर्णतः निर्दोष/प्रामाणिक कहा जा सके, यहाँ तक कि अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों द्वारा संपादित/प्रकाशित स्तोत्र भी छापे की भयंकर भूलों से मुक्त नहीं हैं।

प्रसन्नता है कि इस अंक में स्तोत्र को ऐसी सारी त्रुटियों से मुक्त रखा गया है। समास, संधि, विरामादि चिह्नों की व्यवस्था को जैनदर्शन/साहित्य के उद्भट विद्वान् डॉ. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने कृपापूर्वक अवलोकित किया है तथा हमें अवसर दिया है कि हम 'भक्तामर स्तोत्र' को उसकी संपूर्ण गुणवत्ता में प्रकाशित कर सकें। इसके बाद भी यदि कुछ रह गया हो तो हमें अवश्य सूचित करें ताकि किसी अंक में हम अपने पाठकों को उससे अवगत करा सकें। हमारे विनम्र मत में इस अंक के प्रस्तुत मूलपाठ को प्रामाणिक/विश्वसनीय/निर्दोष मान लेने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

हमें विश्वास है भक्तामर स्तोत्र का यह त्रुटि-रहित पाठ अधिक प्रभावक और फलदायी सिद्ध होगा।

इसके बाद डॉ. नेमीचन्द का पद्यानुवाद है।

यह १९८१ में संपन्न हुआ है। सरल और मूलानुगामी यह है।

इसे अनुवादक ने मानतुंग की सृजन-भूमिका पर लगभग उतने ही बावलेपन के साथ लिखा है। इसकी शैली आज की/अभी की है। इससे मूल को १९८२ के भाषातल से जोड़ा जा सका है। मूल से अविचलित तथापि रचनात्मकता की गोद में मुस्कराते इस अनुवाद की महत्ता से मुँह मोड़ना आसान नहीं है। माना, यह गेय नहीं है; किन्तु यह अंतरंग में अनुभूति की जिन निर्मल झिरियों को जन्म देता है, वे अनर्घ्य हैं, महत्व की हैं और जीवन को एक नया आध्यात्मिक अनुशासन प्रदान करने में पूर्णतः समर्थ हैं। पद्यानुवादों की अब तक की मुद्राओं में नेमीचन्द जैन का यह अनुवाद लीक से हट कर एक भिन्न मुद्रा में प्रस्तुत/संयोजित है। इसके बाद है पं. हेमराज पांडे का पद्यानुवाद। यह मध्यकालीन हिन्दी का एक अच्छा उदाहरण है – सरल, सुबोध, सुगम, एक भिन्न भाषा-तल पर अ-कठिन, अ-कठोर। इसके बाद है कानोड़ के तरुण साहित्यकार विपिन जारोली का राजस्थानी अनुवाद, जिसका शिल्प/स्वाद, अपना/निराला है। निरालापन इसका यह है कि यह स्वल्पाक्षरित है और आंचलिक होते हुए भी सार्वदेशिक किस्म का है।

इतना सुन्दर, सटीक, समस्त, सुमधुर, सपराक्रम अनुवाद पहली बार ही किसी लोकभाषा में आया है।

सब जानते हैं कि राजस्थानी और गुजराती बहन-भाषाएँ हैं। यहाँ तक कि प्राचीन राजस्थानी और प्राचीन गुजराती को तो अलग-अलग पहिचान पाना भी मुश्किल है। वस्तुतः दोनों की गंगोत्री एक है।

श्री मावजी दामजी शाह का यह अनुवाद मीठा, सुगेय और अर्थगर्भी है, जिसके द्वारा भी भक्तामर के निमित्त एक जनोपयोगी समझ बनी है।

श्री अनन्त तनय का मराठी अनुवाद काफी ठोस है; इसीलिए उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व है। उसमें परम पौरुष है, जो पाठक को समश्लोकी छन्द-प्रभाव के कारण अनेक विचलनों से बचाता है। इसे खुरई के विद्वान् वयोवृद्ध पण्डित कमलकुमारजी शास्त्री ने उपलब्ध कराया है।

कन्नड़ जैन-वाङमय की खजाना-भाषा है। इसमें अपरम्पार जैन साहित्य है।

श्री के. एस. धरणेन्द्रय्य ने जो अनुवाद किया है, वह इतना सुगम/सरल है कि जिसे बहुत सामान्य प्रयत्न से समझा जा सकता है। वस्तुतः आठ-दस श्लोकानुवादों को पढ़ लेने के बाद ऐसा लगने लगता है कि किसी द्रविड़ी परिवार की भाषा के स्थान पर हम भारतीय आर्य भाषा परिवार की सदस्य भाषा के साथ ही बैठे हैं। भ्रमरवृत्ति से हुए इस अनुवाद को यदि मेघवृत्ति से पढ़ा जाए तो निश्चय ही एक चमत्कार घटित हो सकता है। प्रस्तुत अनुवाद दक्षिण-उत्तर का एक प्रेमल अनुबन्ध है जिसे उपलब्ध कराया है ज्योतिष और जैनदर्शन के पारंगत विद्वान् अनगोल/बेलगाँव के पं. बाहुबली पार्श्वनाथ उपाध्ये ने।

इसके बाद विषमांक पृष्ठ हैं।

ये गद्यानुवादों से आरम्भ होकर यन्त्र-चित्र पर समाप्त हैं।

हिन्दी-गद्यानुवाद है अ-हिन्दी-भाषी प्रदेश से उत्तर की ओर पुरश्चरित/अपनी वाग्मिता से भारतीय जनता को उज्ज्वलताओं से अभिषिक्त करनेवाले परम तपस्वी एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी का जिसका धारावाहिक प्रकाशन 'तीर्थंकर' के दिसम्बर १९७४ से फरवरी १९७६ तक के अंकों में प्रकाशित हुआ है। उक्त अनुवाद पर मुनिश्री के अभीक्ष्ण स्वाध्याय और गहन-गूढ़ तत्त्व-रोमन्थन को स्पष्टतः देखा जा सकता है। अनुवाद बहुत पारदर्शी और कई गुत्थियों को सुलझाने वाला है।

श्री गणेश ललवानी जाने-माने पत्रकार हैं। अ-चंचल, अ-विचल, गहरी सूझ-बूझ, और गहन दृष्टि-संपन्न। वे योगी हैं, योगज्ञ हैं। उनका बाङ्ला अनुवाद सादगी, सौंदर्य, सन्तुलन, और सुबोधगम्यता की दृष्टि से लाजवाब है। भाषा थिरकती हुई, शब्द जीवन्त, सार-पहुँच, अद्भुत; अतः इसे पढ़ कर भी सहज ही खूब रसाभिषिक्त हुआ जा सकता है।

अंग्रेजी के अनेक अनुवाद सामने आये हैं, किन्तु श्री हिम्मतसिंह सरुपारिया का यह अनुवाद काफी संतुलित और असंदिग्ध है। शब्द-चयन का औचित्य इसकी विशेषता है। विदेशी भाषा में स्वदेशी स्वाद उत्पन्न करना कठिन अवश्य है, किन्तु असंभव नहीं है, इसका सुबूत है सरुपारियाजी का यह गद्यानुवाद।

इसके बाद हैं – ऋद्धि/मन्त्र/तज्जनित प्रभाव।

कहा जा सकता है कि इन सबसे अन्धविश्वास बढ़ेगा और 'तीर्थंकर' अपने निर्धारित कार्यक्रम से पीछे हटेगा। ऐसा नहीं है। सारी स्थिति को गहरे उतर कर समझने की कोशिश की जानी चाहिये। सतह पर बैठ कर तह की चर्चा करना या उसके संबन्ध में ऊलजलूल निष्कर्ष लेना अनुचित और अयुक्तियुक्त है।

(शेष पृष्ठ १२० पर)

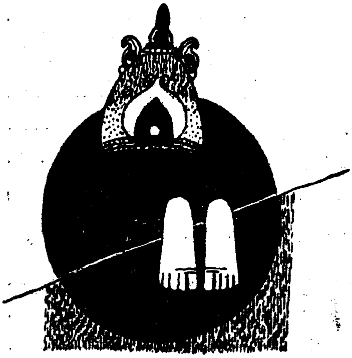

संस्कृत

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।। १ ।।

हिन्दी

देवभक्तों के
मुकुटमणि की प्रभा जो
तिमिर के
अघ के
विनाशक जो निरन्तर
जो जगत् में
डूबतों के
हैं सहारे
उन-चरण-युग-आद्य को
सम्यक् नमन
है ।

हिन्दी (भाषा)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धरम-धुरंधर परमगुरु नमों आदि अवतार ।।

सुर-नत-मुकुट रतन-छबि करैं,
अंतर पाप-तिमिर सब हरैं ।
जिनपद बन्दौं मन वच काय,
भव-जल-पतित उद्धरन-सहाय ।।

राजस्थानी

जिण चरणाँ सूँ अमर भगतरी-
मुकटाँ री मणियाँ परकासे ।
वर्णीं नाथ रा उण चरणाँने-
नमूँ, जगत रा पाप विनासे ।

गुजराती

दिपावे जे मुगटमणिना तेजने देवताना,
संहारे जे अघतिमिरने मानवोना सदाना;
जे छे टेकारूप भवमहिं डूबता प्राणीओने,
एवा आदि जिनचरणने वंदीने रूडी रीते.

मराठी

भक्तामरें नमविल्या किरिटास देतें ।
उद्योत, जें अघतमास लयास नेते ।।
मी भक्तिनें नमितसें जिनपादुकाला ।
आधार जें भवजलीं पतिता जनाला ।।

कन्नड

भकुत बृन्दारकर मणिदा
मकुट रतुनके होळपनीयुव ।
सकल कर्मगळनु दहिसुत युगद मोदलिनलि ।।
शकुति गुंदिद जनते निवहके ।
युकुति यरिविन सोडरिनिंदलि ।
मुकुति गेहद सोबगदोरिद जिनन पदके रगि।।

हिन्दी

युग के आदि में भक्ति-विभोर देवों की विनम्र मुकुट-मणियों की कान्ति को अधिक द्युतिमन्त करने वाले, पापान्धकार का दलन करने वाले तथा संसार-पयोधि में पड़ते हुए मनष्यों के आलम्बन जिनेन्द्र भगवान् के चरण-युगल को सम्यक् प्रणाम करके—

बाङला

भक्त देवतादेर आनत मुकुटमणि प्रभा के जा प्रदीप्त करे, पाप रूप तमोराशि के जा विनष्ट करे संसार-सागरे पतित मानूष के जा युगारम्भे आश्रय देय सेइ जिनपद कमल प्रणाम करे—

अंग्रेजी

After duly and respectfully bowing at the pair of feet of the great Almighty (the Conqueror), the feet, which illuminate the lusture of the gems-studded in the diadems of the devout gods having bent in obeisance to Lord Adinath; the feet which are the destroyers of the canopy of the Sins and the Isle of rescue to the persons falling in the ocean of the World in the quadrant period.

मन्त्र

ऋद्धि —ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

मंत्र —ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

प्रभाव—सारी विघ्न-बाधाएँ दूर होती हैं।

अन्वय + अर्थ

भक्त अमर प्रणत मौलि मणिप्रभाणाम्
भक्तिवन्त देवों के झुके हुए किरीट/मुकुटों की मणिप्रभाओं को

उद्योतकम्
संवर्द्धित/ज्योतित करने वाले

दलित पाप तमोवितानम्
पाप रूपी अंधकार के विस्तार/जमाव को नष्ट करने वाले

भवजले
संसार-समुद्र में

पतताम्
पड़ते/पड़े हुए

जनानाम्
मनुष्यों को

युगादौ
युग के आरम्भ में यानी चौथे काल की शुरूआत में

आलम्बनम्
शरण/आसरा देने वाले

जिन पादयुगम्
जिनेश्वर के चरण-युगल को

सम्यक्*
भलीभाँति

प्रणम्य
प्रणाम करके—

* जैनदर्शन और जीवनाचार को प्रगट करनेवाला विशेषणपद।

यन्त्र

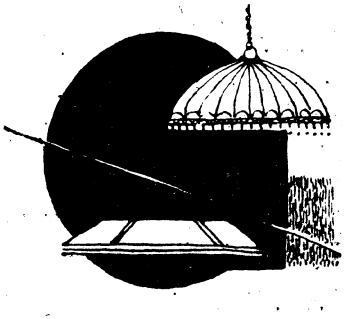

संस्कृत

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।२।।

हिन्दी

जिनवाणी के
परम बोध
मन्थन-चिन्तन से
विमल-दक्ष है जिसकी प्रज्ञा,
तीन लोक का मन जीते जो ।
देवलोक-पति ने
स्तुति की
ऐसी शुभ जिसकी ।
उस आदिनाथ की
स्तुति-रचना
के निमित्त
मैं भी संकल्पित ।

हिन्दी (भाषा)

श्रुत-पारग इंद्रादिक देव,
जाकी थुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अरथ विशाल,
तिस प्रभु की वरनों गुनमाल ।।

राजस्थानी

ततवज्ञान रा धारक सुरवर-
करे इस्तुति, त्रि-जगहारी ।
वणी प्रथम जिनवर री म्हूँभी-
करूँ इस्तुति, अचरज भारी ।

गुजराती

जेनी बुद्धि अतिशय बनी शास्त्रनुं तत्त्व जाणी,
ते इंद्रोए स्तुति प्रभुतणी रे करी भाव आणी;
त्रिलोकीना जनमन हरे स्तोत्रमांहे अधीश,
ते श्री आदि जिनवरतणी हुं स्तुतिने करीश.

मराठी

जो प्राथिला, सकल-वाङमय-पीयुषानें ।
संप्राप्त बुद्धि-विभवें, विबुधेश्वरानें ।।
स्तोत्रें करून भुवनत्रय चित्त-हारी ।
मी तो स्तवीन पहिला जिन, निर्विकारी ।।

कन्नड़

सकलनुडिगळ तत्वदरिविन ।
निकरकागरमाद बुद्धियि ।
नखिल सुरपतिवृन्द लोकद बगेय नप हरिप ।
बेगबगेय तुति यिंद जिन-पन ।
पोगळि धन्यते पडेदरल्लवे ।
निगम कोविद नादिजिननु भजिसलेन्नळवे ।।

हिन्दी

संपूर्ण वाङ्मय के तत्त्वबोध से जिन्हें बुद्धि-कौशल की सम्प्राप्ति हो चुकी है, ऐसे देवेन्द्रों द्वारा त्रिभुवन के चित्त को आकर्षित करने वाले उदार स्तोत्रों से स्तूयमान उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं भी स्तुति करता हूँ।

বাঙ্গলা

সেই প্রথম জিনেন্দ্রের জিনি সমস্ত বাংময়ের তত্ত্বজ্ঞান বুদ্ধিতে প্রবীণ সুরপতি কর্তৃক ত্রিলোকের চিত্ত হরণকারী উদার স্তোত্র সংস্তুত হয়েছেন, আমিও অবশ্য স্তব কর।

अंग्रेजी

(It is strange that) I should conduct the Eulogy of the first Jinendra (the biggest conqueror) who has been hymned and worshipped in magnificient encomiums and thus magnetising the hearts of the people of the three worlds, composed by the Lords of Gods talented in grasping the essence of the sacred scriptures.

मन्त्र

ऋद्धि —ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं।
मंत्र —ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः।
प्रभाव—सारे रोग, शत्रु शान्त होते हैं तथा सिरदर्द दूर होता है।

अन्वय + अर्थ

सकलवाङ्मय तत्त्व बोधात्
संपूर्ण जिनवाणी के परम अर्थबोध से
उद्भूत बुद्धि पटुभिः
उत्पन्न मति से प्रवीण बने/बुद्धिवन्त
सुरलोकनाथैः
देवलोक के स्वामी इन्द्रों ने
जगत् त्रितय चित्तहरैः
तीनों लोक के चित्त का हरण करने वाले
उदारैः
विशद/गंभीर अर्थगर्भित
स्तोत्रैः
स्तोत्रों से
यः संस्तुतः
जिनकी स्तुति की है
तं प्रथमं जिनेन्द्रम्
उन प्रथम तीर्थंकर प्रभु आदिनाथ का
किल
संकल्पपूर्वक
अहं अपि
मैं भी
स्तोष्ये
स्तवन करूँगा।

यन्त्र

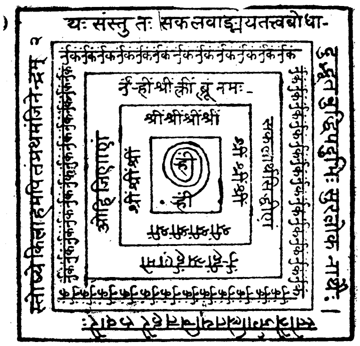

राजस्थानी

ज्यूं टाबर पाणी में देखी–
चन्दर-बिम्ब ने लेवा लागो ।
वर्णी तराँ ही इस्तुति थारी–
मतिहीण म्हूँ करवा लागो ।

संस्कृत

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब–
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।। ३ ।।

हिन्दी

बुद्धि कहाँ ?
देवार्चित !
अर्चन करूँ तुम्हारा
फिर भी निलज
रहित-मति
स्तुति के निमित्त
समुपस्थित ।
शिशु को छोड़
कौन ऐसा जो
जल में पड़ती
चन्द्र-छाँव को
सहसा
लेने की हठ ठाने ?

हिन्दी (भाषा)

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन,
हो निलज्ज थुति मनसा कीन
जल-प्रतिबिंब बुद्ध को गहै,
शशि-मंडल बालक ही चहै ।।

गुजराती

देवो सर्वे मळी करे पूजना आप केरी,
मूकी लज्जा मतिहीन छतां; भक्ति मारी अनेरी;
जोई इच्छे ग्रहण करवा पाणीमां चंद्रने जे,
निश्चे एवो हठ नहि करे बाळ विना सहेजे.

मराठी

देवेंद्र-पूजित-पदा मज बुद्धि नाहीं ।
स्तोत्रें करीन म्हणुनि मति धावते ही ।।
पाण्यांमधील विधुबिंब धरावयास ।
बालाशिवाय दुसरा न तयार खास ।।

कन्नड़

विबुध मणिगळ पूजे पडेदा ।
शुभद पादांघ्रिगळ पोंदि ।
पंभवनी कीर्तनेय गेय्यलकुज्जुगितनाद ।
अबुध नानेंतिर्पेनें दोडे ।
नभदोळिपिदुविन बिंबव ।
सुभगदि नीरिंद पडेदपेनेंब बालनोलु ।।

हिन्दी

हे देवों द्वारा पादपीठार्चित ! मैं बुद्धियोग से रहित होते हुए भी आपकी स्तुति करने के लिए समुद्यतमति हो रहा हूँ (निश्चय ही) निर्लज्ज हूँ। जल की चन्द्रच्छाया को सहसा ग्रहण करने के लिए बालक के अतिरिक्त अन्य कौन इच्छावान् हो सकता है ?

बाङला

जे जिनेन्द्रेर पादपीठ देवतादेर द्वारा अर्चित सेइ जिनेन्द्र के बुद्धिहीन हयेओ जे आमि निर्लज्जेर मत स्तव करते उद्यत हयेघि तार कारण बालक छाड़ा अन्य आर के जले प्रतिबिम्बित चन्द्रमा के सहसा धरार प्रयास करे ?

अंग्रेजी

Due to immodesty and impudence, I though deficient in intellect, am intent on praising your foot stool (out of courtesy, it means feet) which has been already worshipped by the celestial gods. Who else but a child wants to catch hurriedly the image of the moon reflected in water ?

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं ।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्य: सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नम: स्वाहा ।
प्रभाव–सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

अन्वय + अर्थ

विबुध अर्चित पादपीठ
देवों ने जिनके पादपीठ/पीढ़े की पूजा/अर्चना की है ऐसे हे जिनेन्द्र !
बुद्ध्या विना अपि
बुद्धि के बिना भी
विगत त्रप:
लज्जा-रहित/बे-झिझक रह कर
अहम्
मैं
स्तोतुम्
आपकी स्तुति के निमित्त
समुद्यत मति:
तत्पर हुआ हूँ (यह ठीक ही है; क्योंकि)
बालं विहाय
बालक को छोड़
अन्य: क:
और कौन
जन:
व्यक्ति
जल संस्थितम्
जल में प्रतिबिम्बित (संस्थित)
इन्दु बिम्बम्
चन्द्रमा की परछाहीं को
सहसा ग्रहीतुम्
अकस्मात् पकड़ने के लिए
इच्छति
उत्कण्ठित होता है/इच्छा या कामना करता है ।

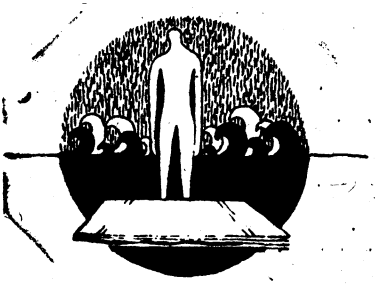

संस्कृत

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशांककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ।।४।

हिन्दी

तुम गुण-सागर
अतल;
चन्द्रमा से भी शोभन !
इन्द्र-समान प्रबुद्ध
न कर सका गुण-संकीर्तन !!
जो समुद्र
प्रलयंकर
उद्वेगित जिसमें जलचर
उसे भुजाएँ
तिरें,
कहो, कैसे कब संभव ?

हिन्दी (भाषा)

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार,
कहत न सुर-गुरु पावैं पार ।
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जंत,
जलधि तिरै को भुज बलवंत ।।

राजस्थानी

देवगुरू भी गणी सके नी,
थारा उजळा गुण ने जिनवर !
कूण अस्यो जो तरी सके है–
प्रलैकाळ रो उमड्यो सागर ।

गुजराती

सद्‌गुणोथी भरपूर तमे, चंद्रवत् शोभनारा,
देवोना ये गुरु नव शके, गुण गाई तमारा;
जे सिंधुमां प्रलय समये ऊछळे प्राणिओ रे,
तेने कणारे पण तरी शके कोण रे बहु जोरे.

मराठी

वर्णावयास गुणसागर ! सर्व गूण ।
वाचस्पतीहि न कदापि समर्थ जाण ।।
जो अंतकाळ पवनें खवळून गेला ।
कोणी न सागर समर्थ तरावयाला ।।

कन्नड़

गुणसमुद्रने निन्न गुणगळु ।
दणिवनारिप चंद्रकिरण ।
क्केणेयुववुगळनेणेके माडल्करिदु सुरगुरुगे ।।
पेणेदु मोसळेगळिद लोकद ।
कोनेय गालिय होडेतदिदलि ।
कोनेदु कूगुव कडल कैयिदीजल सदळवु ।।

हिन्दी

हे गुण-समुद्र! चन्द्रमा के समान (आह्लादक, अमृतमय, उज्ज्वल, शीतल) कान्त आपकी गुणावली का वर्णन केवल बुद्धिविलास से क्या देवगुरु बृहस्पति की समता रखने वाला भी कर सकता है? प्रलयकाल के ऊनचत्वारिंशत् पर्वन-संचार से क्षुब्ध एवं भयंकर मकर-निकर से आपूर्यमाण जलधि को भुजबल से तैरने में कौन समर्थ है?

বাঙলা

हे गुणसागर, चन्द्रमार मत धवल तोमार गुणराजि के सुरगुरु बृहस्पतिर मत जार बुद्धि सेओ व्यक्त करते समर्थ नय जेमन कल्पान्तकाले झटिका खुद्ध कुम्भिरादि पूर्ण उत्ताल समुद्र भुजबले अतिक्रम करते छेउइ समर्थ नय।

अंग्रेजी

O yee ! the ocean of virtues ! who can, be he in intelligence, like the preceptor of celestial gods, describe thy bright merits glittering like the lusture of the moon ? Who can swim with his arms the tumultuous ocean abounding in crocodiles and alligators and agitated by the tempest of the world's final Annihilation.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्रादेवताभ्यो नमः स्वाहा।
प्रभाव–जाल में मछलियाँ नहीं फँसतीं।

अन्वय + अर्थ

गुण-समुद्र !
हे गुणों के समुद्र !
ते
तुम्हारे
शशाङ्क कान्तान्
चन्द्र की भाँति उज्ज्वल
गुणान्
गुणों को
वक्तुम्
कहने के लिए
बुद्ध्या
बुद्धि द्वारा
सुरगुरु प्रतिमः अपि
देवताओं के गुरु बृहस्पति के समान भी
कः क्षमः
कौन समर्थ हो सकता है (क्योंकि)
कल्पान्त काल पवन उद्धत नक्रचक्रम्
प्रलयकाल के तूफानी थपेड़ों से ऊभचूभ/ उच्छलित मगरों से युक्त
अम्बुनिधिम्
समुद्र को
भुजाभ्याम्
भुजाओं से
तरीतुम्
तैरने में
को वा अलम्
कौन व्यक्ति समर्थ हो सकता है?

संस्कृत

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ।।५।।

हिन्दी

वह
हूँ
मैं
जो हुआ भक्ति के वशीभूत
अति
शक्तिहीन
फिर भी
स्तव करने उत्कण्ठित ।
जैसे
मृगी
प्रेम में पग
बिन जाँचे-तोले
निज बल,
छौने की रक्षा में
जूझे
शेर बबर से ।

हिन्दी (भाषा)

सौ मैं शक्ति-हीन थुति करूँ,
भक्ति-भाव-वश कछु नहिं डरूँ ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत,
मृगपति सम्मुख जाय अचेत ।।

राजस्थानी

ज्यूँ हिरण्यो हिरण्या रे मों' वस–
नाहर सूँ भी लड़वा चाल्यो ।
वणीं तराँ ही भगति वस म्हूँ
इस्तुति थारी करवा चाल्यो ।

गुजराती

एवो हुं छुं गरीबजन तो ये प्रभु भक्ति काजे,
शक्ति जो के मुज महीं नथी गुणगाईश आजे;
शक्ति जो के निजमहीं नथी, तो पशु मृगली ए,
रक्षा माटे शिशुतणी नथी, सिंह सामे जती ए.

मराठी

मी शक्तिहीन परि भक्ति तुझी पुन्हा हे ।
स्तोत्राकडे मन बळे वळवीत आहे ।।
प्रेमें शिशूस जपण्यास म्हणून जाय ।
सिंहासमोर हरिणी बलहीन माय ।।

कन्नड़

जगद महिमादर्श निन्नय ।
सुगुण गानव माळ्प शक्तिय ।
विगत मादरु भक्ति भरदिं पोगळवेनेंतेनलु ।।
बगेगे तारदलल्प बलमं ।
मगुव कापिडलेळसि सिंगद ।
हरणिके काल्केरेदु निल्लुव तायि हरिणि योलु ।

हिन्दी

हे मुनीश ! (आपके गुणों की अनन्तता, अपनी क्षामबुद्धि तथा बालचेष्टा को जानते हुए भी) मैं असमर्थ होते हुए भी आपकी भक्ति के वश में होने से स्तुति के निमित्त प्रवृत्तिमान हुआ हूँ। अपने शिशु पर आक्रमण करते हुए सिंह को देख कर प्रीति-वात्सल्य से प्रेरित हिरनी अपने छौने की रक्षा के लिए अल्पशक्ति की अवगणना कर क्या मृगराज का सामना नहीं करती ?

बाङ्ला

हे मुनिवर ! आमिओ सेइरूप तोमार स्तव करते असमर्थ। शक्तिहीन हयेओ तबुओ जे आमि तोमार स्तव करते प्रवृत्त हयेछि से केवल तोमार प्रति आमार प्रीतिर जन्यै एवं ता उचितओ कारण प्रीतिवशंतःइ शावकेर रक्षार जन्ये मृगी आत्मशक्तिर विचार ना करेर सिंहेर सम्मुखीन हय।

अंग्रेजी

O ye supreme Sage ! though I am deficient in calibre and devoid of intellect, yet prompted by my devotion to you, I undertake to compose this Encomium. Does not a doe impelled by the affection for her fawn oppose the lion to deliver her young ones from his clutches not considering her prowess ?

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं।

मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्वसंकट-निवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

प्रभाव–आँख के सारे रोग दूर होते हैं।

अन्वय + अर्थ

मुनीश !
हे मुनियों के ईश्वर !

तथा अपि
तो भी

तव भक्ति वशात्
आपकी भक्ति के वशीभूत/उत्साहित

विगत शक्ति
निःशक्त/सामर्थ्य-रहित

अपि सः अहम्
भी वह मैं

स्तवं कर्तुं
आपकी स्तुति के निमित्त

प्रवृत्त
तत्पर/प्रतिबद्ध हुआ हूँ (क्योंकि यह उचित ही है);

मृगी
हिरणी

प्रीत्या
प्रीति-वश

आत्मवीर्यम्
अपने बल को

अविचार्य
बिना विचारे ही

निज शिशोः
अपने शावक/छौने की

परिपालनार्थम्
रक्षा के लिए

किं मृगेन्द्रम् न अभ्येति
क्या सिंह से जूझने के लिए खड़ी नहीं हो जाती है ?

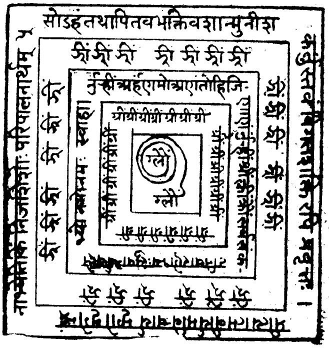

संस्कृत

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ।।६।।

हिन्दी

श्रुत का बौना ज्ञान
श्रुतों के बीच
अ-पण्डित,
केवल
भक्ति तुम्हारी से
मैं मुखरित जिनवर ।
चैत्रमास में
कोयल
कुहुक-कुहुक करती क्यों
बौराये अमराई
केवल इसीलिए न ?

हिन्दी (भाषा)

मैं शठ सुधी हँसन को धाम,
मुझ तव भक्ति बुलावै राम ।
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव,
मधु-ऋतु मधुर करै आराव ।।

राजस्थानी

मतिहीण म्हूँ मने करावे–
जबरन इस्तुति, भगति थारी ।
कोयल ने जबरन कूकावे–
फली कूँपळाँ ज्यूँ आम्बारी ।

गुजराती

जो के हुं छुं मतिहीन खरे, लागु छुं पंडितोने,
तो ये भक्तिवश थकी प्रभु! हुं स्तवु छुं तमोने;
कोकिलाओ टुहु टुहु करे, चैत्रमांही ज केम?
मानुं आवे प्रतिदिन अहा, आम्रनो मोर जेम.

मराठी

होईल अल्प कृति निंद्य बहुश्रुतांना
बोलावयास तरि भक्तिच लाविते ना ?
कोणीळ शब्द करितात वसंतकालीं
तद्धेतुला सरस चूतकलीं जहाली ।।

कन्नड़

पंडितनु नानल्ल विभुवे ।
पंडितर परिहास धामनु ।
पंडितर गुरुदेव निन्नय भक्ति हाडिपुदु ।।
उंडु माविन चिगुर मधुरद ।
बंडनुरे कोगिलेयु गानदि ।
मंडनके पक्कादुदल्लदे भत्ते बेरेनु ।।

हिन्दी

हे भगवन् ! शास्त्र का अल्पज्ञान आगम-विज्ञों के समक्ष हास्य का स्थान बन जाता है; (किन्तु क्या करूँ) तुम्हारी भक्ति मुझे बोलने के लिए बलपूर्वक प्रेरित कर रही है। वसन्त ऋतु में कोकिल पक्षी मौन नहीं रह सकता, पंचम स्वर में मधुर-मधुर आलापने लगता है, उस अवश मुखरता में रमणीय आम्र-मंजरी की सर्वत्र उपस्थिति ही एकमात्र कारण है।

बाङ्ला

आमि अल्पश्रुत ओ श्रुतज्ञान सम्पन्न व्यक्तिदेर उपहासेर तोमार स्तवगान करते मुखर करे तुले छे। बसन्तकाले कोकिल जे मधुर कण्ठे कुहू-कुहू करे तार कारण तार मध्ये निहित नेइ, निहित आम्रमंजरीर मकरन्दे।

अंग्रेजी

My devotion to you alone impells me to become garrulous in this panegyric-me, a man of petty knowledge and hence an object of ridicule in the society of persons learned in the lore of spiritual science; just as the cluster of the mango sprouts incites the cuckoo to coo the melodious tune in the spring season.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोठ्ठबुद्धीणं।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थः थः थः ठः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या-प्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।
प्रभाव–अनेक विद्याएँ सहज ही आ जाती हैं।

अन्वय + अर्थ

अल्प श्रुतम्
शास्त्र का अल्प ज्ञान रखने वाला
श्रुतवताम्
शास्त्र में पारंगत व्यक्तियों के सामने
परिहासधामः
हँसी के पात्र
माम्
मुझे
मुखरी कुरुते
मुखरित करती है/ बोलने को विवश करती है (क्योंकि)
कोकिलः किल मधौ
कोकिल निश्चय ही वसन्त ऋतु में
यत्
जो
मधुरं विरौति
मधुर कुहू-कुहू करता है
तत् च आम्र चारु कलिका निकर एक हेतु
सो उसमें आम्रवृक्षों के मनोहर मौर-समूह/मंजरियाँ ही एकमात्र कारण हैं।

यन्त्र

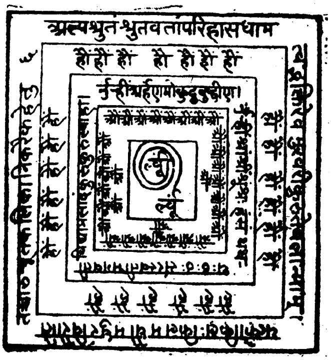

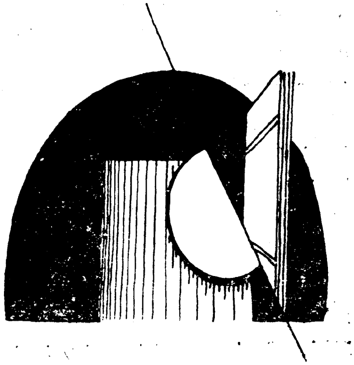

संस्कृत

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैतिशरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।७।।

हिन्दी

भक्तों के मन
जब तेरे अर्चन-रत होते
कटते सारे पाप
विगत के
भवान्तरों के ।
भव-निशि में
भ्रमरी-सा घिरता जो अँधियारा
उगते सूरज की
किरणें
छू उसे
मिटातीं ।

हिन्दी (भाषा)

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं,
जनम-जनम के पाप नसाहिं ।
ज्यों रबि उगै फटै ततकाल,
अलिवत नील निशा-तम-जाल ।

राजस्थानी

घोर रेण रा अंधियारा ने,
ज्यूं मेटे किरणाँ सूरज री ।
त्यूं भवियाँरा भव-बंधन ने–
काटे जिनवर ! इस्तुति थारी ।

गुजराती

जन्मोनाँ जे बहु बहु कर्यां पाप ते दूर थाय,
भक्तो केरीं प्रभुगुणमहीं चित्तवृत्ति गूंथाय;
वींटायुं जे तिमिर सघळुं रात्रिए विश्वमांय,
नासे छे रे ! सूरज उगतां सत्वरे ते सदाय.

मराठी

गुंफील सुंदर तुझा स्तुतिरूप हार ।
त्याचें क्षणांत भवसंतति-पाप दूर ।।
जो भृंग-नील पसरे भुवनांत थोर ।
तो अंधकार रवि खास करील दूर ।।

कन्नड़

निन्न गुणगळ गानदिंदलि ।
मुन्निना जनुमगळ पापवू ।
सन्नुतात्मने तोडेदु पोपुदु निमिष मात्रदलि ।।
नन्नि जगमं पुदिद तममं ।
पोन्न किरणद सूर्यबिंबं ।
बन्नपडि सोडिपुदु बेळकनु तुंबि लोकदोळु ।।

हिन्दी

हे भगवन् ! जिस प्रकार समस्त लोक को अभिभूत करने वाला, भ्रमरावलि के समान कृष्णवर्णा रात्रि का अन्धकार सूर्य किरणों से शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी तरह आपकी स्तुति करने से शरीरधारियों के साथ जन्म-परम्परा-रूप बन्धन को उत्पन्न करने वाला पाप क्षण-काल में क्षीण हो जाता है।

बाङला

लोकव्यापी कालो भ्रमरेर मत कृष्ण-रात्रिर अन्धकार के सूर्य किरणेर एकटुखानि संचार जेमन छिन्न-भिन्न करे देय सेइरूप तोमार स्तव शरीरधारी जीवेर जन्म-जमान्तर हते आबद्ध पापराजिके मुहुर्त्ते छिन्न-भिन्न करे देय।

अंग्रेजी

Just as the rays of the sun quickly and completely destroy the darkness stretching into the Universe, as black as the bees, Similarly the Sins of the living beings having accrual in the never ending chain of transmigrations are instantaneously annihilated by praising you.

मन्त्र

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं।

मंत्र —ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसंकटक्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव—सर्प कीलित हो जाता है; सारे पाप, संकट, छोटे-मोटे उपद्रव दूर हो जाते हैं।

अन्वय + अर्थ

त्वत् संस्तेवन
आपके स्तवन से
शरीरभाजाम्
देहधारियों का
भवसन्तति सन्निबद्धम्
जन्म-जरा-मृत्यु की परम्परा में जकड़ा हुआ
पापम्
पापकर्म
आक्रान्त लोकम्
संसार को ढक लिया है जिसने ऐसे
अलि नीलम्
भ्रमर के समान काले
शार्वरम् अशेषम् अन्धकारम् इव
रात्रि के संपूर्ण/अशेष अंधकार की भाँति
आशु
शीघ्रता से
क्षणात्
क्षण-भर में
सूर्य अंशु भिन्नम्
सूरज की किरणों से छिन्न-भिन्न होकर
क्षयम् उपैति
नाश को प्राप्त हो जाता है।

यन्त्र

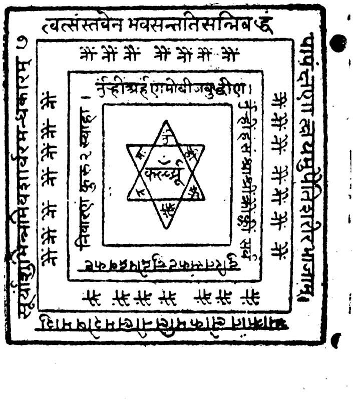

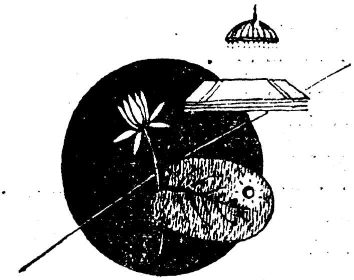

संस्कृत

मत्त्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ।।८।।

हिन्दी

मन में
ऐसा मान
क्षीणमति मैं
करता हूँ
सूत्रपात
तेरे अर्चन का ।
नलिनी-दल पर
जैसे जल की बूँद
बना करती है मोती;
वैसे मेरी स्तुति
सुजनों का मन मोहेगी ।

हिन्दी (भाषा)

तव प्रभावतैं कहूँ विचार,
होसी यह थुति जन-मन-हार ।
ज्यों जल-कमल-पत्र पै परै,
मुक्ताफल की दुति विस्तरै ।।

राजस्थानी

अस्यो मान म्हूँ करूँ इस्तुति-
या सजनाँ रा मन मोहेला ।
ज्यूँ कमळाँ पर जल री बून्दाँ-
मोत्याँरी ज्योति जीवेला ।

गुजराती

एवुं मामी स्तवन करवानो थयो आज भाव,
तेमां मानुं मनमहीं खरें, आपनो छे प्रभाव;
मोती जेवुं कमलपरनुं वारिबिंदु ज जे छे;
एवी स्तुति मनहर अहा ! सज्जनो नें गमे छे.

मराठी

जाणून हें सहन मी मतिमंद भावें ।
आरंभिलें स्तवन आज तुझ्या प्रभावें ।।
तो वारि-बिंदु सहसा नलिनी-दलस्थ ।
भासून मौक्तिक हरील समस्त चित्त ।।

कन्नड़

ई तेरदोळरितेन्न शक्तिय ।
तात निन्नय सुगुण गानव ।
नोतु माळ्पेनु पूज्य निन्ना महिमे यिंददु तां ।।
सातिशय पोंदुत्त संतर ।
चूतनल्मेय पडेदु पोळेवुदु ।
पूतनलिनीदळदि मुत्तनु पोल्व नीर्पनियोल् ।।

हिन्दी

हे नाथ ! ऐसा मान कर अल्पबुद्धि होते हुए भी मैंने आपके प्रभाव से यह स्तुति आरम्भ की है। (मुझे विश्वास है) यह संस्तवन सज्जनों के हृदय को प्रिय प्रतीत होगा। कमल-पल्लवों पर स्थित ओसकण मौक्तिक-जैसी कान्ति को धारण करते हैं; अर्थात् तुहिन-बिन्दु में यद्यपि मुक्ताफलत्व नहीं है तथापि कमल-पत्र के उत्तम आश्रय में उसमें वैसी प्रतीति होती है; मेरी वाणी में भी वैसे कोई विशिष्टता नहीं है किन्तु वह जिनेन्द्र-चरणारविन्द की मधुपी है; अतः सज्जनों में समादृत होगी।

बाङला

हे नाथ, तोमाके ए रूप पाप हरणकारी जेनेइ ना आमि अल्पबुद्धि हयेओ तोमाके स्तव करते वृत्त हयेछि। पद्म पत्र-स्थित शिशिर बिन्दु सूर्य किरण सम्पाते जेमन मुक्ताफलेर शोभा धारण करे, सेइ रूप आमार एइ स्तवओ तोमार प्रभाव प्रभान्वित हये सज्जन व्यक्तिदेर चित्त हरण करते समर्थ हवे।

अंग्रेजी

O Lord ! I assume that this panegyric though composed by me — a man of scanty intellect, will under thy influence captivate the minds of noble persons. Indeed the drops of water in contact with the lotus-leaves do obtain the splendour of pearls.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारिणं।

मंत्र –ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचंद्र देव्यै नमो नमः स्वाहा।

प्रभाव–सारे अरिष्ट योग दूर हो जाते हैं।

अन्वय + अर्थ

इति मत्वा
इस तरह मान कर
नाथ !
प्रभो !
तनुधिया अपि मया इदम् तव
क्षीण/मंदबुद्धि होने पर भी मेरे द्वारा यह आपका
संस्तवन् आरभ्यते
स्तोत्र आरम्भ किया जा रहा है सो
तव प्रभावात्
आपके प्रभाव से
सताम् चेतः हरिष्यति
(यह) सज्जनों के चित्त हर्षित/उल्लसित करेगा (ठीक वैसे ही जैसे)
नलिनीदलेषु
कमलिनी के पत्ते पर
उदबिन्दुः
जल की बूंद
ननु
निश्चय ही
मुक्ताफल द्युतिम् उपैति
मोती की कान्ति/आभा प्राप्त करती है।

यन्त्र

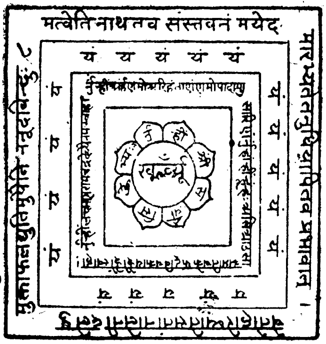

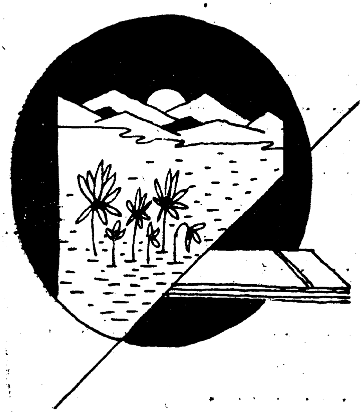

संस्कृत

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ।।९।।

हिन्दी

स्तुति,
वह तो
बहुत दूर की बात
सुनो जी !
नाम-कथा
से
ही
कट जाते पातक सारे ।
सूरज ऊगे
इससे पहले
पौ फटते ही
सरवर के पंकज खिलते हैं ।
सूर्योदय पर,
पूछो मत
वह शोभा-वैभव ।

हिन्दी (भाषा)

तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष,
सो तो दूर रहो सुख-पोष ।
पाप विनाशक है तुम नाम,
कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम ।।

राजस्थानी

सूरज नी, पण सूरज आभा—
ज्यूँ दूराँ सूँ कमळ खिलावे ।
वणीं तराँ ही इस्तुतिनी, पण—
वात मात्र ही पाँप मिटावे ।

गुजराती

दूरे राखो स्तवन करवां आपनां एकधारां,
पापो नाशे जगजनतणां नाम मात्रे तमारां;
जो के दूर रवि रहीं अने किरणोने प्रसारे,
तो ये खीले कमळदळ किरणोथी वधारे.

मराठी

राहो तब स्तवन दूर निरस्त दोष ।
त्वत्संकथा हि अघ दूर करी अशेष ।।
पद्माकरस्थ कमलांस विकासयुक्त ।
दूरून सूर्य-किरणेंच करि समस्त ।।

कन्नड़

इरलि पावन निन्न तुतियुं ।
मेरेगे निन्नय चरिते चिरवूं ।
परिगे जगदा पाप निन्नयं पेसर कीर्तनेयिं ।।
इरल दूरदि सूर्यदेवनु ।
परम हरुष व कोडुव कमलके ।
दुरित दुःखव दूडि नीनुं नलिसु मनविदनु ।।

हिन्दी

हे परमात्मन्! आपके स्तोत्र की महिमा के संबन्ध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, वह तो संपूर्ण भव-दोषों को समाप्त करने वाला है। आपकी तो पवित्र कथा भी दुरितहर है; जैसे साक्षात् सूर्य तो दूर ही रहता है, किन्तु उसके प्रभा-स्पर्श से जलाशयों में कमल सहज ही खिल उठते हैं।

बाङला

सूर्य त दूरेइ थाके तबू तार प्रभाय सरोवर स्थित कमल विकसित हय। हे जिनेन्द्र, ठिक सेइरूप तोमार स्तव त दूर तोमार नाम उच्चारण मात्रेर संसारी जीवेर समस्त पाप हरण करे।

अंग्रजी

Although the sun is far away, yet through its radiance alone blossoms the lotuses in the ponds. Likewise what to say the Encomium of you free of all defect, the narration of thy doings will itself prove destructive of the evils of the Living Beings.

मन्त्र

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्णसोदाराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा।

मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं क्लीं झ्वीं र: र: हं ह: नम: स्वाहा।

प्रभाव–पथ कीलित होता है और सातों भय भाग जाते हैं।

अन्वय + अर्थ

सहस्र किरण:
सूर्य यद्यपि
दूरे
दूर ही रहता है तथापि
प्रभा एव
उसकी कान्ति ही
पद्माकरेषु
तालाबों/जलाशयों में
जलजानि
कमलों को
विकासभाञ्जि
प्रफुल्लित/विकसित
कुरुते
कर देती है (उसी तरह)
अस्त समस्त दोषम्
समस्त दोषों से रहित
तव
तुम्हारा
स्तवनं दूरे आस्ताम्
स्तवन/स्तोत्र दूर की बात है
तत्वत् संकथा अपि
तुम्हारी चर्चा/सद्वार्ता भी
जगताम्
सारे संसारी जीवों के
दुरितानि
पापों को
हन्ति
नष्ट कर देती है।

यन्त्र

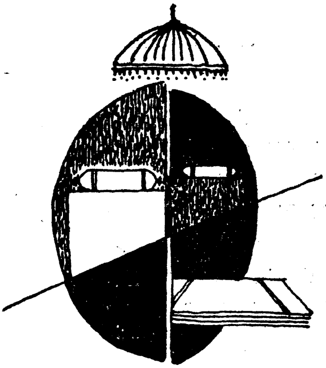

संस्कृत

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ? ।।१०।

हिन्दी

इसमें नवीनता क्या
कैसी अद्भुतता, बोलें !
भक्त बने भगवान्
भक्ति करते प्रभुवर की ।
जो मनुष्य
सेवा करते
सामान्य धनिक की
वे बनते
खुद धनिक
समय की
पाकर सीढ़ी ।

हिन्दी (भाषा)

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत,
तुमसे तुम गुण वरनत संत ।
जो अ-धनी को आप-समान,
करै न सो निंदित धनवान ।।

राजस्थानी

थारी इस्तुति करवा वाला,
थारा जस्या वणे, अचरज नी ।
कई काम रा अस्या सेठ व्ही–
राखे नौकर ने नौकर ही ।

गुजराती

एमां कांई नथी नवीनता, नाथ देवाधिदेव,
भक्तो सर्वे पद प्रभुतणुं पामतां नित्यमेव;
लोको सेवे कदि धनिकने तो धनी जेम थाय,
सेवा थातां प्रभुपदतणी आप जेवा ज थाय.

मराठी

आश्चर्य काय ? भुवनत्रय-नाथ ! लोक ।
भावें तुझें स्तवन जे करिती अनेक ।।
त्वत्तुल्य होति जन ते मग तेच कोण ।।
भृत्याश्रितास गणतील न जे समान ।।

कन्नड़

गुणविहीनरु निन्न तुतियिं ।
गुणवनार्जिसि निनगे समनह ।
गणने पडेवरिदेनु मच्चरियप्प मातल्ल ।।
पणमनळ्ळवनाश्रि तंगं ।
धनमनीयुत तन्न सरिबरे ।
घनतेयीय दोडवन नाश्रयिसेनु फल गुरुवे ।।

हिन्दी

हे भुवनभूषण ! संसार द्वारा वरणीय अलंकार; हे प्राणिमात्र के स्वामिन् ! आप में विद्यमान गुणों का वर्णन करते हुए जो आपकी समीचीन स्तुति करते हैं, वे आपके सदृश ही हो जाते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि जो अपने वैभव का आश्रयेप्सु हो, उसे यदि वह अपने समान न बनाये तो उस विभूतिधर से भला क्या लाभ ?

बाङला

हे भुवनभूषण, एते आश्चर्येर कि आछे जे संसारे जे तोमार सत्य ओ समीचीन गुणेर स्तव करे से तोमार तुल्यइ हये जाय। कारण एइ लोके जे आश्रित के निजेर विभूति द्वारा निजेर तुल्य करे ना नेय, से प्रभूते कि प्रयोजन ?

अंग्रेजी

O supremely splendid personality of the world and the protector of the living beings ! It is not surprising that those who eulogise you, the abode of true virtues, become equal to you. What is the use of a master if he does not make his dependents equal to him in wealth and dignity.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीणं।

मंत्र –जन्मसद्ध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादि नोर्यानाक्षान्ताभावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रूं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् संपूर्ण स्वाहा।

प्रभाव–कुत्ते का काटा निर्विष हो जाता है।

अन्वय + अर्थ

भुवन भूषण !
हे विश्व-शृंगार !
भूतनाथ
हे जगन्नाथ ! !
भुवि
संसार में
भूतैः गुणैः
विपुल/समीचीन गुणों के द्वारा
भवन्तम्
आपका
अभिष्टुवन्तः
स्तवन करने वाले व्यक्ति
भवतः तुल्यः भवन्ति
आपके समान हो जाते हैं
अति अद्भुत् न
यह अधिक आश्चर्यजनक नहीं है
ननु
निश्चय से (क्योंकि)
नाथ यः इह आश्रितम्
हे जगत्पते ! जो कोई स्वामी इस लोक में अपने आश्रित को
भूत्या आत्मसमम् न करोति
विभूति से अपने समान नहीं करता है
तेन किं वा ?
उस स्वामी/मालिक से क्या लाभ ?

यन्त्र

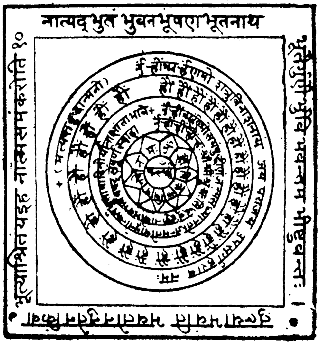

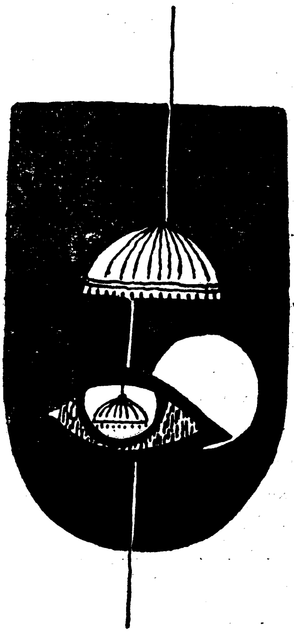

संस्कृत

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ? ।११।।

हिन्दी

देख तुम्हें
अनिमेष
चक्षु जन के
होंगे क्यों तुष्ट ?
इधर या उधर
कहीं भी ।
जिसने
शशि-किरणों-सा उज्ज्वल
दूध पिया हो
खारा जल सागर का
उसको
भाये कैसे ?

हिन्दी (भाषा)

इकटक जन तुमको अविलोय,
अवरविषैं रति करैं न सोय ।
को करि छीर-जलधि जल-पान,
क्षार नीर पीवैं मतिमान ।।

राजस्थानी

जिन ! थारा जिण कीधा दरसण–
करे न दरसण दूजाँ रा ।
खीर समन्दर रा पीवणिया–
क्यूँ पीवे पाणी खारा ।

गुजराती

जोवा जेवा जगमहीं कदि होव तो आप एक,
बीजा सर्वे सकळ प्रभुथी ऊतरे छेज छेक;
पीधुं होव तो उजळुं दूध जो चंद्र जेवुं मजानुं,
खारां खारां उदधि जळने को पीए केम मानुं.

मराठी

मी पाहिल्यावर तुझी रमणीय मूर्ति ।
अन्यत्र नेत्र मम तृप्त कधी न होती ।।
ते दुग्ध-सिंधु-पय पीऊन थंडगार ।
इच्छील कोण जलधी-जल काय खार।।

कन्नड़

नाकर ति भकुतियोळु दर्शिप ।
हे करुणि निन्नन्नू नरना ।
लोकिसुते बेरोंद दर्शिसि तोषिपने जगदि ।।
आकळेय पालगडल नीरनु ।
साकु साकेन्नुतलि कुडिदव ।
नेकपेक्षिपनुप्प कडलिन नीर कुडिवुदके ।।

हिन्दी

हे प्रभो ! अपलक नेत्रों से (निरन्तर) दर्शनीय आपको दृष्टिगोचर करने के अनन्तर लोकनेत्र अन्यत्र कहीं दर्शन-सन्तोष को प्राप्त नहीं होते। (ऐसा स्वाभाविक ही है; क्योंकि) इन्दु-किरणों के समान शुभ्र क्षीरसागर का पय पी कर कौन ऐसा जन होगा जो लवणाकर का क्षारवारि पीने की इच्छा करेगा ?

बाङ्ला

हे भगवन् ! अनिमेष नयने जे तोमाके एक बार देखे छे तार दृष्टि आर कोथाओ सन्तोष लाभ करे ना। कारण चन्द्रकौमुदीर मत उज्ज्वल शोभामय क्षीर-समुद्रेर जल-पान करे लवण समुद्रेर जलपान करबार कारइ ना इच्छा हय ?

अंग्रेजी

The eyes of man after seeing you, who deserves to be looked at always with untwinkling eyes, do not find satisfaction elsewhere. Who will like to sip the saline water of the sea after he has tasted the water of the milky sea possessing the splendour of the moon.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमति-निवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा।
प्रभाव–इच्छित को आकर्षित करता है; वर्षा को विवश करता है।

अन्वय + अर्थ

अनिमेष विलोकनीयम्
अपलक दर्शन करने योग्य
भवन्तम्
आपको
दृष्ट्वा
देखकर
जनस्य चक्षुः अन्यत्र तोषं न उपयाति
भक्त/साधक की आँखें और कहीं संतृप्त/संतुष्ट नहीं होतीं (यह ठीक ही है, क्योंकि)
शशिकर द्युति दुग्धसिन्धोः पयः पीत्वा
चन्द्र-किरणों के समान शुभ्र/उज्ज्वल क्षीर-समुद्र का जल पी कर
कः
कौन
जलनिधेः क्षारं जलम्
समुद्र के खारा पानी
असितुम्
पीने की
इच्छेत्
इच्छा करेगा !!!

यन्त्र

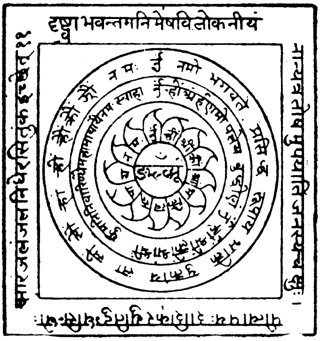

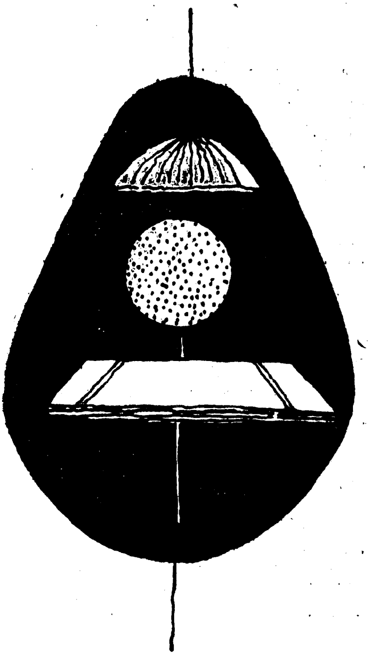

संस्कृत

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ! ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।१२।।

हिन्दी

शान्तराग-रुचि वाले
जितने थे
परमाणु
तीन लोक में,
उन सबका
आकलन
देह यह तेरी अनुपम ।
ये
सब-सारे
बस इतने ही थे
वसुधा पर
इसीलिए
तुम-जैसा सुघर-सुरूप
नहीं कोई
धरती पर ।

हिन्दी (भाषा)

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन,
जिन परमानु देह तुम कीन ।
हैं तितने ही ते परमानु,
यातैं तुम सम रूप न आनु ।।

राजस्थानी

व्ही परमाणु वतरा ही हा,
जिण सूँ थारी रचना व्ही है ।
इण खातर, इण धरती माथे-
थारा जस्यो नहीं कोई है ।

गुजराती

जे जे ऊंचा अणु जगतमां ठाम ठामे पड्या छे,
ते ते सर्वे ग्रही ग्रही अहा! आपमांही जड्या छे
आ पृथ्वीमां परम अणुओ तेटला मात्र दीसे,
ते हेतुथी प्रभु तुज समु रूपनां अन्य को छे.

मराठी

ज्या शांत राग रुचियुक्त अणू-गणांत ।
मूर्ती तुझी घडून जाय ललामभूत ।।
ते तेवढेच जगतीं परमाणु मोठे ।
त्वत्तुल्य रूप दुसरें न कधींहि कोठें ।।

कन्नड़

वीतरागने आदिनाथने ।
नूतनद परमाण गणगळु ।
नुतु निन्नी कांति रूपव मगिदुवेंदेनलु ।।
सातिशयदिन्नोंदु मूर्तिय ।
तात निनगेणेयप्प रूपव ।
तात निनगेणेयप्प रूपव ।
भूतळदि नोळ्पा तनावनु दिव्यदनि यतना ।।

हिन्दी

हे त्रिभुवन के एकमात्र सौन्दर्यसार! जिन शान्तराग तेजोधर परमाणुओं से आपका विग्रह निर्मित है, वे परमाणु तावन्मात्र ही इस पृथ्वी पर विद्यमान थे, अतः आपके सदृश कोई और रूप नहीं है। यदि उन वीतराग-परमाणुओं का कोई अंश इस धरित्री पर बचा होता तो कदाचित् आप सदृश अन्य निर्माण संभव था; किन्तु पृथ्वी के समस्त अराग परमाणु तो आपके निर्माण में ही परिसमाप्त हो गये तब आपकी तुलना करने योग्य अन्य कोई कैसे अस्तित्वमान हो सकता है? अर्थात् आप सर्वोत्कृष्ट हैं, अतुल्य हैं।

বাঙলা

হে ত্রিভুবন ললাম! যে শান্ত রাগের পরমাণু দিয়ে তোমার অবয়ব রচিত হয়েছে, সেই পরমাণু নিশ্চয়ই ততটুকুই ছিল কারণ তোমার মতরূপ এ পৃথিবীতে আর কোথাও দেখি না।

अंग्रेजी

O unique embellishment of the three worlds ! those quiet and splendid atoms with which your body has been built, are in fact limited to that extent only, as there is no other Beauty like you on this Earth.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहियबुद्धीणं।

मंत्र –ॐ आं आं अं अः सर्वराजप्रजा-मोहिनि सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–हाथी का मद उतर जाता है, अभीप्सित रूप मिल जाता है।

अन्वय + अर्थ

त्रिभुवनैक ललाम* भूत
हे तीन लोक के एकमात्र शिरोभूषण!

यैः
जिन

शान्त राग रुचिभिः परमाणुभिः त्वम् निर्मापितः
शान्त परिणामों की कान्ति वाले परमाणुओं से तुम बनाये गये हो

खलु
निश्चय ही

ते
वे

अणवः अपि
परमाणु भी

तावन्त एव
उतने ही थे

यत्
क्योंकि

ते समानम् पृथिव्यां अपरं रूपम् न हि अस्ति
तुम्हारी तरह का कोई और रूप इस धरती पर नहीं है।

*माथे पर धारण किये जाने वाले आभूषण; यथा:– झूमर, कटियाँ आदि।

यन्त्र

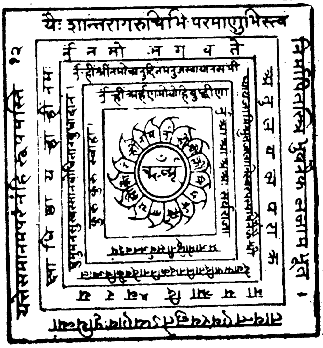

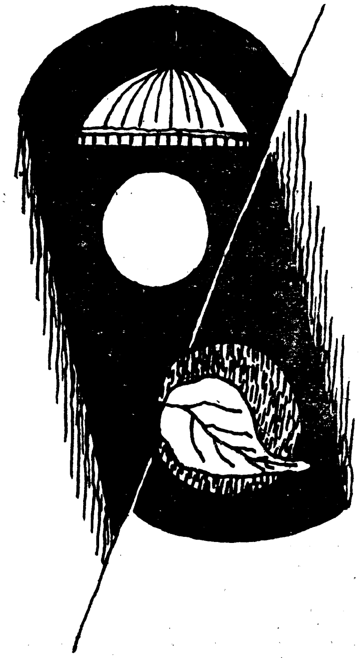

पीत,

पात-जैसे
फीका होता
पलाश का।

हिन्दी (भाषा)

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार,
सुर-नर-नाग-नयन-मनहार।
कहाँ चंद्र-मंडल सकलंक,
दिन में ढाक-पत्र सम रंक।।

राजस्थानी

थारा मुखरी होड़ करे, यो–
चन्द्र कळंकी मने न वात।
घटे-वदे अर पीलो पड़जा–
ज्यूं आतो देखे परभात।

गुजराती

जेणे जीती त्रिभुवनतणी उपमा सर्व रीते,
देवोना जगगणतणा चित्तने खेंचती ते;
थातो झांखो शशि पण प्रभु! आपना मुखपासे,
मेला जेवो दिनमहीं अने छेक पीलो ज दीसे.

संस्कृत

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम्।।१३।।

हिन्दी

मुख-मण्डल की
शोभा
सुर-नर-उरग
सभी के नयन लुभाती।

तीन लोक में
जितने हैं
उपमान
यशस्वी वह उन सब पर।
चन्द्र-बिम्ब
सकलंक
दीन दिन में हो जाता

मराठी

कोठें तुझें मुख सुरासुरनेत्रहारी।
जे वक्त्र तीन जगतीं उपमा न धारी।।
तो चंद्र कोणिकडचा दिसतो मलीन।
जो बासरीं फटफटीत कलाविहीन।।

कन्नड़

सुरनरोरग भविय कण्मन।
सेरयगे रवुदु निन्न मोगवदु।
निरुपमवु मूलोकदोळगुं पोळेव कांतियलि।।
सरियदल्लवु शशकळंकगे।
सोरगि पगलोळु तेजवळिवगे।
निरुत कुंदद सोडर बेळकिन निन्न मुखपद्म।।

हिन्दी

हे अनिन्द्य सुन्दर! देव, मनुष्य, विद्याधर, धरणेन्द्र आदि के नेत्रों को आकर्षित करने वाला तथा त्रिभुवन के उपमान द्रव्यों को समग्र भाव से विजित करने वाला आपका मुख कहाँ और कहाँ कलंक-कालिमा से मलिन, दिन में जीर्ण-पत्रवत् पाण्डु होने वाला चन्द्रबिम्ब ?

बाङ्ला

कोथाय सुरनर उरगनेत्रहारी ओ त्रिजगतेर समस्त उपमा के पराभूतकारी तोमार मुखमण्डल आर कोथाय कलंक-मलिन चन्द्रबिम्ब जा सूर्येर प्रकाशे पलाशपत्रेर मत पाण्डुर हये जाय।

अंग्रेजी

O Ye Lord ! thy splendid face which has focussed the eyes of gods, men and serpents, surpasses all the objects of comparision in this three fold world. How can it be compared to the disc of the moon which is stained by dark spots and turns pale in the day like leaves of Buteafrondosa (Palash).

मन्त्र

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं।

मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनि सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–चोर चोरी नहीं कर पाते, मार्ग में कोई भय नहीं रहता, लक्ष्मी प्राप्त होती है।

अन्वय + अर्थ

सुर नर उरग नेत्रहारि
देव, मनुष्य और भवनवासी देवों के नेत्रों को लुब्ध करने वाले अर्थात् अद्वितीय–अनुपम - अप्रतिम

निःशेष निर्जित जगत् त्रितय उपमानम्
त्रिलोकवर्ती सारे उपमानों को जीतने वाला

क्व ते वक्त्रम्
कहाँ तुम्हारा मुख और

क्व
कहाँ

निशाकरस्य कलङ्क मलिनम् बिम्बम्
चन्द्रमा का कलंक से मलिन रहने वाला बिम्ब

यत्
जोकि

वासरे
दिन में

पाण्डु पलाश कल्पम्
पलाश (टेसू, ढाक) के पत्ते के समान फीका/निस्तेज पड़ जाता है।

यन्त्र

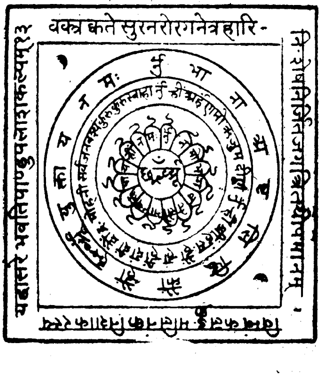

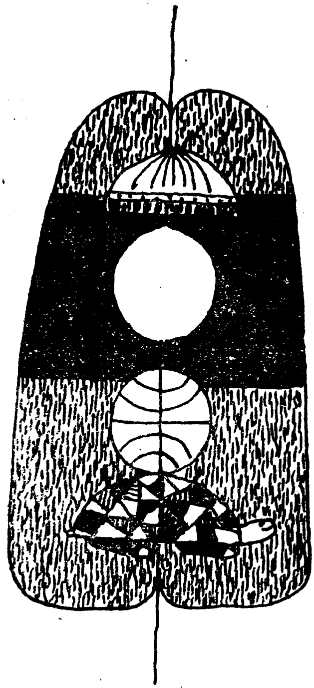

संस्कृत

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।१४।।

हिन्दी

जैसे
लिये कलाएँ
सोलह
चन्द्र सुशोभित,
वैसे
तीन भुवन में व्याप रहे
तेरे गुण ।
तारों-जैसे
आश्रित तो तेरे हैं
लेकिन
फिर भी वे स्वाधीन
सहें क्यों
शासन 'पर' का ।

हिन्दी (भाषा)

पूरन-चंद-ज्योति छविवंत,
तुम गुन तीन जगत लंघंत ।
एक नाथ त्रिभुवन-आधार,
तिन विचरत को करै निवार ।।

राजस्थानी

तीन लोक थारा गुण व्यापे–
पूनम रे चन्दर ज्यूँ उजला ।
वणीं तराँ ही नाथ ! आसरो–
ले थारो घूमे सगला ।

गुजराती

व्याप्या गुणो त्रिभुवनमहीं हे प्रभु ! शुभ्र एवा,
शोभे सर्वे सकळ कळना पूर्णिमा चंद्र जेवा,
तारा जेवा जिनवरतणा आशरे ते रहे छे,
स्वेच्छाथी तो अहीं तहीं जतां कोण रोकी
शके छे ?

मराठी

संपूर्ण चंद्रसम ज तव शुभ्र गुण
उल्लंघितात भुवनत्रय खास पूर्ण ।।
ते योग्य, जे भुवनेश्वर-संश्रयास
पीडा करील मग कोण कसा तयांस? ।।

कन्नड़

पूर्णचंद्रन कळेगळि सं ।
पूर्ण निर्मल निन्न गुणगण ।
वर्णनातीतंगळागिये तुंबि मूजगदि ।।
आर्णवक्कि मिगिलु गुण्पि ।
पूर्ण निन्नाश्रयद कर्तादि ।
गूर्णिसुत्तिह विष्टविहृंतावगुं मेरेदु ।।

हिन्दी

हे भगवन् ! शुभ्रता में आपकी गुणवत्ता चन्द्रमा के समग्र मण्डल के कला-प्रभावों-सी समुज्ज्वला है, उसने तीनों भुवनों की सीमा को अतिक्रान्त किया है, वह अपरिसीम है, कहीं कोई तट नहीं है उस गुणवत्ता का। जिसके जीवन की एकमेव शरण जगदीश्वर आप ही हों तो फिर उसके स्वतन्त्र विचरण पर अंकुश किसका/कैसा ?

बाङ्ला

हे त्रिलोकेश्वर ! पूर्णकला पूर्णिमार चन्द्रकौमुदीर मत तोमार उज्ज्वल गुण-राशि त्रिजगत के छापिए जाच्छे। जे गुण एक एव अद्वितीय तोमा के आश्रय करे आछे तादेर इच्छामत विचरण होते के निवारण करते पारे।

अंग्रेजी

O Lord ! Your illuminating virtues as bright as the silvery moon outstep the three worlds. How can those who have been patronised by the singular and matchless Almighty of the three Worlds be impeded by any body in their free movement.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं।

मंत्र –ॐ नमो भगवत्यै गुणवत्यै महा-मानस्यै स्वाहा।

प्रभाव–लक्ष्मी प्राप्त होती है, आधि-व्याधि-शत्रु आदि का आतंक/भय दूर हो जाता है।

अन्वय + अर्थ

त्रि जगत् ईश्वर !
तीनों लोकों के नाथ !

तव
तुम्हारे

संपूर्ण मण्डल शशाङ्क कला कलाप शुभ्रा गुणाः
पूर्णिमा के चन्द्रबिम्ब की कलाओं की भाँति उज्ज्वल गुण

त्रिभुवनम्
तीनों लोकों को

लङ्घयन्ति
लांघते हैं-अर्थात् तीनों लोकों में व्याप्त हैं।

ये
जो

एकम्
अद्वितीय

नाथम्
(तीनों लोकों के) नाथ

संश्रिताः
तुम्हारे आश्रय में रहे हैं

तान्
उन्हें

यथेष्टम्
स्वेच्छानुसार

संचरतः कः निवारयति ?
सकल लोकों में अबाध घूमने से कौन रोक सकता है ?

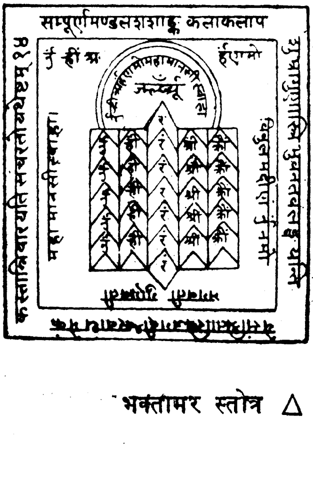

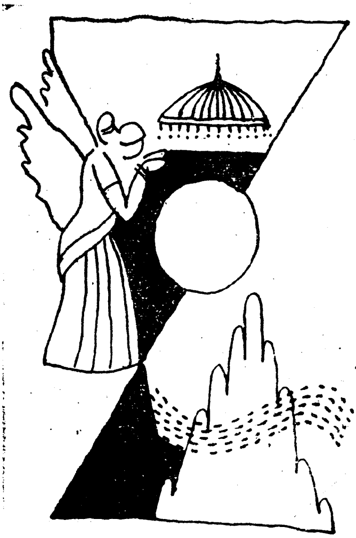

संस्कृत

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्? ।।१५।।

हिन्दी

इसमें क्या आश्चर्य
कि
अप्सरिकाएँ तुझमें
किंचित्
मनोविकार
न
पैदा कर पायी हैं ।
प्रलयंकारी पवन
हिलाते
पर्वत सारे
किन्तु मेरु का शिखर
प्रकम्पित कर पाते क्या ?

हिन्दी (भाषा)

जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ,
मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ।
अचल चलावै प्रलय समीर,
मेरु-शिखर डगमगैं न धीर ।।

राजस्थानी

रिझा सके नी थने अपछरा-
इण में नहीं अचम्भो भारी ।
हिला सके कद मेरू-शिखर ने
पवनवेग प्रलयंकारी ।

गुजराती

इंद्राणीओ चलित करवा आदरे जे प्रकारो,
तोये थातां करि नहि अहा आपने रे विकारो,
डोले जो के सकळ महिधरो कल्पना वायरा थी.
डोले तो ये कदि नव अहा, मेरु ए वायरा थी.

मराठी

दिव्यांगनास बघुनी तव चित्त थोर
आश्चर्य काय ढळलें न अणू विकार ।।
कल्पांत वायुगतिनें हलतील शैल
तो मंदराद्रि कधिहीं न मुळीं हलेल ।।

कन्नड़

देववनिता रूपवैखरि ।
देवदेवोत्तमने निन्नय ।
भाववैकल्प्यवनु पुट्टिसलिल्ल वेंदेनलु ।।
आवनन्त्वरिपडुव कोनेयलि ।
सावर्नुविगे तरुव सुट्टुरे ।
नोवतरलार्पुवुदे मंदरकितर गिरिगळोलु ।।

हिन्दी

लावण्य, उन्माद और सुषुमा में संतरित देवांगनाएँ अपने मादक हावभाव से जिसके चित्त में किंचित् विकार उत्पन्न न कर सकीं तो इसमें आश्चर्य कैसा ? प्रलय के उनचास पवन नगण्य पर्वत-शिखर को ध्वस्त कर सकते हैं; किन्तु मन्दराचल का सुरम्य शिखर तो अविचल/अकम्प ही खड़ा रहता है।

बाङ्ला

हे देव ! देवांगनादेर देखेओ तोमार मन यदि किञ्चित मात्रओ विचलित ना हये थाके तवे तातेर वा आश्चर्येर कि आछे! कारण प्रयलकालीन वात्या अन्यान्य पर्वत शिखर के चालित करते समर्थ हलेओ कि मेरु शिखर के चालित करते समर्थ हय ?

अंग्रेजी

It is no wonder if the celestial goddesses could not deflect your mind even a bit towards carnal inclinations. Can the gales of the Doom's Day (world's final Annihilation) shaking all the mountains, ever shake the peak of Mount Sumeru ?

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं।

मंत्र –ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्रशृङ्खलां मानसी महा-मानसीदेवीभ्यः स्वाहा।

प्रभाव–प्रतिष्ठा और सौभाग्य में वृद्धि होती है।

अन्वय + अर्थ

यदि
अगर
त्रिदशाङ्गनाभिः ते मनः
देवांगनाओं से तुम्हारा मन
मनाक् अपि
तनिक भी
विकार मार्गम्
विकृति के मार्ग को
न नीतम्
खींच कर नहीं लाया जा सका
अत्र किं चित्रम् ?
तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?
किम् कदाचित्
क्या कभी
चलित अचलेन
प्रकम्पित किये हैं पर्वत जिसने ऐसे
कल्पान्त काल मरुता
प्रालेय पवन से
मन्दर अद्रि शिखरम्
सुमेरु पर्वत का शिखर
चलितम्
विचलित हो सकता है/डिग सकता है ?

यन्त्र

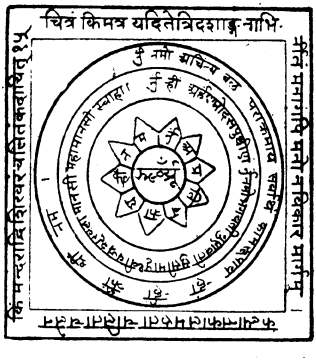

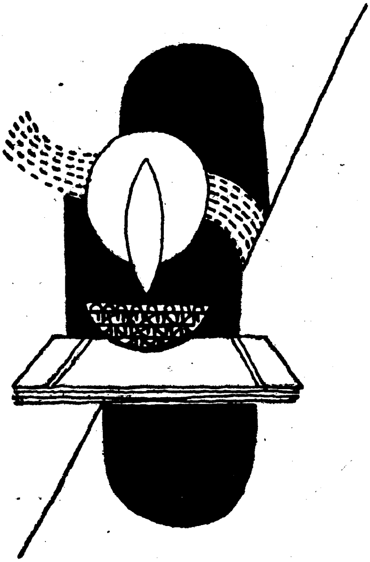

हिन्दी (भाषा)

धूम-रहित वाती गत नेह,
परकासै त्रिभुवन घर एह।
वात-गम्य नाहीं परचंड,
अपर दीप तुम बलो अखंड ।।

राजस्थानी

तीन लोक रो दीवड़लो थूँ,
तेल न धुँवाँ वाटी रो।
बुझा सके नी झौंको, तो भी–
प्रलैकाळरी आंधी रो।

संस्कृत

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः।।१६।।

हिन्दी

आप दीप हैं ऐसे
जो निर्धूम
न जिसमें कोई बाती
तेल बिना जलता
करता
आलोकित
तीनों लोक।
पर्वत कम्पित करने वाले
मरुत् न इसको छू पाते हैं
यह अकम्प-निष्कम्प
जगद्विख्यात
प्रकाशक
'अपने-पर' का।

गुजराती

कयारे होतां कदि नथी अहा,धुम्र के वाट जेमां,
एकी साथे त्रिभुवन दीपे ए खूबी छेज तेमां;
ना ओलाए कदि पवनथी हो कदिए नमेरो,
एवो कोई अजब प्रभुजी, दिवडो आप केरो.

मराठी

तूं तैलवात-विरहीत असा असून।
देतोस तीन जगतांस उजेड पूर्ण ।।
झालास तूं मग कधीं हि न वायुगम्य।
आहेस तूं म्हणुन एकदिवा अगम्य ।।

कन्नड़

परमपावन जोति रूपने।
निरुपमवु निन्नी प्रकाशवू।
सोरगदडु तो बत्ति तैल मुमेरडुमिल्लदेयुं ।।
उरिवुदेल्ला कालदोळगुं।
परिसि बेळकनु मूरु लोकदो।
ळररे नंददु गिरियनुरुळिप कोनेय मारुतके ।।

हिन्दी

हे प्रभो ! तुम ऐसे अद्वितीय दीपक हो– जहाँ न धुआँ है, न बाती, और न तैलपूर; आप वस्तुत: ऐसे दीप हैं जो तीनों लोकों को सांगोपांग उद्घाटित करता है और जो पर्वतों को झकझोर देने वाले प्रचण्ड तुफानों की पहुँच से परे हैं ।

बाङला

হে নাথ ! তুমি ত্রিজগত প্রকাশক এমন একটি দীপ জা নির্ধূম–জাতে না বর্তিকা আছে, না তৈলও । জাকে পর্বত চালিত কারী পবনও একটুও বিচলিত করতে পারে না ।

अंग्रेजी

O Lord ! You are the supernatural lamp of rare splendour illuminating the entire Universe (diffusing right knowledge) with no smoke (hatred), no wick (sensual desires), no oil (attachment) and unaffected by the storms (heretical one sided dogmatisms).

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं ।

मंत्र –ॐ नमो मंगला-सुसीमा-नाम-देवी-भ्यां सर्वसमीहितार्थवज्रश्रृङ्खलां कुरु कुरु स्वाहा ।

प्रभाव–सब तरह की सफलताएँ तथा विजय प्राप्त होती है ।

अन्वय + अर्थ

नाथ !
हे भगवन् !
त्वम्
तुम
निर्धूम वर्तिः
धुएँ तथा बाती से रहित
अपवर्जित तैल पूरः
तेल के पूर से भी रहित
चलित अचलानाम्
पर्वतों को चलायमान करने वाले
मरुताम्
पवन(ों) के लिए भी अगम्य/उनकी पहुँच से परे
जगत् प्रकाशः
जगत् को रोशनी से भर देने वाले
अपरः दीपः
अद्वितीय दीपक
असि
हो (क्योंकि तुम)
इदम्
इस
कृत्स्नम्
समस्त
जगत् त्रयम् प्रकटीकरोषि ।
त्रिलोक को प्रकट करते हो ।

यन्त्र

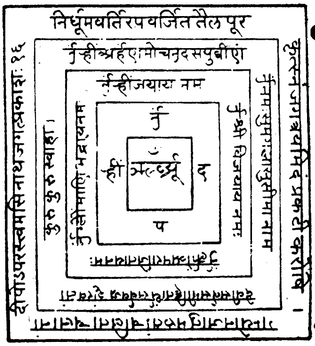

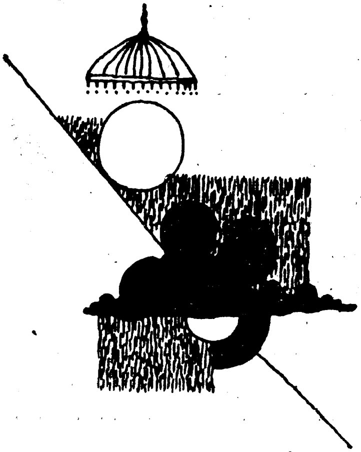

राजस्थानी

सूरज सूँ भी ऊँचो है थूँ–
लगे न राहू, थूँनी आंथे।
बादल सूँ नी रुके उजालो–
थाँ सूँ तीनुँ लोक परकासे।

गुजराती

जेने राहु कदी नव ग्रसे अस्त थातो नथी जे,
आपे सौने प्रभुरूप रवि तेज लोको मही जे;
जेनी कांति कदी नव हणे वादळांओ समीपे,
एवो कोई अभिनव रवि आपनो नाथ दिपे।

संस्कृत

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके।१७।।

हिन्दी

आप सूरज हैं
नहीं जो अस्त होता
राहु जिसको ग्रस नहीं पाता कभी भी
जगत् को युगपत् प्रकाशित
कर
रहा
जो
मेघ जिसकी रोशनी को ढँक न पाते
एक पल को,
आप वह आदित्य
अभिनव/स्वस्तिकर/महिमाभिमण्डित।

मराठी

अस्तास जासि न कदापि न राहु आड।
तीन्ही जगांवर तुझा पडतो उजेड ।।
ते मेघ झाकति मुळीं न तुझा प्रभाव।
चाहे न तो तुज पुढे रविचा प्रभाव ।।

हिन्दी (भाषा)

छिपहु न लुपहु राहु की छाँहिं,
जग-परकाशक हो छिन माँहिं।
घन अनवर्त्त दाह विनिवार,
रवितैं अधिक धरो गुणसार ।।

कन्नड़

निन्न बेळकिगस्तमिल्लवू।
तिन्नलारदु राहुवदनं।
चेन्न बेळगुवे मुरु लोकवनेक कालदोळु ।।
बन्नपडुवा सूर्यरश्मिगे।
पोन्न बेळकिदु साटियप्पुदे।
नन्नि निन्नि बेळक मेघवू मब्बु माडलदा ।।

हिन्दी

हे ज्योतिर्धर! तुम्हारी प्रभा सूर्य के दुस्सह-अदम्य आलोक से भी अधिक तेजोमय है; क्योंकि उसका कहीं कोई अस्त नहीं है और वह राहु की पहुँच-परिधि में भी नहीं है। वह सहज ही तीनों लोकों को युगपत् आलोकित करता है/प्रकट करता है। तेरे इस अप्रतिम आलोक को तो सघन मेघ भी आच्छादित करने में असमर्थ हैं।

बाङ्ला

तुमि खनो अस्तगत हओ ना, ना तोमाके राहु ग्रास करते पारे, ना तोमार प्रभाव मेघेइ आच्छादित हय। तुमि एक समये त्रिजगत् के सहजेइ प्रकाशित कर। ए भावे हे मुनीन्द्र, तुमि लोके सूर्य महिमा के म्लानकारी महिमा धारण कर।

अंग्रेजी

As You never set, you are neither affected by the Rahu (eclipse), nor your supernatural grandeur ever overshadowed by the cumulous of the clouds and as you simultaneously enlighten the entire universe, you, therefore, O Supreme Sage ! excel the grandeur of the Sun.

मन्त्र

ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो अट्ठाङ्गमहानिमित्त कुसलाणं।

मंत्र—ॐ णमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्र-विघट्टे क्षुद्रपीड़ां जठरपीड़ां भंजय भंजय सर्वपीड़ा निवारय निवारय सर्वरोगनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव—सारे रोग रूकते तथा दूर होते हैं।

अन्वय + अर्थ

मुनीन्द्र!
हे मुनीश! (आप)
न कदाचित्
न कभी
अस्तम्
अस्त को
उपयाति
प्राप्त होते हैं
न राहुगम्यः
न राहु से ग्रसे जाते हैं
न अम्भोधर उदर निरुद्ध महा प्रभावः
न आपका महान् प्रताप मेघों के उदर में निरुद्ध होता / रुक पाता है
सहसा
सहज ही
युगपत्
एक ही समय में/समान्तर
जगन्ति स्पष्टीकरोषि
तीनों लोकों को उजागर करते हैं
लोके
लोक में
सूर्य अतिशायि महिमा असि
सूर्य के प्रताप को भी उल्लंघन करने वाला प्रताप धारण करने वाले हैं।

यन्त्र

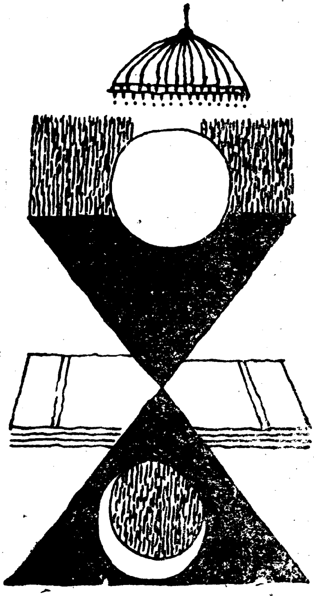

संस्कृत

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ।।१८।।

हिन्दी

मुख-सरोज
प्रभु तेरा
अभिनव चन्दा ही है
नित्य उदित
मोहान्धकार को ग्रसने वाला
कान्तिमान
अति अद्भुत
मेघ न ढँकते जिसको
राहु-मुक्त
जग को आलोकित करने वाला ।

हिन्दी (भाषा)

सदा उदित विदलित मनमोह,
बिघटित मेघ राहु अवरोह ।
तुम मुख-कमल अपूरब चंद,
जगत-विकाशी जोति अमंद ।।

राजस्थानी

अजब चन्द्र ज्यूँ थारो मुख है–
रहे उगतो, नित परकासी ।
राहू ग्रसे न बादल ढाँके–
पड़े न फीको रे अविनासी ।

गुजराती

शोभे रूडुं मुख प्रभुतणुं मोह जेनाथी थाके,
जेने राहु पण नव ग्रसे वादळांओ न ढांके;
शोभे एवां मुखशशि अहा, हे प्रभु! आप केरो,
जे दीपावे जगत सघळुं, चंद्र जाणे अनेरो.

मराठी

मोहांधकार विरहीत तुझा जगांत ।
आहे सदा उदय राहु नसे गिळीत ।।
ते तेजयुक्त मुखपद्म तुझें जगाला ।
आहे अपूर्व विधुबिंब पहावयाला ।।

कन्नड़

अनवरत मेळ्गे योळगिर्पुदु ।
मुनिदु कोल्वुदु मोह तिमिख ।
ननुपमने तां राहुवदनके मुगिलिनोडुणिगे ।।
घनतेयानुते निलुकदिर्पुदु ।
जनतेयरियद चंद्रबिंबवु ।
कनकदंतेये पोळेयुतिरुवुदु निन्न मुखकमलं ।।

हिन्दी

हे प्रभो ! तुम्हारा मनोज्ञ मुख-कमल विश्व को आलोकित करने वाला ऐसा अपूर्व चन्द्रमा है, जो नित्य उदित है, जिसने मोहान्धकार को ध्वस्त कर दिया है, और जिसे काले बादल तथा राहु ढक सकने में सर्वथा असमर्थ हैं।

बाङ्ला

जे हेतु अस्तनाइ सेइ जन्य नित्य उदित, मोहरूप महान्धकार के नष्टकारी, राहु जाके ग्रास करते पारे ना वा मेघ आवृत्त एवं जा जगत् के प्रकाशित करे हे भगवन् ! ए रूप जे तोमार मुखारविन्द ता अपूर्व चन्द्र-बिम्बेर मत शोभित ।

अंग्रेजी

O Lord ! your splendent lotus-like face, which always remains risen, has destroyed the darkness of delusion, can never be affected by the Rahu nor shadowed by the clouds, and which has always illuminated the Universe, shines like the disc of a singular and peerless Moon.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणड्ढिपत्ताणं ।
मंत्र –ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।
प्रभाव–शत्रुसैन्य स्तम्भित होती है।

अन्वय + अर्थ

यत्
जो
नित्य उदयम्
सदैव उदित रहता है
दलित मोह महा अन्धकारम्
मोह के सघन अन्धकार को नष्ट करता है
न राहु वदनस्य गम्यम्
जो न राहु के मुख में जाने वाला है
न वारिदानाम्
न जिसे बादल ही ढक सकते हैं और जो
जगत् विद्योतयत्
जगत् को प्रकाशित करता है (हे प्रभो, ऐसा)
तव
तुम्हारा
अन् अल्प कान्ति
अतिशय कान्तिमान
मुख अब्जम्
मुख कमल
अपूर्व शशाङ्क बिम्बम्
विलक्षण चन्द्रमा के बिम्ब की भाँति
विभ्राजते
शोभित है।

यन्त्र

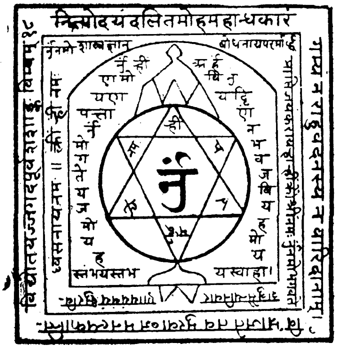

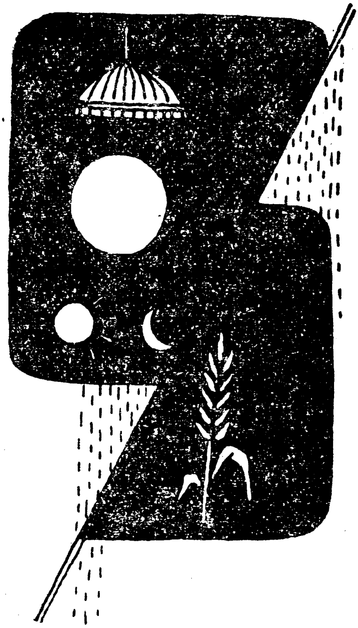

संस्कृत

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ।।१९।।

हिन्दी

प्रभु-मुख-शशि
अंधियारों के मुख द्युति से धोता;

तब दिन में सूरज का
निशि में तारापति का
कैसे रहा प्रयोजन ?

धरती पर जब धान पका अपने यौवन पर
जल से झुकी घटाएँ
बिलकुल असफल, निष्फल।

हिन्दी (भाषा)

निस-दिन ससि-रवि को नहिं काम,
तुम मुख-चंद हरै तम धाम ।
जो स्वभावतैं उपजै नाज,
सजल मेघ तो कौनहु काज ?

राजस्थानी

दूर करे जग अँधियारा ने—
थारा सीतल मुखरी आभा।
दिन में सूरज, रात चन्दरमा,
पक्यो धान कूण चावे वरखा।

गुजराती

अंधाराने प्रभुमुखरूपी चंद्रमा जो नसाडे,
रात्रे चांदो दिनमहीं रवि मानवा तो ज आडे;
जे क्यारामां शुभ रीत वडे शाली पाकी
अतिशे.
तेमां क्यारे पण नव अहा! मेघनुं काम दीसे.

मराठी

रात्रींत चंद्र दिवसा रवि हो कशाला
केलें प्रकाशित तुझें मुख या जगाला ।।
शाली अनेक पिकली सहजी वनांत
अभ्रें कशास जलपूर्ण हवी जगांत ।।

कन्नड़

स्वामि निन्न मुखाब्ज शशियिं ।
दा महाकत्तलेयु पारलु ।
सोमर्निदें कार्य रजनीकांत पेसरेके ।।
धामनिधियुं सूर्यनेंबा ।
नामवेतके निन्न दयेयिं ।
भूमि बेळेयिं तणिदिरलु मेघगळु तावेके ।।

हिन्दी

हे नाथ! जब तुम्हारा मख-चन्द्र ही अन्धकार को अस्तित्वशेष कर चका हो, तब क्या प्रयोजन है मुझे सूरज से, चन्द्र से; उनसे होने वाले दिन से, कौमुदी/ज्योत्स्ना से। जब धान की फसलें पक चुकी हों तब जल-भार से झुकीं मेघावालियों का क्या अर्थ है?

बाङ्ला

हे नाथ! तोमार मुखरूप चन्द्रमाय जखन अन्धकार दूर हये जाय तखन रात्रे चन्द्रमार कि प्रयोजन वा दिवसे सूर्येर? कारण जखन जीवलोके धानेर शीष परिपक्वता लाभ करे तखन जलभार नम्र मेघेर आर प्रयोजन थाके ना।

अंग्रेजी

O Lord! when your moon-like face can destroy the darkness and illuminate the entire universe, there is no need of the Moon in the night and the Sun during the day, just as one wonders, of what use are the clouds heavy with the weight of water on the rice fields in the country after the Rice grains have ripened?

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।

मंत्र –ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् फट् स्वाहा।

प्रभाव–अन्यों द्वारा प्रयुक्त मंत्र, जादू, टोना, टोटका, मूठ, उच्चाटन आदि का भय नहीं रहता।

अन्वय + अर्थ

नाथ!
हे प्रभो!
युष्मत् मुखेन्दु
आपके मुख-चन्द्र से
दलितेषु तमस्सु
अन्धकार को नष्ट किये जाने पर
शर्वरीषु
रात्रि में
शशिना किम्
चन्द्रमा से क्या सरोकार?
वा
अथवा
अह्नि
दिन में
विवस्वता किम्
सूर्य से क्या प्रयोजन?
जीवलोके
संसार में
निष्पन्न शालिवन शालिनि
शोभाशाली धान्य के खेतों के पक चुकने पर
जलभार नम्रैः जलधरैः
जल के भार से झुके हुए बादलों का
कियत् कार्य
कितना काम रह जाता है? कदाचित् बिलकुल नहीं।

यन्त्र

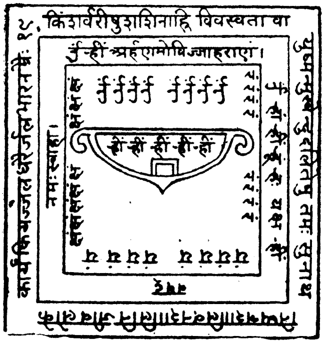

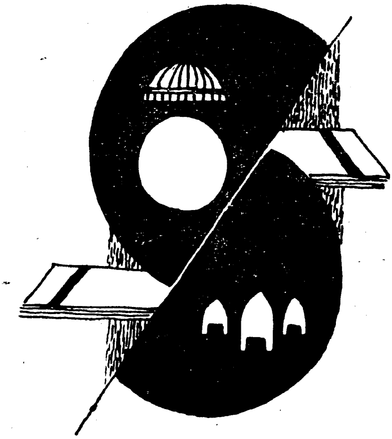

जो दुति महा रतन में होय,
काच-खंड पावै नहिं सोय ।।

राजस्थानी

जो ज्ञान दीपतो थारा में–
वो ज्ञान नहीं दूजा देवाँ में।
ज्या ज्योत जगे है मणियाँ में
वा ज्योत न काँचाँ रा टुकड़ाँ में।

गुजराती

जेवुं ऊँचु प्रभुमहीं रह्युं ज्ञान गांभीर्यवाळुं,
बीजा देवो महीं नवदीसे ज्ञान एवुं रूपाळुं;
जेवी कांति मणिमहीं अहा! तेजना पुंज मापी,
तेवी कांति कदि नवदीसे काचनी रे! कदापि.

मराठी

जें ज्ञान दूर्ण जमुनी विलसे तुझ्यांत।
शोभे न ते हरिहरादिक नायकांत ।।
कांती मनोहर जशी झळके मण्यांत।
शोभे न ती मुळिच काच शिलादिकांत।।

कन्नड़

अरुह केवलज्ञान निन्नदु ।
परम तेजदि पोळेयुतिरुवुदु ।
परम ज्ञानमदेल्ल केवलदंते पोळेयुवुदे ।।
वर रत्न कांतियदु गण्यवु ।
परिपरियोळु मिसुप गाजिन ।
मेरगु रत्नद पोळपिगेणेये पेळु योगींद्र ।।

संस्कृत

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ।।२०।।

हिन्दी

तुममें
जैसी ज्ञान-ज्योति
जलती जगमग है
वैसी
अन्य देवताओं में सहसा
नहीं सुलभ है;
सच है
जैसी द्युति मणि में होती स्वाभाविक,
वैसी
टुकड़े में कहाँ दीखती
कभी काँच के।

हिन्दी (भाषा)

जो सुबोध सोहै तुम माहिं,
हरि हर आदिक में सो नाहिं ।।

हिन्दी

द्रव्य/पदार्थ की अनन्त पर्यायों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जैसा आप में शोभायमान है, वैसा अन्य देवों में नहीं। जो सहज दमक मणि में गौरव को प्राप्त करती है, वह किरणों से आलोकित काँच के टुकड़े में भला कैसे संभव है ?

बाङला

हे नाथ ! अनन्त पर्यायात्मक पदार्थेर प्रकाशकारी केवलज्ञान तोमाते जेमन शोभा देय, हरिहरादि रूप देवताय ता देय ना। स्फूरित मणि दीप्तिते जे महिमा प्रकटित हय, सेइ महिमा कि चकमक करा सत्वेओ काँचेर टूकरोय प्रकटित होय ?

अंग्रेजी

Just as the magnificence of the light of the glittering jewels cannot be procured by a piece of glass even abounding in the rays of the Sun, so also omniscience (that throws light on the various phenomena of any subject) having found accomodation in you, glows with such splendour that it is not perceptible in other gods like Hari, Har etc.

मन्त्र

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं।

मंत्र –ॐ श्रां श्रीं श्रं श्रः शत्रुभयनिवारणाय ठः ठः स्वाहा।

प्रभाव–सम्पत्ति, सौभाग्य, बुद्धि, विवेक और विजय प्राप्त कराने में समर्थ हैं।

अन्वय + अर्थ

कृत अवकाशम्*
अनन्त पर्याय वाले पदार्थों को प्रकाशित करने वाला

ज्ञानम्
केवलज्ञान

यथा
जैसा/जिस तरह

त्वयि
आपमें

विभाति
सुशोभित है

तथा
वैसा

हरि हर आदिषु नायकेषु न एवम्
विष्णु, शंकर आदि लौकिक देवताओं में नहीं है (कहें, वहाँ उसका सर्वथा अभाव है)

यथा
जिस तरह

तेजः स्फुरत् मणिषु महत्त्वम् याति
प्रकाश दमकती मणियों में गौरव को प्राप्त होता है।

एवं तु
वैसा/उस तरह

किरणा कुले अपि
किरणों की दमक लिये हुए भी

काच शकले
काँच के टुकड़े में नहीं होता।

*प्रकाश

यन्त्र

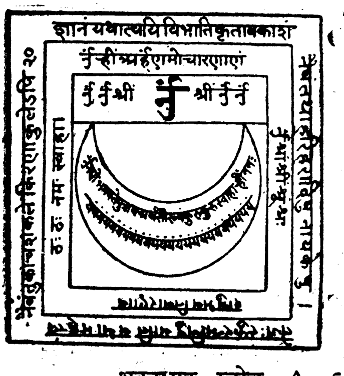

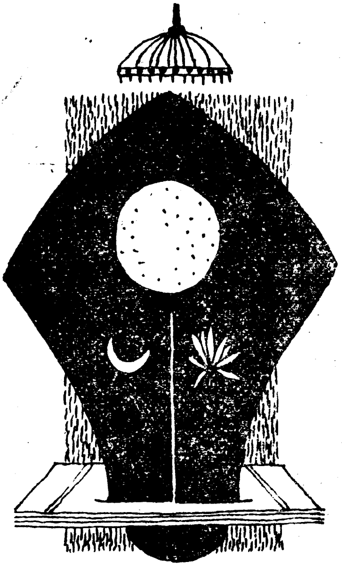

संस्कृत

मन्ये वरं हरिहरादय एवं दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

हिन्दी

देखना भूतेश का
हरि का
हुआ शुभ,
तुष्ट सुस्थिर मन हुआ
तुममें
अधिक ही।
देख जग में
कौन
तुम को हे विभो!
भवभवान्तर में
हरेगा
हृदय अब?

हिन्दी (भाषा)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया॥
कछू न तोहि देख के जहाँ तुही विसेखिया।
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया॥

राजस्थानी

थारा दरसण कीधा पाछे,
लागे सबरा दरसण फीका।
इण खातर पैलाँ आछा है—
दरसण हरिहरादिक रा।

गुजराती

जोया देवो प्रभुजी सघळा ते थयुं ठीक मानुं,
जोया तेथी तुजमहीं अहा चित्त तो स्थिर थातुं;
जोया तेथी मुज मनमहीं भावना ए करे छे,
बीजो कोई तुज विण नहि चित्त मारुं हरे छे.

मराठी

झालें बरें, हरिहरादिक पाहिले हें।
पाहून हें मन तुझ्यावर तृप्त आहे॥
तें पाहुनी तरि मला उपयोग काय।
जे ह्या मनास हरितील मुळीं न हाय॥

कन्नड़

गुरुवे निन्नं मुन्नमितरर।
दरुशनवु मेलेंदु तिलिवेनु।
परम निन्ननु ताळ्द मनवदु पेररिगाटिसदु॥
परिपरिय भवगळलि देवने।
सुरविनुत नीनल्लदितररु।
सेरेय माडरु मनक्नादिजिनेश योगींद्र॥

हिन्दी

हे नाथ ! हरि-हर आदि देवों को देखना मैं इसलिए अधिक श्रेयस्कर मानता हूँ कि उन्हें देखने से हृदय आप में अधिक सन्तोष का अनुभव करता है; किन्तु आपके देखने से क्या लाभ कि जिससे जगत् में कोई और देवता जन्मान्तर में भी मन को नहीं लुभा पाते अर्थात् कोई लाभ नहीं है।

बाङ्ला

हरिहरादिर दर्शनओ आमि भाल मने करि कारण ताँदेर देखेछि वलेइ ना तोमाते मन सन्तोष लाभ करे छे। किन्तु तोमाके देखार पर आर अन्य कोनो देवताइ जन्मान्तरेओ मनहरण करते समर्थ नय।

अंग्रेजी

O Lord ! I consider it better that I have seen Hari, Har and other gods first, because after seeing them my heart finds satisfaction in you. What good is it to look at you first ? After seeing you, there is no other god to captivate my heart on the Earth even in the future births.

मन्त्र

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं।

मंत्र –ॐ नमः श्री मणिभद्रः जयः विजयः अपराजितश्च सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–सब वशीभूत होते हैं और सुख-सौभाग्य बढ़ता है।

अन्वय + अर्थ

नाथ !
हे भगवन् !
हरि हर आदयः दृष्टा
हरि हर आदि देवताओं का देखना (मैं)
वरं मन्ये
शुभ मानता हूँ
येषु दृष्टेषु
जिनके देख लेने पर
हृदयम्
हृदय/मन
त्वयि एवं तोषम् एति
तुममें ही संतोष पाता है
भवता वीक्षितेन किम् ?
(किन्तु) आपके देखने से क्या फायदा
येन
जिससे
भुवि
धरती पर
अन्यः कश्चित्
अन्य कोई देव
भव अन्तरे अपि
अन्य जन्म में भी
मनः न हरति
मन को आकर्षित नहीं कर सकता।

यन्त्र

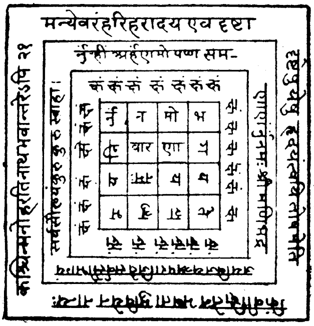

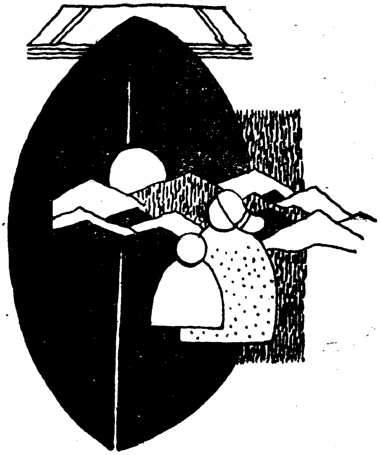

संस्कृत

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।।२२।।

हिन्दी

स्त्रियाँ सौ-सौ
जनमतीं
पुत्र सौ-सौ
किन्तु
सुत
तुम-सा
न कोई
जनम पायी।

नखत
नाना धारतीं
सारी दिशाएँ;

किन्तु
प्राची ही जनमती
सूर्य को तो।

हिन्दी (भाषा)

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं ।
न तो समान पुत्रि और माततैं प्रसूत हैं ।।
दिसा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै ।
दिनेस तेजवंत एक पूर्व ही दिसा जनै ।।

राजस्थानी

जामैण पूत घणाँ जाया, पण–
थारा जस्यो एक नी जायो।
तारा दिसा उगावे सगळी–
पण सूरज पूरब सूँ आयो।

गुजराती

स्त्रीओ आजे जगतभरमां सेंकडो जन्म आपे,
तारा जेवा अनुपम नहि पुत्रने जन्म आपे;
नक्षत्रोने विधविध दिशा धारती रे अनेक,
किंतु धारे रवि किरणने पूर्व दिशा ज एक.

मराठी

नारी मुलां प्रसवती शतशो जगांत।
त्वत्तुल्य पुत्र न दुजी जननी प्रसूत ।।
त्या पोषिती इतर सर्व दिशा प्रभेला।
प्राची दिशा प्रसवते परि भास्कराला।।

कन्नड़

जगदोळे निबरो पेण्गळिरुतिरुतिह ।
रगणितद सुतरुगळ पडेवरु ।
निगम कोविद निन्न साटियनारु वडेवरला ।।
गगनमणियं पडेव भाग्यवु ।
मुगुधे मूडल रमणिगल्लदे ।
मिगुल दिक्कुगळेल्ल तारानिवहमं पडेवर ।।

हिन्दी

सौ-सौ माताएँ सौ-सौ पुत्रों को जन्म देती हैं, किन्तु क्या कोई जननी तुम जैसा पुत्र अब तक जनम पायी है? सच है, नक्षत्रों को तो सारी दिशाएँ धारण करती हैं; किन्तु दैदीप्यमान किरण-संपन्न सूर्य की प्रसविनी तो पूर्व दिशा ही है।

বাঙলা

হাজার-হাজার জননী হাজার-হাজার পুত্রের জন্ম দেয়, কিন্তু অন্য জননীর পক্ষে সম্ভব ছিলনা তোমার মত পুত্র প্রসব করা। কারণ সমস্ত দিক নক্ষত্র কে ধারণ করে কিন্তু দেদীপ্যমান সহস্ররশ্মি কে প্রসব করতে জারে একমাত্র পূর্ব দিকই।

अंग्रेजी

Hundreds of women give birth to sons hundreds of times, but no mother has given birth to a son like you. All the (eight) directions may hold the planets, but it is the East only which can produce the Sun with its cumulus of thousands of flashing rays.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं।

मंत्र –ॐ नमो वीरेहि जृंभय जृंभय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, चुड़ैल आदि भाग जाते हैं।

अन्वय + अर्थ

स्त्रीणां शतानि
सैकड़ों स्त्रियाँ
शतशः
सैकड़ों
पुत्रान् जनयन्ति
पुत्रों को जनमती हैं (किन्तु)
अन्या जननी
दूसरी कोई माता
त्वत् उपमम् सुतं न प्रसूता
तुम-जैसे पुत्र को जन्म नहीं दे सकी (यह ठीक ही है; क्योंकि)
सर्वाः दिशः भानि दधति
सारी दिशाएँ नक्षत्रों को धारण करती हैं किन्तु
स्फुरत् अंशुजालम्
दैदीप्यमान किरण-समूह वाले
सहस्र रश्मिम्
सूर्य को
प्राची दिक् एवं जनयति
पूर्व दिशा ही जन्म देती है।

यन्त्र

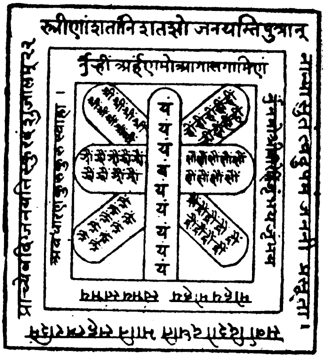

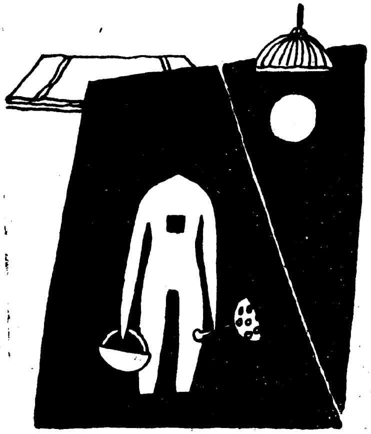

संस्कृत

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस–
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ।२३।

हिन्दी

अंधकार के पार
वर्ण सूरज-सा शोभन
परम पुरुष
मलमुक्त
मानते मुनिगण सारे
पाकर
सम्यक्‌रूप
तुम्हें ही
मृत्युंजय होना संभव है
और नहीं है
पंथ मुक्ति का
इससे सीधा ।

हिन्दी (भाषा)

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो ।
कहैं मुनीस अंधकार-नासको सुभान हो ।।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके ।
न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ।।

राजस्थानी

मुनि थने परमेसर माने–
सूरज है थूँ अँधियारा पर ।
थने पाय सब मरणजीत व्है–
थूँ मारग मुगति रो जिनवर !

गुजराती

मोटा मोटा मुनिजन तने मानता नाथ तो ते,
तेजस्वी छो रविसम अने दूर अज्ञानथी ये;
सारी रीते अमर बनता आपने पामवाथी,
मुक्ति माटे नव कदी बीजो मानजो मार्ग
आथी.

मराठी

तूं श्रेष्ठ पूरुष असें मुनि मानितात ।
आदित्यवर्ण अमलीन तमोरहीत ।।
साहाय्य घेउन तुझे भव जिंकितात ।
मोक्षास मार्ग दुसरा न विभो! जगांत ।।

कन्नड़

मुनिगळोडेयने योगिजनरुं ।
धन तमद मुंदिर्प सूर्यन ।
मिनु गुवा होंबण्ण दंददि नीनु पोळेयुतिरे ।।
सनुमतियु पावननु नीनें ।
देनुत निन्न पदाब्ज पूजेयि ।
ननुपमद कैवल्यलक्ष्मी पतिगळागुवरु ।।

हिन्दी

हे मुनीन्द्र ! मुनिजन तुम्हें अन्धकार से आगे सूर्य के समान तेजोमय परम पुरुष मानते हैं; अतः जिसने तुम्हें समग्र/सम्यक् उपलब्ध कर लिया, वह मृत्युञ्जय मृत्यु की परिधि से बाहर आ खड़ा हुआ। मौत फिर उस मृत्युञ्जयी पर आँख, नहीं उठा पाती, उसे छू नहीं पाती; इसलिए तुम्हें छोड़ दूसरी कोई कल्याणकारी मुक्ति-डगर नहीं है।

बाङला

हे मुनीन्द्र ! मुनिगण तोमाके परम पुरुष, तिमिर विदार आदित्य रूप ओ निर्मल वलेन । ताँरा तोमाकेइ उत्तम रूपे प्राप्त हये मृत्यु के जय करेन । ए जन्य तोमार अतिरिक्त मोक्षपद प्राप्तिर अन्य कोनो कल्याणकारी पथ आर नेइ ।

अंग्रेजी

O the best amongst the Sages ! the saints consider you the supreme being, the Sun in having over come the darkness of ignorance, also hold you pure purged of impurities. They overcome Death after having duly obtained you. There is no other beneficial way to Bliss, tranquility and salvation except through you.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं ।

मंत्र –ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्षसौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा ।

प्रभाव–प्रेत-बाधा दूर होती है ।

अन्वय + अर्थ

मुनीन्द्र !
हे मुनीश्वर !
मुनयः त्वाम्
मुनि तुम्हें
परमं पुमांसम्
श्रेष्ठ पुरुष
तमसः पुरस्तात्
अन्धकार से आगे
आदित्य वर्णम्
सूर्य के समान तेजोमय
अमलम्
निर्मल
आमनन्ति
मानते हैं
त्वाम् एव सम्यक् उपलभ्य
तुम्हें ही भलीभाँति पा कर
मृत्युं जयन्ति
मृत्यु पर विजय पाते हैं (अतः तुम्हारे अलावा)
अन्यः शिवः शिवपदस्य
दूसरा कोई मोक्ष का कल्याणकारी
पन्था न
मार्ग नहीं है।

यन्त्र

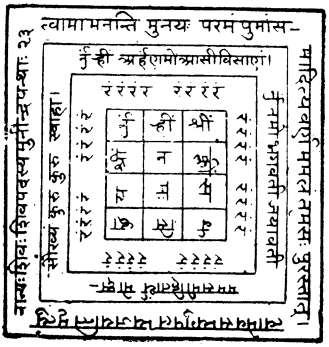

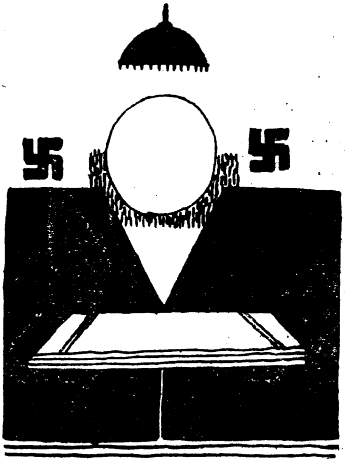

संस्कृत

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।२४।।

हिन्दी

तुमको
अव्यय-विभु-आद्य
ब्रह्म-ईश्वर-अनन्त
योगी-अचिन्त्य
ज्ञानस्वरूप-योगज्ञ एक
निर्मल-अनेक
मकरध्वज-केतु असंख्य
संत
कहते हैं सारे।

हिन्दी (भाषा)

अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो ।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो।।
महेस कामकेतु जोग-ईस योग ज्ञान हो ।
अनेक एक ज्ञानरूप सुद्ध संतमान हो ।।

राजस्थानी

संत थने योगीसर केवे,
निरमळ, अव्यय, एक सरूप।
अन्तहीण अर अनंग केतु,
आदि मिनख परमेसर रूप।

गुजराती

संतो माने प्रभुजी तमने आदि ने अव्ययी तो,
ब्रह्मा जेवा अनवधि प्रभु! कामकेतु समा छो;
जोगीओना पण प्रभु! बहु एकरूपे रह्या छो,
ज्ञानीरूपे वळी विमळता पूर्ण तत्त्वे भर्या छो.

मराठी

तूं शाश्वत प्रभु, अचिंत्य, असंख्य, आद्य ।
ब्रह्मा, अनंत, परमेश्वर, तूं अवेद्य ।।
योगींद्र तूं विदित-योग, अनेक एक ।
ज्ञानी असे तुज मुनी वदती अनेक ।।

कन्नड़

नाशरहितनु विभुवु नीनुं ।
बासे गडकद तिलिवि नागर ।
सासिरके सासिर व संख्येय गुणद धामनिधि ।
भूषणनु जगकादि गुरु नी ।
नीश बोम्मनु विष्णु मन्मथ ।
सासिगनु योगीशनेकननेक नरहंत ।।

हिन्दी

संतजन तुम्हें अक्षय, व्यापक, अचिन्त्य, अद्‍भुत, संख्यातीत, आदिपुरुष, सकल कर्म-रहित, कृतकृत्य, अन्त-रहित, कामदेव को अस्तित्वशेष करने के निमित्त केतु, योगेश, योगज्ञ, गुण-पर्याय की अपेक्षा अनेक, जीव-द्रव्य की अपेक्षा एक/अद्वितीय, केवलज्ञान-स्वरूप, कर्म-मल-मुक्त कहते हैं। तुम्हारे इस अनामी, बहुनामी, नामी, बहुआयामी व्यक्तित्व को शत-सहस्र प्रणाम!!

बाङला

हे प्रभु! सन्तगण तोमाके अव्यय, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आदि, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, योगवेत्ता, अद्वितीय ज्ञानस्वरूप ओ अमल बले अभिहित करेन।

अंग्रेजी

The holy sages regard you as imperishable, majestic (the abode of sterling merits, in comprehensible, innumerable, the first and Principal founder of Religion,- the supreme self-immersed soul. Almighty of the three worlds (self-accomplished). Infinite (possessor of Infinite excellences), like a Ketu in vanquishing the Cupid (Deity of sexual passions), the chief amongst the meditators, conversant with you (the science of self absorption and cessation of corporeal activities), multifarious (with regards to merits and properties), singular (with regards to substance), knowledge personified and free from all foreign matter (the dirt of mortal sins or Karmas).

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं।

मंत्र –स्थावरजंगमकायकृतं सकलविषं यद्‍भक्तेः अमृतायते दृष्टिविषास्ते मुनयः वड्ढमाणस्वामी च सर्वहितं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–सिर की पीड़ा दूर होती है।

अन्वय + अर्थ

संतः
सत्पुरुष/संतजन
त्वाम्
तुम्हें
अव्ययम्
अक्षय
विभुम्
व्यापक
अचिन्त्यम्
चिन्तनातीत/अद्‍भुत
असंख्यं आद्यं ब्रह्माणम्
असंख्य/संख्यातीत, आदि पुरुष, ब्रह्मा/सकल कर्म-रहित
ईश्वरम्
कृतकृत्य
अनन्तं अनङ्गकेतुं योगीश्वरम्
अन्त-रहित, कामदेव को नाश करने के निमित्त केतु, योगेश,
विदितयोगं अनेकं एकं
योगज्ञ, गुण-पर्याय की अपेक्षा अनेक, जीवद्रव्य की अपेक्षा एक/अद्वितीय
ज्ञानस्वरूपं अमलमं प्रवदन्ति।
केवलज्ञान-स्वरूप, कर्म-मल-मुक्त कहते हैं।

यन्त्र

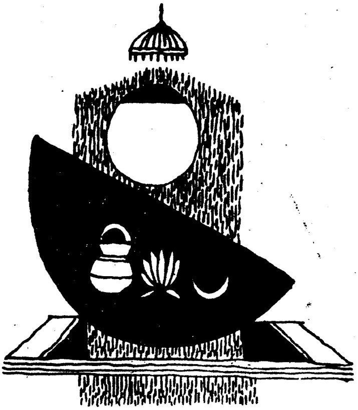

संस्कृत

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्–
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५।।

हिन्दी

बुद्ध तुम्हीं हो
बुद्धि-बोध से
देवार्चित
प्रभु ।

तुम शंकर हो
तीन लोक के
शान्ति-प्रदाता ।

धीर ब्रह्म
इसलिए
कि
तुमने
मुक्तिपंथ का किया
प्रवर्तन ।
पुरुषोत्तम
तुम प्रभो
उजागर सारे जग में ।

हिन्दी (भाषा)

तुही जिनेस बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं ।
तुही जिनेस संकरो जगत्त्रये विधानतैं ।।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं ।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ।।

राजस्थानी

बुद्धिवालो बुद्धदेव थूँ,
संकर त्रि-जग समता वालो ।
परम पुरुष अर विधना थूँ ही–
मुगत पंथ रो रचवा वालो ।

गुजराती

देवे पूज्या विमळ मतिथी, छो खरा बुद्ध आप,
त्रिलोकीने सुख दीधुं तमे, तो महादेव आप;
मुक्ति केरी विधिकरी तमे, छो विधाता ज आप,
खुल्लुं छे ए प्रभुजी! सघळा गुणथी कृष्ण आप.

मराठी

तूं बुद्धि देशि जनतेस म्हणून बुद्ध ।
देशी शिवास म्हणुनी शिवसांब शुद्ध ।।
तूं निर्मिले शिवपदास म्हणून धाता ।
तूं पुरुषोत्तम म्हणून वदीन आतां ।।

कन्नड़

देवपूजित नरिविगागर ।
भाविसलु नीनल्त्ते बुद्धनु ।
नोवनारिसि मूरुलोकक्कीशनेंदेनिसि ।।
पावनद मामुकुति बट्टेय ।
नीवनल्लवे नीनु बोम्मनु ।
कावे मूलोकवनु विष्णु महात्म नीनेनिसि ।।

हिन्दी

देवों/गणधरों/विद्वज्जनों ने, हे प्रभो, तुम्हारे कैवल्य-गौरव की अर्चना की है, अत: तुम्हीं बुद्ध हो; तीनों लोकों के प्राणियों के लिए सुख/स्वस्ति करने वाले हो अत: तुम ही शंकर हो; हे धीर पुरुष! रत्नत्रय-रूप मोक्षमार्ग की विधि-संरचना के कारण तुम विधाता हो : भगवन्! तुम स्पष्टत: पुरुषों में उत्तम होने से नारायण हो!!

बाङ्ला

हे नाथ! बुद्धिबोध वा केवलज्ञान लाभे देवगण कर्तृक अर्चित हवाय तुमि बुद्ध, त्रिलोकेर कल्याणकारक बले तुमि शंकर! हे धीर, मोक्षमार्गेर विधानकारक बले तुमि विधाता एवं ए भावे पुरुषदेर मध्ये उत्तम हओयाय तुमि पुरुषोत्तम वा नारायण।

अंग्रेजी

You are the Buddha as the other gods and learned persons (Gandhar etc.) have worshipped and commended your self-Awakening, (Omniscience), you are the Shankar (Shiv) as your are the benefactor of the summum bonum (highest good) to the living beings of the three worlds. O Resolute one ! you are the providence (creator) as you have constituted the ordinations of the Path of salvation (codifier of the rules of emancipations). Thus, O Lord, it is manifest that you being the best amongst the persons are the only Purushottam.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं।

मंत्र –ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्र: अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–दृष्टि-दोष दूर होता है, साधक पर अग्नि का असर नहीं होता।

अन्वय + अर्थ

विबुध अर्चित बुद्धि बोधात्

देवों/गणधरों/विद्वज्जनों ने तुम्हारे कैवल्य-गौरव की अर्चना की है (इस कारण)

त्वम् एव बुद्ध:

तुम्हीं बुद्ध हो

भुवनत्रय शंकरत्वात्

तीनों लोकों के प्राणियों के निमित्त 'शं' अर्थात् सुख एवं कल्याण करने वाले हो (अत:)

त्वम् शंकर असि

तुम शंकर हो

धीर! शिवमार्ग विधे: विधानात्

हे धीर पुरुष! रत्नत्रय-रूप मोक्षमार्ग के विधि-विधान के कारण

धाता असि

तुम विधाता हो

भगवन्!

प्रभो!

त्वम् एव व्यक्तं पुरुषोत्तम:

तुम स्पष्टत: पुरुषोत्तम/पुरुषों में उत्तम होने से नारायण

असि

हो।

यन्त्र

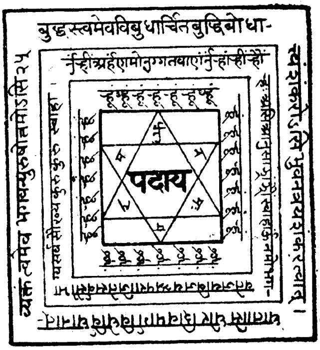

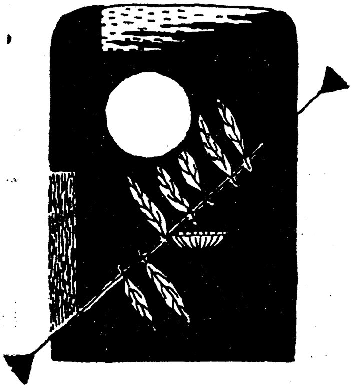

संस्कृत

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यंनमोजिन ! भवोदधिशोषणाय ।।२६।।

हिन्दी

तीन लोक के
संकट भंजक
नमन तुम्हें है !

तुम्हें नमन
तुम वसुधा के
निर्मल आभूषण !!

तुम्हें नमन
तुम तीन लोक के
परमेश्वर हो !!

तुम्हें नमन
तुम हो
शोषक इस भव-समुद्र के !!!

हिन्दी (भाषा)

नमो करूँ जिनेस तोहि आपदा निवार हो ।
नमो करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो ।।
नमो करूँ भवाब्धि-नीर-रासि-सोख-हेतु हो ।
नमो करूँ महेस तोहि मोखपंथ देतु हो ।।

राजस्थानी

पीड़ा हरे तीन लोकाँरी,
आभूसण थूँ धरती रो।
थने नमूँ, भवसागर सोखे,
थूँ ईस्वर त्रि-जगती रो।

गुजराती

थाओ मारां नमन तमने दुःखने कापनारा,
थाओ मारां नमन तमने भूमि शोभावनारा;
थाओ मारां नमन तमने आप देवाधिदेव,
थाओ मारां नमन तमने संसृति काळ जेवा.

मराठी

त्रैलोक्य-दुःखहर तूं म्हणुनी नमीतों ।
त्रैलोक्य-भूषण म्हणून तुला नमीतों ।।
त्रैलोक्य-ईश्वर म्हणून तुला नमीतों ।
संसार-सिंधु-तरणी तुजला नमीतों ।।

कन्नड़

मूरु लोकद दुःखमूलद ।
बेर कित्तने निनगे नमिपेनु ।
भूरिभूषण भुवन मूरक्कधिप नमिपेनला ।।
तारक भवोदधिदे नमिपेनु ।
मारविजयने गुरुवे नमिपेनु ।
सार दयेयन्नोरेद शांतने करुणि नमिपेनला ।।

हिन्दी

तीनों लोकों को संत्रास, संताप और कुण्ठा से निवृत्त करने में समर्थ; तुम्हें प्रणाम; इस धरती के पूत, पवित्र, परम पावन शृंगार, तुम्हें नमन; तीनों लोकों के प्रभु, परमेश्वर, तुम्हें वन्दन; इस भव-सागर के अगस्त्य-शिल्पी, तुम्हें भक्ति-विह्वल अर्चन ! ! ! !

বাঙলা

हे नाथ ! त्रिभुवनेर आर्तिहरण कर वले तोमाके आमि नमस्कार करि । एइ पृथिवीर तुमि निर्मल अलंकार वले आमि तोमाके नमस्कार करि । तुमि एइ त्रिजगतेर परम ईश्वर बले तोमाके आमि नमस्कार करि । हे जिनेन्द्र, तुमि संसाररूप समुद्र के शोषण कर वले तोमाके आमि नमस्कार करि ।

अंग्रेजी

O Lord ! bow to you, the annihilator of the afflictions of the three worlds, bow to you the purest and the most resplendent jewel on the face of Earth, bow to you the Paramount Almighty of the three worlds. O Jin (conqueror) I bow to you, the Absorbent of the ocean of Births and Deaths.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ।

मंत्र –ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशान्तिव्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा ।

प्रभाव–आधाशीशी की पीड़ा का निवारण होता है ।

अन्वय + अर्थ

त्रिभुवन आर्तिहराय नाथ !
तीनों लोकों की पीड़ा/कष्टों को दूर करने वाले हे नाथ !
तुभ्यं नमः
तुम्हें नमस्कार है
क्षिति तल अमल भूषणाय
पृथ्वितल के निर्मल/विमल भूषण
तुभ्यं नमः
तुम्हें नमस्कार है
त्रिजगतः परमेश्वराय
तीनों लोकों के परम पद पर संस्थित
तुभ्यं नमः
तुम्हें नमन
भव उदधि शोषणाय जिन !
हे जिन ! संसार-समुद्र को सोखने/समाप्त करने वाले
तुभ्यं नमः
तुम्हें नमस्कार है ।

यन्त्र

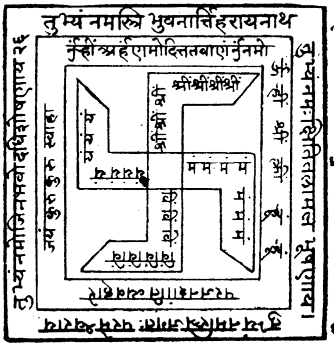

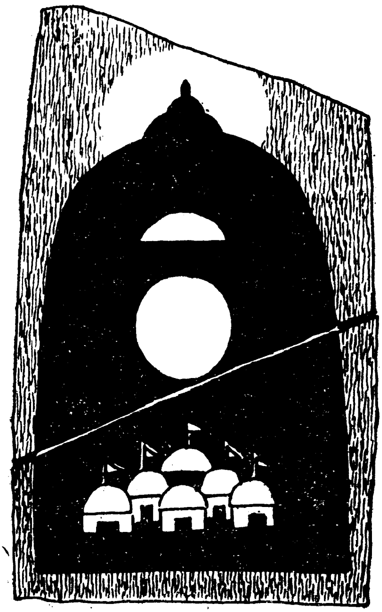

संस्कृत

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै–
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।।२७।।

हिन्दी

लगता है मुनिनाथ
सकल गुण इस भूतल के
तुममें आश्रित हुए
सघन, आपस में मिलजुल
इसमें क्या आश्चर्य ?

दोषों ने
ली यहाँ-वहाँ
है शरण
बहुतविधि
विविध
गर्व में फूले इतने
नहीं देखते
वे पल-भर भी
इधर स्वप्न में।

हिन्दी (भाषा)

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे,
दोष गर्वकरि तुम परिहरे ।
और देव-गण आश्रय पाय,
स्वप्न न देखे तुम फिर आय ।।

राजस्थानी

गुण जतरा भी दुनिया में है–
भर्‌या ठसाठस थारा में व्ही ।
जगा कठे जो अवगुण आवे–
करे हैंकडी दूरा रे व्ही ।

गुजराती

सर्वे ऊँचा गुण प्रभु! आपमांही समाया,
तेमां कांई नथी नवीनता धारीने छत्रछाया;
दोषो सर्वे अहीं तहीं फरे, दूर ने दूर जाय,
जोया दोषे कदि नवप्रभु, आपने स्वप्नमांय.

मराठी

आश्चर्य काय ? गुण सर्व मिळून कांही ।
होतात आश्रित दुजा शिरकाव नाही ।।
ते रुष्ट होउन तुला बघतील दोष ।
स्वप्नीं कधी न विबुधाश्रित जे अशेष।।

कन्नड़

मुनिगळोडेयने नीनु खनिया ।
मिनुगुवतिशय गुणसमूहके ।
सनुमतिये जगकिल्लवच्चरि सहज वचनविदु
जनह मूजगदनुव पडेदा ।
धन तमद रागादि कर्मग ।
ळनितुवं बळिसारलसदळ निन्न सनियितके ।

हिन्दी

हे मुनियों के मुनि! इसमें कौन आश्चर्य है कि जगत् के अशेष गुणों ने कहीं शरण न पाकर तुम में ही शरण ग्रहण की है; और दोषों ने, जिन्हें अन्यजनाश्रय के कारण मिथ्या दंभ हो गया है, स्वप्न में भी तुम्हारी ओर नहीं देखा है?

बाङ्ला

हे मुनीश, अन्यत्र स्थान ना पाओयाय समस्त गुण यदि तोमाके एसे आश्रय करे ओ दोष देवादि के एवं अहंकारवशे सेइ दोष स्वप्नेओ यदि तोमाके ना देखे थाके तवे आश्चर्येर कि आछे?

(मानुष साधारणतः पुण्य अर्जन करते चाय, आत्मा के केऊ चाय ना। पुण्य अर्जन करे तारा देवत्व लाभ करे। किन्तु पुण्यओ दोष कारण ताते अपवर्ग साधित हय ना। ताइ तुमि पुण्य परित्याग करे (या अन्य देवतारा भाग करे नियेछेन ओ जा तोमार दिके आर फिर ताकाय ना। आत्मगुणे परिपूर्ण हये उठे छे; अर्थात् तुमि पाप ओ पुण्येर ओपरे।)

अंग्रेजी

O the Best amongst the sages! it is not strange if all the virtues have taken shelter in you in densely clustered numbers and if the faults (vices) being puffed up with pride in having attained the patronage of other deities did not cast a glance at you in a dream.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं।

मंत्र –ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधय साधय शत्रून्मूलयोन्मूलय स्वाहा।

प्रभाव–शत्रु का उन्मूलन होता है, वह आराधक को कोई क्षति नहीं पहुँचा पाता।

अन्वय + अर्थ

मुनीश!
हे मुनि-पुंगव!
यदि नाम
हमें लगता है कि
अशेषैः गुणैः
समस्त गुण
त्वम्
आप में
निरवकाशतया
अपने संपूर्ण घनत्व में
संश्रितः
भलीभाँति शरण-स्थित हैं
अत्र को विस्मयः
तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?
दोषैः
(और) दोषों से
स्वप्न अन्तरे अपि न ईक्षितः असि
(यदि आप) स्वप्न में भी नहीं देखे गये हैं
(अत्र अपि को विस्मयः)
(तो इसमें भी कौन आश्चर्य है?)

यन्त्र

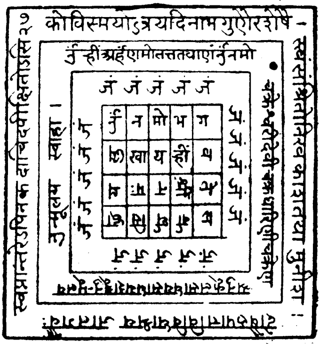

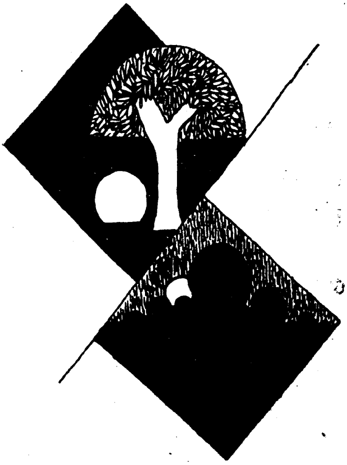

राजस्थानी

किरण फैंकती ज्यूँ बादल में–
दीपे है सूरज री छाया।
त्यूँ हेठे दीपे अशोक तरू–
जिनवर ! थारी निरमल काया।

गुजराती

ऊंचा एवा तरुवर अशोके प्रभु अंग शोभे,
जाणे आजे रविरूप खरुं दीपतुं छेक मोभे;
अंधाराने दूर करी रह्युं सूर्यनुं बिंब होय,
निश्चे पासे फरी फरी वळ्यां वादळां रूप तोय.

संस्कृत

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख–
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ।।२८।।

हिन्दी

हरे-भरे
ऊँचे अशोक तरु की छाया में
किरणीला निर्मल स्वरूप तव
शोभा पाता।
जैसे कोई
रश्मिवन्त रवि
सघन साँवरी
मेघघटा के
मध्य विराजित।

मराठी

देवा ! अशोक तरु सन्निध तेजदार ।
शोभे तुझें अमल रूप किती अपार ।।
तें कांतियुक्त रविबिंब तमो रहीत ।
शोभे पयोधर समीप जसें नभांत ।।

हिन्दी (भाषा)

तरु असोक-तर किरन उदार,
तुम तन सोभित है अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत,
दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ।।

कन्नड़

उन्नताशोकदातरुविन ।
सन्निहित मागुत्त पोळेयुव ।
पोन्नबेळकिन किरण पोंदिह रविय बिंबमदु ।।
मुन्न पोर्दिद तममनेल्लव ।
बन्नपडिसुत मुगिलनट्टुत ।
चेन्न कळेयिं बेळगुवंददि निन्न मुखतेजं ।।

हिन्दी

हे विभो ! उन्नत अशोक तरु-तले, ऊपर की ओर स्फूर्त किरणों वाला आपका अत्यन्त निर्मल रूप बादलों के निकटवर्ती अन्धकार के जमाव को ध्वस्त करने वाले सूर्य-बिम्ब के समान शोभा पाता है।

बाङला

दीर्घ अशोक तरु संश्रित तोमार जे प्रभा अर्द्ध विकीर्ण हच्छे ता निर्मल ओ मेघेर निकटवर्ती सूर्यरश्मि जेमन अन्धकार विदीर्ण करे ऊर्द्ध उंक्षिप्त हय सेइरूप।

अंग्रेजी

O Lord while seated under the Ashoka tree (Jonasia ashoka) your resplendent and spotless body looks extraordinarily elegant, like the Sun in close proximity of the dense clouds radiatig its brilliant rays and dispelling the expanse of darkness.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं।

मंत्र –ॐ नमो भगवते जयविजय जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय सर्वसिद्धि सम्पत्ति सौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–सारे मनोरथ सिद्ध होते हैं।

अन्वय + अर्थ

उच्चैः
अतीव उन्नत/खूब ऊँचे

अशोक तरु संश्रितम्
अशोक वृक्ष के तले विराजमान

उत् मयूखम्
ऊपर की ओर निकलती किरणों वाला

भवतः
आपका

नितान्तं अमलं रूपम्
अत्यन्त निर्मल रूप

पयोधर पार्श्ववर्ति
बादलों के पास रहे

स्पष्ट उल्लसत् किरणम्
फैली दमकती/द्युतिमन्त किरणों वाले (और)

अस्ततमो वितानम्
अन्धकार के जमाव को ध्वस्त करने वाले

रवेः
सूर्य के

बिम्बं इव आभाति
बिम्ब के समान शोभित होता है।

यन्त्र

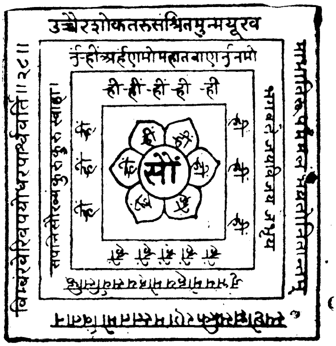

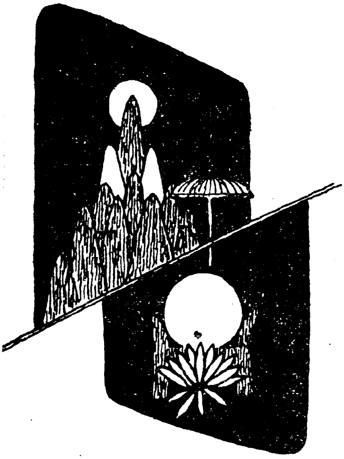

तुम तन सोभित किरन-विथार,
ज्यों उदयाचल रवि तम-हार ।।

राजस्थानी

उदयाचल परवत रे माथे—
ज्यूँ सूरज शोभा पावे है।
वणीं तराँ ही मणि-रतनाँ रा—
सिंहासण पर थूँ भावे है।

संस्कृत

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ।।२९।।

गुजराती

रत्नो केरा किरण समूहे चित्रविचित्र छाजे,
एवा सिंहासन पर प्रभु! आपनो देह राजे;
विस्तारे छे रूप गगननी मध्यमां जेम भानु,
ऊंचा ऊंचा उदयगिरिना शिखरे तेम भानु.

हिन्दी

रंगबिरंगी
मणि-किरणों के
सिंहासन पर
प्रखर स्वर्ण-सी देह
तुम्हारी आभायित है
उदयाचल के
तुंग शिखर पर
सूर्य-बिम्ब ज्यों
रश्मिजाल फैलाये
तान रहा हो मण्डप।

मराठी

जें इंद्रनील मणियुक्त दिसे विचित्र ।
त्या विष्टरीं कनककांति तुझें पवित्र ।।
शोभे शरीर, रविबिंब जसें नभांत ।
पूर्वाचलस्थ विलसे बहु कांतियुक्त ।।२९।।

हिन्दी (भाषा)

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र,
तापर कंचन-वरन पवित्र ।

कन्नड़

रत्नकांति ज्वालेयिंदं ।
स्तुत्यमादा सिंहपीठदि ।
बित्तरद कळेतीवि दौदारिकद देह मदु ।
भित्ति मुडण बेट्टु तुदियोळु
पोत्तु कांतिय किरण गुणमं ।
सुत्त कदिरनु हरिप रवियंददलि बेळगुवुदु ।।

हिन्दी

मणि-किरणों की बहुविध दीप्ति-अनियों से विभूषित सिंहासन पर आपकी कनक-वर्णी काया ऐसी ऐश्वर्यशालिनी लगती है जैसे गगन-चूमती उदयाचल की चोटी पर आकाश में किरणों के लता-मण्डप से घिरा सूर्य-बिम्ब।

बाङ्ला

हे भगवन्! मणि किरणेर प्रभाय चित्रविचित्र सिंहासन-स्थित तोमार स्वर्ण-कान्ति वपु सूर्यकिरण जाले चित्र विचित्र उदयगिरि आरूढ़ सहस्र रश्मिर मतइ सुन्दर।

अंग्रेजी

Your gold-like lovely body seated on the throne emitting multicoloured rays from the listre of gems studded therein (throne) resembles the Sun with its radiant rays shining on the high peak of the Eastern mountain.

मन्त्र

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं णमो णमिऊण पासं विसहर फुलिंगमंतो विसहर नाम रकारमंतो सर्वसिद्धिमीहे इह समरंताणमण्णे जागई कप्पदुमच्चं सर्वसिद्धि ॐ नमः स्वाहा।

प्रभाव—नेत्र-पीड़ा दूर होती है।

अन्वय + अर्थ

मणि मयूख शिखा विचित्रे
मणि-किरणों की अनी से विविध रंगों में चित्रित
सिंहासने
सिंहासन पर
तव कनक अवदातं वपुः
तुम्हारी स्वर्ण के समान शुभ्र देह
तुङ्ग उदय अद्रि शिरसि
उन्नत उदयाचल के शिखर पर
वियत् विलसत् अंशुलता वितानम्
आकाश में शोभित किरणों के लता-मण्डप से घिरे
सहस्ररश्मेः बिम्बं इव विभ्राजते
सूर्य-बिम्ब की भाँति अतीव शोभित है।

यन्त्र

संस्कृत

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।३०।।

हिन्दी

जैसे
स्वर्ण शिखर वाले
सुमेरु पर्वत पर
चंदा से धोले
झरने की हो
जलधारा,
वैसे
तेरी
स्वर्णदेह पर
कुन्दपुष्प-से
शुभ्र-श्वेत
शोभन-मनोज्ञ
चामर ढुरते हैं।

हिन्दी (भाषा)

कुद-पुहुप-सित-चमर ढुरंत,
    कनक-वरन तुम तन सोभंत ।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति,
    झरना झरै नीर उमगांति ।।

राजस्थानी

ज्यूँ मेरू परवत रे दोई-
बाजू झरना झरर झरे है।
त्यूँ थारे दोई बाजू में-
जिनवर! चामर रोज ढरे है।

गुजराती

शोभे रूडुं शरीर प्रभुजी, स्वर्ण जेवुं मजानुं,
विंझें जेने विवुध जनता, आमरो एम मानुं;
दीसे छे जे बिमल झरणुं, चंद्र जेवुं ज होय,
मेरु केरा शिखर सरखुं, स्वर्णरूपे न होय ?

मराठी

कुंदापरी धवल चालित चामरांनी ।
शोभे तुझी कनकवर्ण तनू विमानीं ।।
चंद्रापरी शुचिनदी जलधारपूर्ण ।
शोभे जसे सुरगिरी तट पीतवर्ण ।।

कन्नड़

कुंद कुसुम दोलेसेव चामर ।
वृन्ददिंदोप्पुतिह निन्नय ।
सुंदराकृति पोन्न कळेयिं पोळेवुदेंतेनलु ।।
इंदु बेळकिं देसेव नीरिन ।
मंदगतिया झरिय ताळुत ।
निंदिरुव पोंबेट्टु मेरुवि नमर कांतियोलु ।।

हिन्दी

आपकी स्वर्णाभ देह, जिस पर कुन्द-पुष्पों से शुभ्र चौंर ढुर रहे हैं, अप्रतिम शोभाओं से अभिमण्डित ऐसी लगती है मानो स्वर्ण-सुमेरु के उन्नत तट उदीयमान चन्द्रमा की किरण-प्रपात-धाराओं में प्रतिष्ठित हों।

बाङ्ला

कुन्दावदात चामर वीजित तोमार स्वर्णकान्ति देह स्वर्णमय सुमेरु पर्वतेर मत जार गा दिये नवोदित चन्द्रमार समान निर्मल निर्झर धारा प्रवाहित हच्छे।

अंग्रेजी

Your gold-like glittering body intensely beautified by the waving of the clean white (like kund flowers) flappers (chanwars whisks made of bos grunniens Hairs), looks elegant, like the lofty peak of sumeru mountain, with streams of water as white and clean as the rising Moon, flowing on either sides of it in great torrents.

मन्त्र

ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं।

मंत्र–ॐ नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रान् स्तम्भय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–शत्रु का स्तम्भन होता है।

अन्वय + अर्थ

कुन्द अवदात चल चामर चारु शोभम्
कुन्द पुष्पों की भाँति शुभ्र/उज्ज्वल ढुरते सुन्दर चँवरों की शोभा से युक्त
कलधौत कान्तम्
स्वण-जैसी दमक-दीप्ति लिये
तव वपुः
तुम्हारी काया
उद्यत शशाङ्क शुचि निर्झर वारिधारम्
उदय होते चन्द्रमा के समान शुभ्र-धवल झरनों से युक्त
शातकौम्भम्
स्वर्णिम
सुर गिरेः उच्चैः तटं इव
सुमेरु पर्वत के उन्नत तटों-जैसा
विभ्राजते
सुशोभित होता है।

यन्त्र

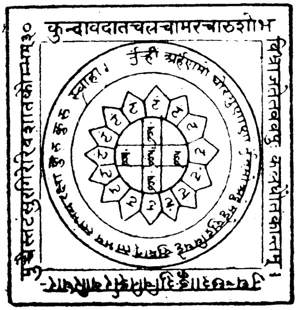

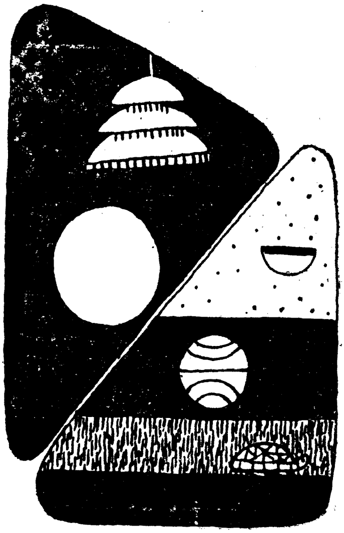

हिन्दी (भाषा)

ऊँचे रहैं सूर दुति लोप,
तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ।
तीन लोक की प्रभुता कहैं,
मोती-झालर सों छबि लहैं ।।

राजस्थानी

मणि-रतनाँ रा तीन छत्र है,
चाँद सरीखा थारा ऊपर।
जिण सूँ यूँ लागे है म्हाँने—
तीनूँ लोक धरे थूँ जिनवर !

संस्कृत

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त—
मुच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१।।

गुजराती

शोभे छत्रो प्रभु ऊपर तो उजळा चंद्र जेवा,
थंभावे ते रवि किरणनां तेजने देवदेवा;
मोतीओथी मनहर दिसे छत्रशोभा अनेरी,
देखाडे छे त्रण भुवननी स्वामिता आप केरी.

हिन्दी

तीन छत्र
चन्दा-सी शीतल
आभा वाले
जिनकी शोभाएँ
मणि-झालर
बढ़ा रही हैं।
रोक रहे
दिनकर-आतप को
घोषित करते
तीन लोक की
तेरी
अभिनव परमेश्वरता।

मराठी

छत्रें तुझीं धवल तीन शशांक कांत ।
ज्यांनी प्रताप हरिला रविचा क्षणांत ।।
मोत्यामुळें बहुत सुंदर शोभतात ।
स्वामित्व तीन जगतीं तव सांगतात ।।

कन्नड़

समवसरणद चंद्रकांतिय ।
विमल मुक्कोडे युन्नति स्थित ।
ममलभानु प्रकाश दीप्तिय मुत्तिनंतेसेदु ।।
सुमन साधिप मुकुतियोल्लभ ।
नमित तेजने नीनु मूजग ।
नमित विभुवें देनिप कीर्तिय बेळगि पोळेयुवदु ।

हिन्दी

आपके शिरोपरि प्रदेश को अलंकृत करनेवाले तीन छत्र आपकी त्रिलोक-परमेश्वरता के उद्घोषक हैं। चन्द्रमा की भाँति सौम्य-शुभ्र, मोतियों की झालर से द्युति-समृद्ध इन छत्रों ने सूर्य-रश्मियों की प्रचण्डता को रोक लिया है। वस्तुतः ये तीनों आपकी त्रिलोकवर्ती प्रभुता के जीवन्त प्रतीक हैं।

बाङ्ला

हे नाथ! तोमार उपरस्थित तिनटी छत्र, जा चन्द्रमार मत रमणीय, सूर्यकिरणेर प्रखरताहारी ओ मुक्ताफल जाले हयेछे आरो शोभन, तुमि जे तिन जगतेर ईश्वर ता प्रकटित करछे।

अंग्रेजी

The three-fold moon like umbrellas raised high above your head, greatly beautified by the pearl frills, and keeping off the heat of the sun's rays, proclaim your paramount supremacy, omnipotence over the three worlds.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं नमो घोरगुणपरक्कमाणं।

मंत्र –ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहर विसणिर्णासिणं मंगलकल्लाणावासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

प्रभाव–राज्य-मान्यता मिलती है और सर्वत्र सम्मान प्राप्त होता है।

अन्वय + अर्थ

उच्चैः स्थित
ऊपर ठहरे हुए
शशाङ्क कान्तम्
चन्द्रमा की तरह सौम्य-शुभ्र
स्थगित भानुकर प्रतापम्
सूर्य-किरणों की प्रखरता को रोक दिया है जिन्होंने (और)
मुक्ताफल प्रकर जाल विवद्ध शोभम्
मोतियों की झालर से जिनकी शोभा समृद्ध हुई है (ऐसे)
छत्र त्रयम्
तीन छत्र
तव
तुम्हारे
त्रिजगत परमेश्वरत्वम्:
तीन जगत् के परमेश्वरत्व को
प्रख्यापयत् विभाति
घोषित/प्रकट करते हुए सुशोभित हैं।

यन्त्र

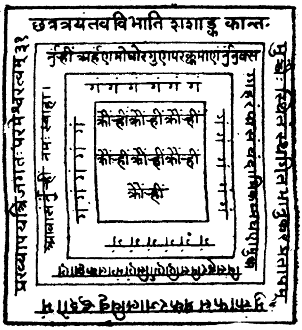

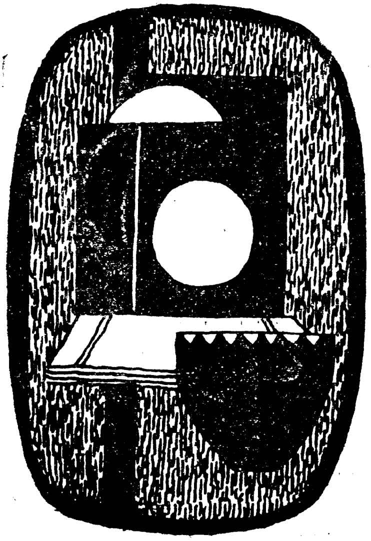

हिन्दी (भाषा)

दुंदुभि-सब्द- गहर गंभीर,
चहुँदिसि होय तुम्हारै धीर ।
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करै,
मानूँ जय-जय रव उच्चरै ।।

राजस्थानी

थारा समोसरण री दुन्दुभि–
दिसा पूरती, त्रिजग भरती।
गगन गूँजती, मानो जिनवर,
थारी कीरत री जय करती।

संस्कृत

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग–
स्त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।।३२।।

गुजराती

पूर्या भागो सकळ दिशना उच्च गंभीर शब्दे,
आ आदर्शो त्रिजग जनने सौख्य संपत्ती आपे;
कीधां जेणे बहु ज विजयो, राज सद्धर्मना त्यां,
ए दुंदुभि यशनभर्मांहि घोषणाथी ज गाजे.

हिन्दी

सकल दिशाएँ
ऊँचे स्वर में
क्वणित-निनादित
तीन लोक को
शुभ सुख-संगम
सौंप रही हैं
सत्यधर्म की
विजय-घोषणा
करतीं अनुक्षण
ये दुन्दुभियाँ
नभ को
यश से
तेरे भरतीं ।

मराठी

जो व्यापितो सहज दीर्घरवें जगाला ।
जो पूर्ण दक्ष जगतीं शुभ दावयाला ।।
जो धर्मराज ! जयशब्द करी गभीर ।
तो दुंदुभी कथितसे तव कीर्ति थोर ।।

कन्नड़

देव दुंदुभि मोळगु निन्नं ।
भूविनुत गुरुवेंदु लोकके ।
तीविदा दनियिंद बांबोळलल्लि सारुतिदे ।।
नोविनिं तल्लणिप जनतेय ।
कावनिव सद्धर्मराजनु ।
पावनात्मक सिद्धनेंबुदनरुहि डंगुरदि ।।

हिन्दी

सारा आकाश आपके कीर्ति-घोषों से अनुगुंजित है। यह दुन्दुभिघोष सद्धर्म/समीचीन जैनधर्म का जयजयकार है। अगजग व्यापी यह गंभीर-अनवरत रव समस्त दिशाओं में समा गया है। यह तीन लोक के प्राणियों को शुभ समागम की विभूति लुटाने वाला है।

बाङ्गला

हे जिनेन्द्र ! गम्भीर और उदात्त शब्दे जा दिक पूरित करते वारे, त्रिभुवन के जा शुभ समागमेर वार्त्ता दिते चतुर ओ तोमार यशेर प्रसारकारी एरूप दुन्दुभि आकाशे सद्धर्मराजेर अर्थात् तीर्थंकर रूपी तोमार जय घोषणा करते वादित हच्छे।

अंग्रेजी

Filling all quarters with deep and loud sound the beat of kettle drums, skilled in announcing the grandeur of the auspicious society to the people of the three worlds, glorifying the victory of the soverign master of Religion, is moving in the sky proclaiming your fame.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरबंभचारिणं।

मंत्र –ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्वदोष-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–संग्रहणी रोग तथा उदर की अन्य पीड़ाएँ दूर होती हैं।

अन्वय + अर्थ

गम्भीर तार रव पूरित दिक् विभागः
गहन/उदात्त/मधुर गूँज से दिशाओं को गुँजाने वाला

त्रैलोक्य लोक शुभसङ्गम भूति दक्षः
तीन लोक के प्राणियों को शुभ समागम की विभूति लुटाने/प्रदान करने में प्रवीण/उदार

ते
तुम्हारे

यशसः प्रवादी
यश को उजागर करने वाला

दुंदुभिः
नगाड़ा/धौंसा/दमामा

खे
आकाश में

सत् धर्म राज जय घोषण घोषकः सन्
समीचीन जैनधर्म तथा उसके प्रवर्तकों का जयघोष करता हुआ

ध्वनित
बजता है।

यन्त्र

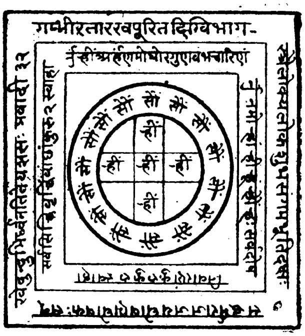

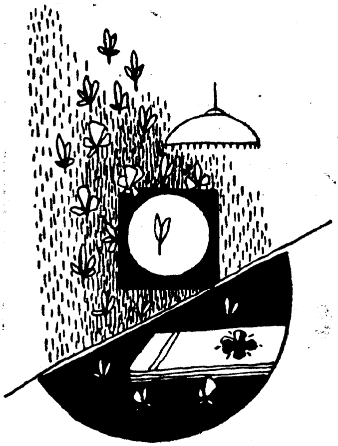

संस्कृत

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात–
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।।३३।।

हिन्दी

पारिजात
नमेरु सुन्दर
पुष्प सन्तानक
बरसते सतत्
भू पर
जल सुगंधित
वायु
जिनवाणी स्वयं
बन
बरसती अविरल
धरा पर।

हिन्दी (भाषा)

मंद पवन गंधोदक इष्ट,
विविध कल्पतरु पुहुप-सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार,
मानो द्विज-पंकति अवतार ।।

राजस्थानी

जल सूँ भींज्या फूल सुगंधी–
समोसरण में बरखे थारा।
व्ही लागे यूँ बरखे मानो–
थारा वचनाँ री रसधारा।

गुजराती

मंदारादि सुरतरुतणा, पुष्प सु पारिजात,
वृष्टि तेनी प्रभुपर थतां, दिव्य धारा थती जे;
ए धारामां शितल जळनो, वायु सुगंधी आपे,
जणे लागे जिनवचननी रम्य पाळा पडे छे.

मराठी

मंदारकादि तरुपुष्प जयांत भव्य ।
गंधोदमिश्र पवनें परिपूर्ण दिव्य ।।
स्वर्गीय ती तुजपुढें सुरपुष्पवृष्टी ।
किंवा मुखांतून पडे तब शब्दसृष्टी ।।

कन्नड़

देव निन्नय दिब्यदनियिं ।
नोवनारिप वचन सुमगळु ।
तीवि तत्वार्थवनु धरणिगे सुरियुति हुवेंतु ।
पावनद सुर तरुगळिंदलि ।
पूव कंपनु ताळि मारुत ।
नाविनुत दाकाशदिंदलि धरेगे बीळ्ववोलु ।।

हिन्दी

उल्लास-पूरित देववृन्द आकाश से मन्दार, नमेरु, पारिजात और सन्तानक नामक कल्पवृक्ष-पुष्पों की, गन्धोदक की, सुख-स्पर्शी फुहारयुक्त वृष्टि कर रहे हैं; जिसे देख ऐसा प्रतीत होता है मानो आपके दिव्य वचन पंक्ति बाँध उतर रहे हैं।

बाङला

हे नाथ ! गन्धोदकेर फोटाँय मंगलीकृत ओ मन्द-मन्द वातासे प्रवाहित हये अर्द्धमुखी दिव्य मन्दार, सुन्दर, नमेरु, सुपारिजात, सन्तातक आदि पुष्प आकाश हते वर्षित हच्छे। अर्थात् शुभ्र तोमार वाक्य-पंक्ति आकाश हते प्रवाहित हये आसछे।

अंग्रेजी

The shower of clusters of flowers of the trees Mandar, Sunder, Nameru, Suparijat and Santanak etc., falling down gently from the sky with the auspicious mild breeze laden with drops of perfumed water, locks as if the continuous flow of Divine and excellent words is pouring out of your mouth.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यानसिद्धि-परमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा।
प्रभाव–सब तरह के ज्वर दूर होते हैं।

अन्वय + अर्थ

गन्ध उदबिन्दु शुभ मन्द मरुत् प्रपाता
जल की सुरभित बूंदों से युक्त और स्वस्तिकर/सुखद मन्द-मन्द हवा के झोंकों के साथ गिरने वाली
उद्धा
ऊर्ध्वमुख
दिव्या
अलौकिक/मनोहारी
मन्दार सुन्दर नमेरु, सुपारिजात सन्तानक आदि
मन्दार, सुन्दर, नमेरु, सुपारिजात, सन्तानक इत्यादि
कुसुम उत्कर वृष्टिः
कल्पवृक्षों की पुष्प-वर्षा
दिवः पतति
आकाश से होती है
वा ते वचसां
या तुम्हारे वचनों की
ततिः
पंक्ति ही
(पतति)
(फैलती है)।

यन्त्र

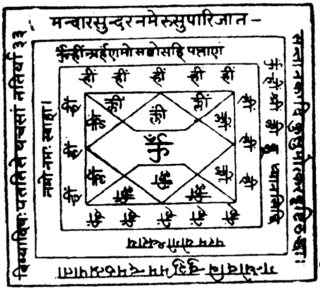

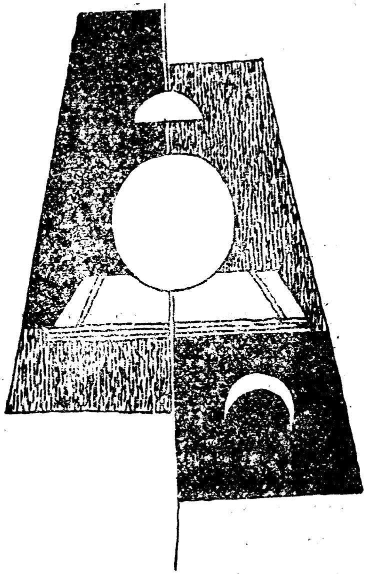

हिन्दी (भाषा)

तुम तन-भामंडल जिनचंद,
सब दुतिवंत करत है मंद ।
कोटि संख रवि तेज छिपाय,
ससि निर्मल निसि करै अछाय ॥

राजस्थानी

थारा भा-मण्डल रे सामे-
लाखाँ सूरज लागे फीका।
लाखाँ चाँद, पदारथ लाखाँ-
तीन लोक रा लागे फीका।

गुजराती

कांति तारी अति सुखभरी, तेजवाळी विशेषे,
झांखा पाडे त्रण जगतना द्रव्यना तेजने ये;
जो के भासे रविसमूहनी उग्रताथी य उग्र,
तो ये लागे शीतळ बहुए, चंद्रनी ठंडीथी य.

मराठी

शोभे प्रभावलय पूर्ण तुझ्या प्रभेनें ।
तेजस्वि तेज हरिले जगतीं जयानें ॥
गेलें असंख्य रवितेज भरून ज्यांत ।
जिंकीन कां मग निशासह चंद्र शांत ॥

कन्नड़

विभुवे निम्मय परमकांतियु ।
सोबगिनिं मूलोक दोळगं ।
प्रभेय बीरुत पोळेयुतिरुवदनंत सूर्यरोलु ॥
अभव निन्नय कांति सौम्यवु ।
सुभगदिं शैत्यवनु तोर्पुदु ।
शुभवु निन्नय कांतियरियमे तमवनोडिपुदु ॥

संस्कृत

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या-
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्
॥३४॥

हिन्दी

भामण्डल की विभा-रश्मियाँ
विभो ! हितंकर
तीन लोक के
द्युतिमन्तों को
करतीं लज्जित ।
अनगिन प्रखर
सूर्य-पंक्ति
अविरल ज्योतिर्मय
सौम्य स्निग्ध
शीतल चन्दा-सी
रात जोततीं ।

हिन्दी

तुम्हारे, संपूर्ण प्रकर्ष से उदीयमान परस्पर सटे असंख्य सूर्यों की तरह खूब शोभन भा-मण्डल की अतिशय आभा तीनों लोकों के समस्त दीप्तिमान पदार्थों की कान्ति को तिरस्कृत/लज्जित/अथवा बौना करती है, और चन्द्रमा के समान सौम्य होने पर भी रात्रि को जीतती है।

बाङ्ला

हे विभो ! देदीप्यमान कोटि सूर्यप्रभ तोमार निवीड़ भामण्डल त्रिलोकेर प्रकाशमान समस्त पदार्थेर द्युति के तिरस्कार करते समर्थ हएओ चन्द्रमार मत शीतल ओ रात्रि के ओ उज्ज्वल करते समर्थ।

अंग्रेजी

O Majestic Lord ! the excessive light of your glittering Halo, surpassing the lustre of the brilliant objects of the three worlds, despite being dazzling like the raging radiance of hundreds of Suns, that overcomes the darkness of night, it is gentle and mild like the light of the Moon.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं।

मंत्र –ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्यौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा।

प्रभाव–गर्भ की संरक्षा होती है।

अन्वय + अर्थ

ते विभोः

तुम्हारे/प्रभु के

प्रोद्यत् दिवाकर निरन्तर भूरि संख्य

संपूर्ण प्रकर्ष से उदीयमान सघन/सटे असंख्य सूर्यों की तरह

शुम्भत् प्रभा वलय भूरि विभा

खूब सुहावने भा-मण्डल की अतिशय आभा

लोकत्रय द्युतिमताम्

तीनों लोकों के समस्त दीप्तिमान पदार्थों की

द्युतिम्

कान्ति को

आक्षिपन्ति

तिरस्कृत/लज्जित करती हुई

सोम सौम्यां अपि

चन्द्रमा के समान सौम्य होने पर भी

निशां अपि

रात्रि को भी

जयति

जीतती है।

यन्त्र

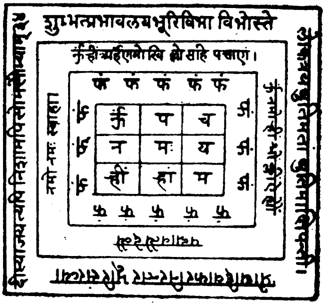

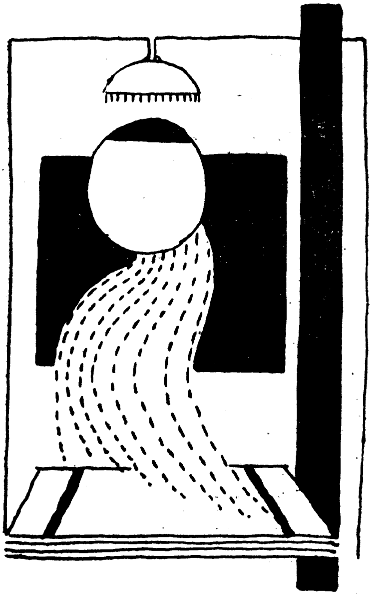

संस्कृत

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।।३५।।

हिन्दी

सत्य धर्म के
तत्त्व-कथन में
अति समर्थ जो
स्वर्ग-मोक्ष
का पथ बतलाती
तीन लोक को
विशद अर्थ
द्रव्यों के
उनकी पर्यायों के
सबको
उनकी ही वाणी में
वितरित करती ।

हिन्दी (भाषा)

स्वर्ग-मोख-मारग संकेत,
परम-धरम उपदेसन हेत ।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध,
सब भाषा-गर्भित हित साध ।।

राजस्थानी

सुरग-मुगत रा पंथ बतावे,
धरम प्रभावे थारी वाणी ।
जो जिण भाषा ने समझे, वो-
वणी रूप में धारे प्राणी ।

गुजराती

पद्वीदाता कुशल अतिशे, मोक्ष ने स्वर्ग बने,
साचो धर्मी त्रिजगभरमां, शुद्ध तत्त्वे प्रवीण ;
एवो तारो विशद ध्वनि भावार्थ गुढे भरेलो,
भाषा गुणे सकळ परिणामे स्वभाव रहेलो.

मराठी

जी स्वर्ग-मोक्ष-फल-दक्ष असून खास ।
सद्धर्म तत्त्व कथिते भुवन-त्रयास ।।
दिव्यध्वनी विमल ती विशदार्थ सांगे ।
भाषा स्वभाव-परिणाम-गुण प्रयोगें ।।

कन्नड़

मुकुति सग्गव बयसुववरिगे ।
युकुति मार्गव तोर्प निन्ना ।
शकुति दिव्यध्वनियु मूलोकदोळगनुपमवु ।।
भकुतियिदिद केळु वात्मर ।
विकळमतियन्नळिसि धर्मद ।
सकल तत्त्वार्थगळ बोधमनितु पालिपुदु ।।

हिन्दी

स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग का अनुसंधान करने वाले मुमुक्षुओं को अभिप्रेत तथा तीनों लोकों को समीचीन धर्म का उपदेश देने में खूब निपुण, विशदार्थ, सर्वगम्य भाषा, पदार्थों के विस्तृत/असंदिग्ध निरूपण में समर्थ, लोक-प्रयुक्त समस्त भाषाओं/बोलियों/उपबोलियों की प्रकृति के अनुरूप परिणत होने की क्षमताओं से संपन्न तुम्हारी दिव्य-ध्वनि होती है।

बाङ्ला

हे भगवन् ! स्वर्ग ओ अपवर्ग कामी मुनिदर जा इष्ट, त्रिलोके सद्धर्म तत्त्व के प्रसारित करते जा पटु जा निर्मलार्थ ओ समस्त भाषा गर्भित सेरूप तोमार दिव्य-ध्वनि समस्तदि के प्रसारित हच्छे।

अंग्रेजी

Your Divine Voice which is indispensable in seeking out the path to heaven and salvation, singularly proficient in expounding the essentials of the right Religion of the three worlds and clear with profound meanings, is endowed with the faculty of being made comprehensible to every one is his own language.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं।

मंत्र –ॐ नमो जयविजयापराजितमहालक्ष्मी: अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् स्वधा स्वाहा।

प्रभाव–चोरी, मृगी, अकाल, राजभय आदि नष्ट हो जाते हैं।

अन्वय + अर्थ

स्वर्ग अपवर्ग गममार्ग विमार्गणेष्टः
स्वर्ग और मोक्ष जाने के मार्ग का अनुसंधान करने वाले मुमुक्षुओं को अभिप्रेत

त्रिलोक्याः
तीनों लोकों को

सद्धर्म तत्त्व कथनैक पटुः
सम्यक्/समीचीन धर्म के कथन में एकमात्र निपुण

विशदार्थ सर्व भाषा
स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्य
पदार्थों को विस्तार से/असंदिग्ध प्रतिपादित/निरूपित करने में समर्थ तथा समस्त भाषाओं/बोलियों/उपबोलियों की प्रकृति के अनुरूप परिणत होने के गुणों की योजनाओं से सुनियोजित

ते
तुम्हारी

दिव्यध्वनि
दिव्यवाणी

भवति
होती है।

यन्त्र

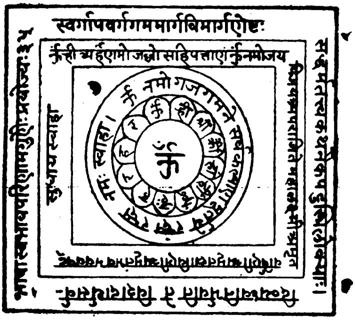

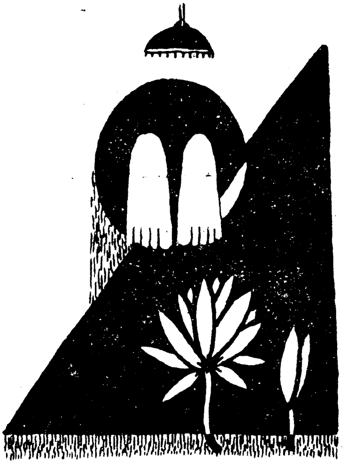

संस्कृत

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।३६।।

हिन्दी

उभय चरण
स्वर्णाम्बुज-जैसे
कान्तिपुंज हैं
नख जिनके
नयनाभिराम

किरणें बिखेरते
वहाँ-वहाँ
कमलों की रचना
करते सुरगण

जहाँ-जहाँ
तव चरण
प्रवर्तित होते
प्रभुवर !

हिन्दी (भाषा)

विकसित-सुवरन-कमल-दुति,
नख-दुति मिलि चमकाहिं ।
तुम पद पदवी जहँ धरो,
तहँ सुर कमल रचाहिं ।।

राजस्थानी

हेम-कमल ज्यूं जिनवर थारा–
पग दोई, चमके नख उण में ।
पड़े चरण व्हो, वठे देवता–
सोन-कमळ बरखावे क्षण में ।

गुजराती

सोना जेवां नवीन कमळो रूप शोभा धरी छे,
एवीं जेना नखसमूहनी कांति शोभी रही छे;
ज्यां ज्यां विश्वे प्रभुजी! पगलां आप केरां
ठरे छे,
त्यां त्यां देवो कमळदळनी स्थापनाने करे छे.

मराठी

भासे सुवर्ण कमलापरि जें जगाला ।
शोभा अतीव नख कांति मुळे जयाला ।।
होते पदांबुज तुझे स्थिर ज्या प्रदेशीं ।
तेथें सुरेंद्र कमलें रचिती विकाशी ।।

कन्नड़

निन्न पादद्वयद नखगळु ।
पोन्न तावरे पुंज सदृशवु ।
चेन्न नीनडियिट्ट ताणदि देववृंदगळु ।।
उन्नतद भकुतियोळु सततं ।
रत्न कमलंगळनु रचिपरु ।
सन्नुतने जगदादिदेवने परम पावनने ।।

हिन्दी

हे जिनेन्द्र ! सद्यः विकसित स्वर्ण-कमल-समूह के समान कान्ति को धारण करने वाले, चारों ओर तरंगित नख-द्युति की किरणों की अनीश्री से सुशोभित तुम्हारे चरण जहाँ भी संस्थित होते हैं, वहाँ देववृन्द सुवर्ण कमलों को खिलाते जाते हैं।

बाङ्ला

हे जिनेन्द्र ! तोमार चरणकमल, जा प्रस्फुटित नवीन स्वर्णकमलेर मत कान्ति-सम्पन्न ओ विकीर्यमान नख समूहेर किरण प्रभाय उज्ज्वल जेखाने जेखाने तुमि स्थापित कर देवतार । सेखाने सेखाने कमलदल रचना करेन ।

अंग्रेजी

O Jinendra (the Lord of conquerors) gods create lotuses wherever you step. Your pair of feet which bear the lustre of recently blown lotuses of gold are beautified by the rays of light skipping from the nails.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ।

मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्ममंत्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष परमंत्रान् छिन्द मम समीहितं च कुरु कुरु स्वाहा ।

प्रभाव–सम्पत्ति का लाभ होना है।

अन्वय + अर्थ

जिनेन्द्र !
हे जिनवर !
उन्निद्र हेम नव पङ्कज पुञ्ज कान्ति
ताज़ा खिले हुए सुवर्ण कमल-समूह के समान कान्ति को धारण करने वाले
परि उल्लसत् नख मयूख शिखा अभिरामौ
चारों ओर तरंगायित नख-आभा की किरणों की अनी-श्री से सुन्दर/मनोहारी
तव पादौ यत्र
तुम्हारे चरण जहाँ भी
पदानि धत्तः
चिह्नित होते हैं/संस्थित होते हैं
तत्र विबुधा
वहाँ देवगण
पद्मानि
सुवर्ण कमलों की
परिकल्पयन्ति
संरचना करते जाते हैं।

यन्त्र

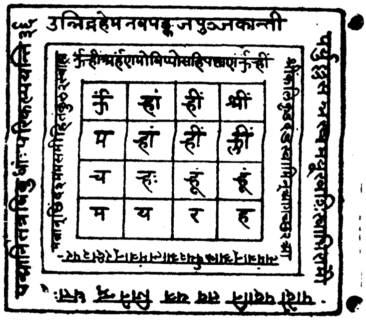

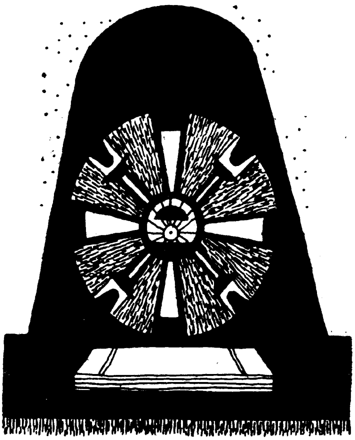

संस्कृत

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ।।३७।।

हिन्दी

धर्म-देशना
जैसी अनुपम
तेरी है प्रभु
वैसी ही औरों की
हो
कैसे संभव है ?
अन्धकार को
ध्वस्त कर सके
ऐसी आभा
सूरज में ही होगी
अन्य ग्रहों में कैसे ?

हिन्दी (भाषा)

जैसी महिमा तुम विषैं,
 और धरै नहिं कोय ।
सूरज में जो जोति है,
 नहिं तारा-गण होय ।।

राजस्थानी

थारा समोसरण री रचना,
जस्यी नहीं दूजाँ देवाँरी।
सूरज में ज्या ज्योत जगे है–
वा तारा में नी वेवा री।

गुजराती

दीसे एवी प्रभुजी विभूति आप केरा खजाने,
देतां ज्यारे जगतभरमां धर्मनी देशनाने;
जेवी कांति तिमिर हरती सूर्य केरी दीसे छे,
तेवी क्यांथी ग्रहगणतणी कांति वासो वसे छे.

मराठी

होते अतीशय असे तव सद्गुणांचे ।
धर्मोपदेश समयीं न तथा परांचे ।।
सूर्यप्रभा चहुकडे पसरून जावी ।
तैशी प्रभा ग्रहगणांस कुठून यावी ।।

कन्नड़

जिनने निन्नुपदेश मार्गद ।
घनते मत्तोब्बनिगे बर्पुदे ।
दिनकरन नव तेज महिमेयनितर ग्रहगणवु ।।
कनसिनोळगु पोंदलसदळ ।
वनुपमने दये शांति शीतळ ।
मिनिगुवा गुणवार्धिचंद्रने त्रिजगवंदितने ।।

हिन्दी

हे प्रभो ! धर्म-देशना के क्षणों में आपकी जो मनोज्ञ विभूति होती है, क्या वैसी किसी और को प्राप्य है ? सही है, अन्धकार को विच्छिन्न करने की जो क्षमता, जो ऊर्जस्विता सूरज में होती है, स्वभावतया नक्षत्रों में वैसी नहीं देखी जाती।

बाङला

हे जिनेन्द्र! धर्मोपदेश देवार समय तोमार विभूति जे रूप प्रकटित हय तेमन अन्येर हय ना। ता ठिकई। कारण, अन्धकार के नष्ट करवार, प्रभा जे जेमन सूर्येर हय तेमन अन्य प्रकाशमान नक्षत्रादिर कोथाय हय ?

अंग्रेजी

O Jinendra ! the Exuberant erudition manifested by you during the course of Religious Preachings was nver attained by any body else. The dazzling radiance perceptible in the Sun is capable of destroying the darkness, when radiance can never be obtained by a cluster of shining planets or stars.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

मंत्र –ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनोवांछितसिद्ध्यै नमो नमः। अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा।

प्रभाव–दुर्जन वशीभूत होते हैं और उनका मुँह बन्द हो जाता है।

अन्वय + अर्थ

जिनेन्द्र !
हे जिनेश !
इत्थम्
इस प्रकार
तव धर्म उपदेशन विधौ
तुम्हारी धर्म-देशना की विधि/पद्धति
यथा
जैसी
विभूति
अतिशय वैभवशालिनी
अभूत्
हुई थी
तथा
वैसी
परस्य न
अन्य धर्मप्रवर्तकों की नहीं हुई। (यह ठीक ही है; क्योंकि)
दिनकृतः यादृक्
सूर्य की जैसी
प्रहतान्धकारा प्रभा
अन्धकार को नष्ट करने वाली रोशनी होती है
तादृक्
वैसी रोशनी
विकासिनः अपि ग्रहगणस्य कुतः ?
उदय प्राप्त करते हुए भी ग्रहगण में कहाँ हो सकती है ?

यन्त्र

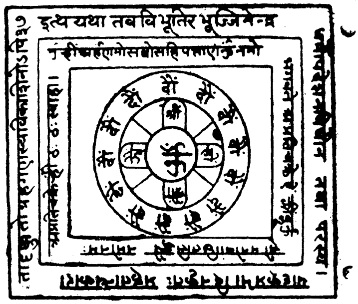

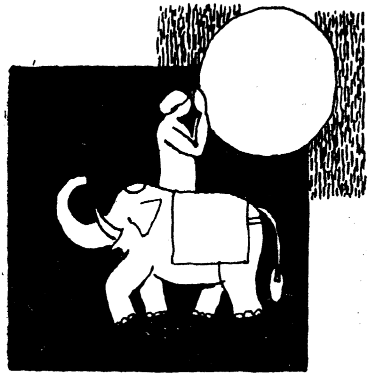

संस्कृत

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।३८।।

हिन्दी

जिस गज के
कुम्भस्थल
मद में भीगे चंचल
भौंरे गुंजन करते
क्रोध बढ़ा है
जिसका
ऐरावत-सा
भीम-भयंकर गज उच्छृंखल
शरणागत भक्तों का
क्या-कुछ कर सकता है ?

हिन्दी (भाषा)

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारैं,
तिन सुन सब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ।।
काल वरन विकराल, कालवत सनमुख आवै,
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावै ।।
देखि गयंद न भय करै तुम पद-महिमा छीन,
विपतिरहित संपतिसहित वरतैं भक्त अदीन ।।

राजस्थानी

मद झरतो, भमराँ सूँ छेड़्यो,
घबराणो, अंकुस रे बाहर।
अस्यो सामने व्है हाथी भी-
जिनवर ! थारो सेवक निडर।

गुजराती

जे कोप्यो छे भ्रमरगणना गूंजवाथी अतिशे,
जेनुं माथुं मदझरणथी छेक भीनुं ज दीसे;
एवो गांडो गजपति कदि आवतो होय सामे,
तो चे कांई भय नव रहे, हे प्रभु! आप नामे.

मराठी

ज्याचा कपाल-मद, हुंगुन भृंगमाला ।
आली समीप बघुनी बहु कोपलेला ।।
ऐता महागज जरी धरण्यास आला ।
कोठून भीति पसरे तव सेवकाला ।।

कन्नड़

स्रविप मदजल धारे कंपिगे ।
कविदु बंदेरगुतिह दुंबिय ।
रववनालिसि कोपवानुते पवन वेगदोलु ।
दिवद विभु वैरावतवोयेने ।
जवन तेरदि बर्प गर्जदि ।
लवणदंशवु भयवु तोरदु निन्न भकुतरिगे ।।

हिन्दी

झरते हुए मद से मलिन और चंचल, कनपटी पर मतवाले हुए मँडराते भौंरों की गूँज से कोप-विवृद्ध, ऐरावत की भाँति भीमकाय, निरंकुश हाथी को सम्मुख आते देख आपका शरणागत पुरुष भयभीत नहीं होता (स्थितप्रज्ञ बना रहता है)।

बाङ्ला

हे नाथ ! झरते थाका मदे जार कपोलेर मूलभाग मलिन ओ चंचल एवं तार ओपर उन्मत्त हये भ्रमणकारी भ्रमरेर शब्दे जार आशे हये छे। ए रूप ऐरावतेर मत उतमत्त हाती के निजेर ओपर एसे पड़ते देखेओ। तोमार जारा आश्रित तारा भयभीत हय ना।

(संसारी जीव मदोन्मत हातीर मत। हातीर कपोल हते मद झरे, एदेर मुख होते अहंकार सूचक वाक्य। आत्मीय परिजन भ्रमरेर मत जार। स्वार्थेर जन्मे सतत् ताके विव्रत करे। एते से आशे कुपित हम। किन्तु तोमार जारा भक्त तारा ए रूप सारी जीव हते भय पाय ना। तारा तादेर मध्ये थेकेओ तोमाके सर्वदा देखे ओ नित्य आनन्दे थाके।)

अंग्रेजी

The devotees who have taken shelter in you are not terrified in the least when they see themselves attacked by the unruly and intoxicated huge elephant,(Airawat like-god Indra's elephant) whose temples are restless and drenched on account of the constant dripping of ichor, who has been provoked by the excited humming bees flying near the frontal globes.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं।

मंत्र –ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतकोपस्थापिनी परमंत्रप्रणाशिनी देविदेवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा।

प्रभाव–हाथी का मद उतरता है और समृद्धियाँ बढ़ती हैं।

अन्वय + अर्थ

श्च्योतत् मद आविल लोल
झरते हुए मद से मलिन तथा चंचल
कपोल मूल मत्त भ्रमद् भ्रमर नाद
गण्डस्थल/कनपटी पर मतवाले होकर मँडराते भौंरों की गूँज से
विवृद्ध कोपम्
बढ़ गया है क्रोध जिसका
ऐरावताभम् उद्धतम् आपतन्तम् इभम्
ऐरावत के समान आकार वाले निरंकुश ऊपर आते हुए हाथी को
दृष्ट्वा
देख कर
भवत् आश्रितानाम्
आपके आश्रय में रहने वाले पुरुषों को
भयम्
भय
नो भवति
नहीं होता है।

यन्त्र

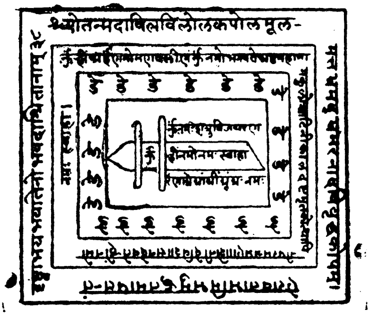

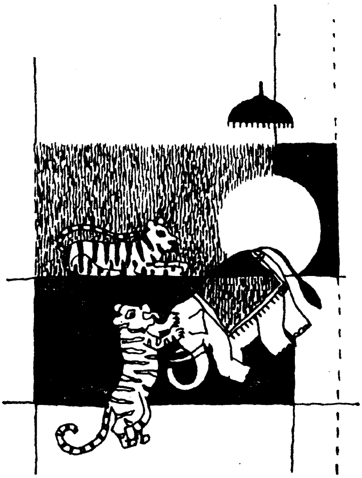

संस्कृत

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त–
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ।।३९।।

हिन्दी

जिस केहरि ने
भीमकाय
मद-डूबे गज के
गण्डस्थल
कर डाले विक्षत
और धरा को
खून-सने गजमुक्ताओं से
किया अलंकृत
ऐसा
नख पर शाण दिये
दहाड़ता नाहर
उभय चरण-गिरि-आश्रित
जनगण के
सम्मुख नत।

हिन्दी (भाषा)

अति मद-मत्त-गयंद कुंभथल नखन बिदारै।
मोती रक्त-समेत डारि भूतल सिंगारै ।।
बांकी दाढ़ विसाल वदन में रसना लोलै।
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ।।
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय।
सरन गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय ।।

राजस्थानी

गंडस्थल हाथ्याँ रा पल में–
तेज नुकीला नख सूँ बेढ़े।
करे गरजना अस्यो सिंघ, पण–
सेवक ने थारा नी छेड़े।

गुजराती

जे हाथीनां शीरमहीं रह्यां रक्तथी युक्त छेने,
मोतिओथी विभूषित कर्मा भूमिनाभाग जेणे;
एवो सामे मृगपति कदी आवतो जो रहे छे,
नावे पासे शरण प्रभुजी! आपनु जे ग्रहे छे.

मराठी

ज्याने बनांत गजमस्तक भिन्न केलें।
मोत्यांसहीत बहु रक्त गळून गेलें ।।
ऐशा स्थितींत जरि सिंह पुढून आला।
भीती नसे मुळिच या तव सेवकाला ।।

कन्नड़

गजद गंडस्थळव सीळुत।
लजित विक्रम सिंहराजनु।
गजरि गर्जिसि रोषदिं मिगे हारि बरुतिर्दु ।।
विजय महिमादर्श निन्ननु।
भजिप भकुतरनेदुरु गोळ्ळलु।
सुजनरोलु शांतियनु पडेवुदु निन्न महिमेयला।।

हिन्दी

विदीर्ण हाथियों के गण्डस्थलों से झरते शुभ्र, किन्तु रक्ताक्त गज-मुक्ताओं से अलंकृत किया है जिसने भूमि-भाग को और जो छलाँग मारने के लिए उद्ग्रीव/सन्नद्ध है ऐसा आक्रामक सिंह उसके पंजों के बीच पड़े, तेरे चरण-युगल रूपी पर्वत के आश्रित जन पर हमले का साहस नहीं करता।

बाङ्ला

हे नाथ ! हस्ती मस्तिष्क विदीर्ण करे रक्तप्लुत मुक्तोय पृथ्वीभाग जे शोभित करे छे एवं आक्रमणे जे उद्यत ए रूप सिंहेर कवले थेकेओ तोमार युगल चरणरूपी पर्वतेर जे आश्रय निये खे से निर्भये थाके।

(मिथ्यात्व वा अविद्यारूपी ज्ञानइ अज्ञान। एइ अज्ञानरूपी सिंह संसारेर समस्त प्राणि के निजेर कवले कवलित करे रेखे छे। बड़-बड़ पण्डित, विद्वान, धर्मात्मा हस्तिरूपा एदेर मस्तिष्क हते जे तार्किक साहित्य, लौकिक पान आदि निर्गत ध्य ता मिथ्यात्व रूपी रक्त-रंजित मुक्तो। एते पृथिवीर शोभामय विवर्द्धित हय। ए रूप अज्ञान सिंहेर कवले थेकेओ जे तोमार चरणद्वयेर आश्रय पेय से निर्भय हये जाय।)

अंग्रेजी

The lion (king of the beasts) who has decorated a part of the ground with a lot of white pearls drenched in blood from the rent temples of elephants and has assumed a posture of aggression, cannot attack the man who has taken refuge at your mountain like feet, even though he has fallen into his clutches.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं वचनबलीणं।

मंत्र –ॐ नमो एषु दत्तेषु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्ति वर्णा येषु मंत्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना परमंत्रनिवेदनाय नमः स्वाहा।

प्रभाव–सिंह निःशक्त हो जाता है और सर्प का भय नहीं रहता।

अन्वय + अर्थ

भिन्न इभ कुम्भ गलद् उज्ज्वल
विदीर्ण हाथियों की कनपटियों से झरते शुभ्र
शोणित अक्त मुक्ताफल प्रकर
(किन्तु) खून में सने गजमोतियों की राशि से
भूषित भूमि भागः
सुशोभित कर दिया है भूमि-खण्ड को जिसने ऐसा
बद्धक्रमः
छलाँग मारने के लिए तैयार/सन्नद्ध
हरिण अधिपः अपि
सिंह भी
क्रमगतम्
पंजों के बीच पड़े
ते क्रम युग अचल संश्रितम्
तेरे चरण-युगल-रूपी पर्वत के आश्रित भक्त पर
न आक्रमति
हमला करने का साहस नहीं करता।

यन्त्र

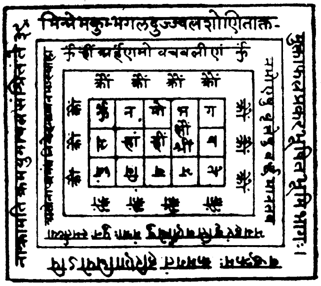

संस्कृत

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।४०।।

हिन्दी

प्रलय-पवन के
झोंकों से
दहाड़ते पावक-जैसी
धकधकती
फुसकारे भरती
निगलेगी जग सारा
इतनी आतुर ऐसी
जंगल की अगन विभीषण
क़दम उठाये आती
किन्तु नाम के जल से तेरे
शान्त-शमित
होती पल-भर में।

हिन्दी (भाषा)

प्रलय-पवन कर उठी आग जो तास पटंतर ।
बमैं फुलिंग सिखा उतंग परजलैं निरंतर ।।
जगत समस्त निगल्ल भस्म करहैगी मानो ।
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँदिसा उठानो ।।
सो इक छिनमें उपसमैं, नाम-नीर तुम लेत ।
होय सरोवर परिनमैं, विकसित कमल-समेत।।

राजस्थानी

प्रलैकाळरा पवनवेग ज्यूं–
जगनासी आवे दावानल ।
उण रो समन करे है जिनवर !
थारो निरमळ नाम रूप जल ।

गुजराती

કલ્પોકેરા સમય પરના વાયરાથી અતિશે,
ઉડે જેમાં વિવિધ તણખા અગ્નિકેરા ય મિષે;
એવો અગ્નિ સમીપ કદીએ આવતો હોય પોતે,
તારા નામ સ્મરણ જલથી થાય છે શાંત તો તે.

मराठी

जो कल्प-काल पवनें खवळून गेला ।
ज्याच्या उडून ठिणग्या भिडती नभाला ।।
वाटें दवानल जगास गिळून आला ।
त्वन्नाम कीर्तन जलें शमतो मुळाला ।।

कन्नड़

प्रलय कालद गाळि होडेतदि ।
झळित मागुगुळुत्त किडिगळ ।
तळमळिसि लोकवनु तन्नय बेंकि बेनेयलि ।।
कलियुगद विश्ववनु नुंगलु ।
घळिलनैदुव काडुकिच्चदु ।
मलिनमप्पु दुनिन्न कीर्तन जलदि निश्शेषं ।।

हिन्दी

प्रलय के उनचास पवन से उत्तेजित अग्नि के समान धधकती, लपलपाती, चिनगारियाँ फेंकती/उगलती, विश्व को निगल जाने की अदम्य वासना लिये, सामने आती दावाग्नि भी तुम्हारे नाम-संकीर्तन-रूपी जल से पूर्णतः शान्त हो जाती है।

बाङ्ला

हे भगवन्! प्रलयकालीन पवने उत्तेजित अग्नि सदृश एवं जा हते स्फुलिंग निर्गत हये चारदिके छड़िये पड़ छे ओ जा विश्व-संसार के विनष्ट करते अभिलाषी एमन जे सम्मुख स्वागत दानानल ताओ तोमार नामोच्चारण-मात्र शान्त हये जाय।

(प्रलयकालीन पवन, काम, क्रोध, लोभादि रूप कषाय। अग्नि तृष्णा स्फुलिंग संकल्प-विकल्प। ए रूप अग्नि विश्व के ग्रास कर छे। ए रूप अग्नि के ओ तोमार भक्त तोमार नामोच्चारणे शान्त करे देय।)

अंग्रेजी

The furious forest conflagration like the intense fire moving ahead infuriated by the violent storms of the tempests of Destruction, tossing up sparks and blazing up in flames, spreading swiftly as if intent to reduce the universe to cinder, is quickly quietened totally by the water of your laudation.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।
मंत्र –ॐ ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं अग्नेः उपशमं कुरु कुरु स्वाहा।
प्रभाव–अग्नि का संकट/भय दूर होता है।

अन्वय + अर्थ

कल्प अन्त काल पवन उद्धत
प्रलय की झंझावात से उत्तेजित
वह्नि कल्पम्
अग्नि के समान
ज्वलितम्
जलती हुई/धधकती हुई
उज्ज्वलम्
निर्धूम/लपलपाती
उत् स्फुल्लिगम्
चिनगारियाँ फेंकती हुई
विश्वं जिघत्सुं इव
विश्व को निगल जाने की वासना लिये
सम्मुखं आपतन्तं दावानलम्
सामने आती हुई दावाग्नि भी
त्वत् नाम कीर्तन जलम्
तुम्हारे नाम-संकीर्तन-रूपी जल से
शमयति अशेषम्
पूरी तरह शान्त हो जाती है।

यन्त्र

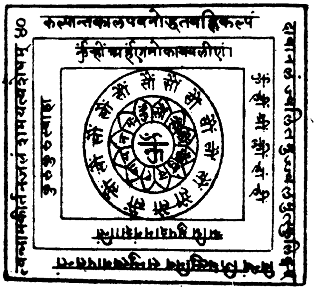

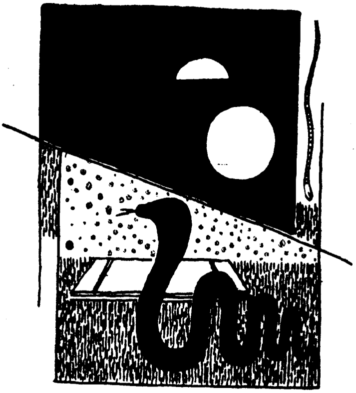

संस्कृत

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंक–
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ।।४१।।

हिन्दी

फन उठाये
क्रोधोद्धत
आँखें लाल
स्याह्-काला
कोयल के समद कण्ठ-सा
डसने को तैयार
नाग को
बिन आशंका लाँघ
निकलता पार
भक्त तेरा
वह,
नाम-नागदमनी
जिसके मन ।

हिन्दी (भाषा)

कोकिल-कंठ-समान स्याम-तन क्रोध जलंता ।
रक्त-नयन फुंकार मार बिस-कण उगलंता ।।
फणको ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया ।
तब जन होय निसंक देख फणिपतिको आया ।।
जो चांपै निज पगतलैं, ब्यापै बिख न लगार ।
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ।।

राजस्थानी

कोयल रे कण्ठ ज्यूँ कालो–
क्रोधी अर फुँकारा मारे ।
अस्या सरप ने वो लांघे, जो–
थने नाथ हिरदा में धारे ।

गुजराती

काळो काळो अतिशय बनी, लाल आंखो करेली
क्रोधे पूरो बहुविध बळी, उछळे फेन जेनी;
एवो मोटो मणिधर कदी आवतो होय सामे,
निश्चे थंभे तुरत अहीं ते हे प्रभु! आय नामे.

मराठी

कोकील कंठ समनील सुरक्त नेत्र ।
काढी फणा वर म्हणून दिसे विचित्र ।।
ते पाय ठेविति फणावर त्या फणीच्या
त्वन्नाम औषधि असे हृदयीं जयाच्या ।।

कन्नड़

कोपदिं केंपाद कण्णि ।
तापदिं करिदाद मेय्यि ।
धूपदंति पुसिर सुय्यने सुय्दु बरुतिर्प ।।
आ फणिपन गर्लिदं हेडेयं ।
पापनाशकमाद निन्नय ।
रूपनेदेयलि पोंदि तुतिपनु मेट्टि तुळियुवनु ।।

हिन्दी

जिस भक्त के हृदय में तेरे नाम की नागदमनी विद्यमान है, वह लाल-लाल आँखों वाले, उन्मत्त कोकिल के कण्ठ के समान काले, क्रोध में बावले, दंश के लिए फन उठाये, सम्मुख आते साँप को भी निःशंक लाँघ जाता है।

बाङ्ला

हे जगन्नाथ ! जार हृदये तोमार नाम रूप सर्वदमनकारी शेकड़ रचे छे। से लाल जार चोख, मदे जे उन्मत्त, कोकिल कण्ठेर मत कालो गात्रवर्ण, क्रोधे जे फणा तुले दंशन करवार जन्मे उद्यत एमन सापके ओ शंका-रहित हये पायेर तलाय माड़िये स्वच्छन्दे चले जाय।

(साप जेमन गुप्त धन रक्षा करे तेमनि अन्तराय (सत्काजे जा वाधा देय रूपी सर्प आत्मारूप धन के रक्षा करे। साधक जखन आत्माभिमुखी हजार चेष्टा करे तखन सेइ सर्प ताके वाधा देय वाधा प्राप्त हये तारा निरुष्ट हय ना वरं सेइ सर्प के दमन करे आशे तीव्र वेग अग्रसर हय।)

अंग्रेजी

The man who possesses the Nagdamni (Asparagus Plant) of your name rooted in his heart, fearlessly treads over the most poisonous red eyed serpent as black as the neck of an intoxicated Cuckoo, and indignant with rage ready to sting with its hood raised.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं।

मंत्र –ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रः जलदेवि कमले कमले पद्महृदनिवासिनी पद्मो-परिसंस्थिते सिद्धि देहि मनोवांछितं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–साँप का ज़हर उतर जाता है।

अन्वय + अर्थ

यस्य पुंसः हृदि
जिस भक्त पुरुष के हृदय में

त्वत् नाम नागदमनी
तुम्हारे नाम की नागदमनी है

(सः)

(वह)

रक्तेक्षणम्
लाल-लाल आँखों वाले

स मद कोकिल कण्ठ नीलम्
मतवाले कोकिल के कण्ठ के समान काले

क्रोध उद्धतम्
क्रोध में सन्नाये

उत्फणम् आपतन्तम्
डसने को फन उठाये आते

फणिनम्
नाग को

निरस्त शङ्कः
निःशङ्क भाव से

आक्रामति
लाँघ जाता है।

यन्त्र

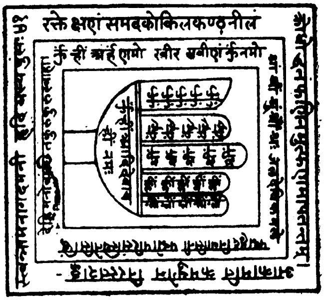

संस्कृत

वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद–
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।।४२।।

हिन्दी

खूंदी करते अश्व
चिंघाड़ें हाथी भरते
सुन पड़ते चीत्कार
दिशाओं में
सुदूर तक।

रणथल में
सेनाएँ जब
दहाड़तीं भीषण
तब
एकाकी शरणहीन नृप
लेकर तेरा नाम
शीघ्र ध्वज फहराता है;

ऐसे
जैसे सूर्य-रश्मियाँ
अन्धकार पर।

हिन्दी (भाषा)

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम ।
घन-से गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम ।।

अति कोलाहलमाहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै ।
राजन को परचंड देख बल धीरज छीजै ।।

नाथ तिहारे नाम तैं, सो छिनमाहिं पलाय ।
ज्यों दिनकर परकास तैं, अंधकार बिनसाय ।।

राजस्थानी

घोड़ा उछले, गरजे हाथी,
जबरी व्है फौजाँ री पाँताँ ।
थारा नाम लियाँ व्ही बिखरे–
ज्यूँ बिखरे सूरज सूँ राताँ ।

गुजराती

अश्वो कूदे गजगण करे भीमनादो अतिशे,
एवी सेना समरभूमिमां राजती जीतमिशे;
भेदाये ते तुरत प्रभुजी! आपना कीर्तनोथी,
जाणे नासे तिमिर सघळां, सूर्यना किरणोथी

मराठी

जेथें तुरंग गज आदिकरून सर्व ।
जे वल्गना करिति पूर्ण धरून गर्व ।।
युद्धामधील नृपसैन्य पळून जातें ।
त्वत्कीर्तनें तम जसें रविच्या पुढें तें ।।

कन्नड़

तुरग हेषारवदोळानेय ।
परिपरिय धींकार दनियिं ।
मेरेदु बह शत्रुगळ सैन्यवु निन्न कीर्तनेयिं ।
त्वरित दिदलि लयिसि पोपुदु ।
तरणि किरणव कंड तमदोलु ।
परम करुणासिंधु जिनपने पुरुजिनेश्वरने ।।

हिन्दी

रणभूमि में, तुम्हारे नाम-संकीर्तन के प्रभाव से, बलशाली राजाओं की युद्ध जूझते घोड़ों और हाथियों के हिनहिनाते/चिघाड़ने से जिसमें दिल दहलाने वाला रौरव हो रहा है ऐसी सेना भी उदीयमान सूर्य की किरणों से नष्ट अन्धकार के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होती है।

बाङ्ला

हे जिनेश्वर! संग्रामे तोमार नाम कीर्तन करा मात्र बलवान भूपतिदेर युद्धरत हाती ओ घोड़ार गर्जना ओ युद्धरत सैन्य-दल सूर्योदये सूर्य किरणेर अग्रभाग द्वारा जे मन अन्धकार छिन्न-भिन्न हये जाय सेइ रकम छिन्न-भिन्न हये जाय।)

(किन्तु सेइ सर्प अत सहजे आत्मारूप गुप्त धनके प्रकट हते देय ना। विपूल विक्रमे से ताते वाधा देवार चेष्टा करे, किन्तु तोमार नामेर काछे सर्व व्यर्थ।)

अंग्रेजी

By praising you the powerful armies of the warrior kings, in a battle resounding with the noise of galloping horses and trumpating elephants, are instantaneously vanquished like the dispersion of the thick nocturnal darkness by the rays of the rising Sun.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।
मंत्र –ॐ नमो नमिऊणविषप्रणाशनरोग-शोकदोषग्रहकप्पदुमच्चजाई सुहनाक गहण–सकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा।
प्रभाव–युद्ध-भय मिट जाता है।

अन्वय + अर्थ

आजौ
लड़ाई के मैदान में
त्वत् कीर्तनात्
आपके नाम-संकीर्तन से
बलवताम्
शक्तिशाली
भूपतीनाम्
राजाओं की
वल्गत् तुरङ्ग गज गर्जित भीम नादम्
युद्धरत घोड़ों और हाथियों के हिनहिनाने/चिघाड़ने से जिसमें दिल दहलाने वाला हाहाकार हो रहा है (ऐसी)
बलं अपि
सेना भी
उद्यत् दिवाकर मयूख शिखा अपविद्धम्
उदीयमान सूर्य की किरणों की अनियों से नष्ट/ध्वस्त
तमः इव
अन्धकार के समान
आशु
शीघ्र ही
भिदाम्
नाश को
उपैति
प्राप्त होती है।

यन्त्र

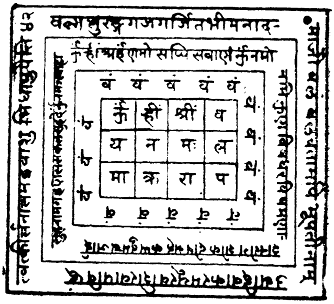

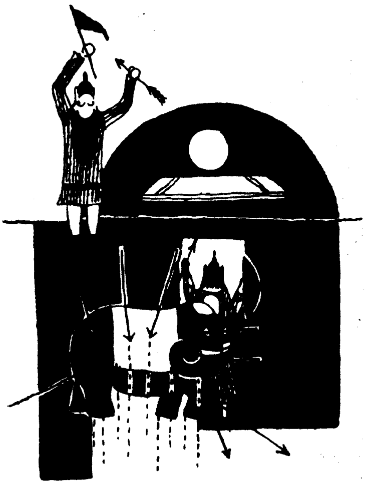

संस्कृत

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह–
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा–
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ।।४३।।

हिन्दी

भालों की नोकों
से विक्षत
गज-देहों से
लोहू के फव्वारे
अदम्य वेग से उठते
जनमी जिनसे
रक्त-नदी में
योद्धा
होड़ किये
तिरने की ।

ऐसे
दुर्जय रण में
जय की
जहाँ न आशा
पद-पंकज-वन-शरण
रहा
वह कभी न हारा ।

हिन्दी (भाषा)

मारैं जहाँ गयंद कुंभ हथियार बिदारैं ।
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जलसम बिस्तारैं ।।

होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल-पूरे ।
तिस रनमें जिन तोय भक्त जे हैं नर सूरे ।।

दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक ।
तुम पद-पंकज मन बसैं, ते नर सदा निसंक ।।

राजस्थानी

भाला रा भेदन सूँ लोही–
हाथ्याँ रो बहवे रण-खेताँ ।
अस्या जुद्ध में सेवक थारो–
नाम लेय तो वणे विजेता ।

गुजराती

भोंकाता ज्यां करि शरीरमां लोहीधारा वहे छे
तेमां म्हाली अहींतहीं अहा, सैनिको रहे छे;
ए संग्रामे नव रही कदी जीत केरी निशानी,
लीधुं जेणे शरणु तो हार होये ज शानी ?

मराठी

भाले शिरून गजमस्तक भिन्न झालें ।
त्यांतील रक्त वघूनि भटही पळाले ।।
ऐशा रणीं सबल, शत्रुस जिंकितात ।
जे 'पादपद्म' तव घेउन नाचतात ।।

कन्नड़

भर्जियिरित दिनोडेद गजदा ।
पज्जळिप तलेयिंद स्रविसु ।
तूर्जितद रक्तप्रवाह दोळिळिदु दांटलुता ।।
वुज्जुगिप भटरिंद भीकर ।
सज्जिर्जनिंदिह घोर शत्रुव ।
सज्जनाश्रय निन्न भकतरु नाशमाडुवरु ।।

हिन्दी

बरछी की नोंकों से आहत हाथियों के रक्त-जल-प्रवाह में वेग से उतरने और उसे तैर जाने के लिए उतावले योद्धाओं से युक्त भीषण रण में कठिनता से जीता जा सके ऐसे शत्रुपक्ष को आपके चरण-कमल-रूपी वन में आश्रित पुरुष सहज ही जीत लेता है।

बाङ्ला

हे देव ! वर्शार अग्रभाग द्वारा छिन्न-भिन्न हातीदेर रक्तरूप जल प्रवाहे भासमान आतुर योद्धादेर दुर्गति ते भयानक जे युद्ध सेइ युद्धे तोमार चरणरूपी कमल वनेर जे आश्रय नेय सेजे शत्रु के जय करा सम्भव नय के रूप शत्रु के ओ पराजित करे जय लाभ करे।

(पूर्ववर्ती भावई सम्प्रसारित हये छो आध्यात्मिक संग्रामे जखन से पराजित प्राय, मोह जखन जयी हते जाय सेइ समय से यदि तोमार चरणे शरण नेय तवे मोह के परास्त करे विजयलक्ष्मी सेइ लाभ करे।)

अंग्रेजी

In the fierce battle in which the warriors are struggling to swim the streams of blood gushing out of the elephants rent up by the lancepoints, those having sought refuge in the forest of your lotus like feet, emerge victorious vanquishing even those unconquerable.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

मंत्र –ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासनसेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी इष्ट-सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

प्रभाव–भय मिटता है और शान्ति प्राप्त होती है।

अन्वय + अर्थ

कुन्त अग्र भिन्न गज
बरछी की नोंकों से क्षत-विक्षत हाथियों के
शोणित वारिवाह
रक्त-रूपी जल-प्रवाह में
वेग अवतार तरण आतुर
वेग से उतरने और उसे तैर जाने में उतावले
योध भीमे
रणबाँकुरों से युक्त भयंकर
युद्धे
युद्ध में
विजित दुर्जय जेय पक्षाः
कठिनता से जीता जा सकता है ऐसे शत्रुपक्ष पर
त्वत् पाद पङ्कज
आपके चरण-कमल-रूपी
वन आश्रयिणः
वन का आश्रय लेने वाले पुरुष
जयम् लभन्ते
विजय को प्राप्त करते हैं।

यन्त्र

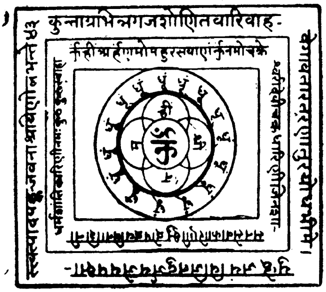

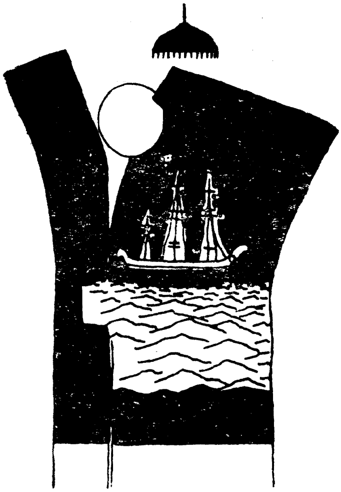

संस्कृत

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति।।४४।।

हिन्दी

सागर-जल
विक्षुब्ध
लहर-पर-लहर हहरती ।
बड़वानल धधका है
लपटें जिसकी भीषण ।
मगर
मच्छ
घड़ियाल
सिंधु करते आलोड़ित ।
पोत
भँवर में घिरा
डूबने की तैयारी
यदि
तेरा हो ध्यान
त्रास
पल में
नतमस्तक ।

हिन्दी (भाषा)

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै ।
जामैं बडवा अग्नि दाह तैं नीर जलावै ।।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी ।
गरजै अतिगंभीर लहरि की गिनति न ताकी ।।
सुखसों तिरैं समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहिं ।
लोल कलोलन के सिखर, पार यान ले जाहिं ।

राजस्थानी

अस्यो समन्दर जिण में आगी,
मगरमच्छ अर घड़ियालाँ ।
थारा नाम लियाँ सूँ जिनवर !
जहाजाँ ने ले तट पालां ।

गुजराती

ज्यां त्यां कूदाकूद करी रह्यां नक्रचक्रो करे छ,
जेमां मोजां अहीं तहीं बहु जोरथी उछळे छे;
एवा अब्धिमहीं कदी अहा! यात्रिको जो, फसाय,
संभारे जो प्रभुजी! तमने, भीति तो दूर थाय.

मराठी

ज्यांतील मौन सुसरी बहुतेक सर्व ।
क्षोभून जो जलधि पूर्ण दिसे अपूर्व ।।
त्या सागरांतुन जहाज तरून जातें ।
निर्विघ्न त्यांत बसुनी स्मरती पदातें ।।

कन्नड़

क्रूरनक्र तिमिंगिलगळि ।
भूरिमारुत होडेतदिंदलि ।
कारि कोपद होगेय मिगे बडवाग्नियं तळेदु ।।
मेरेयिल्लद कडल मडिलोळु ।
सारुतिह नाविकर गडणवु ।
कोरि निन्ननु नेनेये पारागुवुदु वारिधियिं ।।

हिन्दी

आपके नाम-स्मरण से अत्यन्त भयावने मगर, मच्छ, घड़ियाल आदि के क्रुद्ध होने तथा भीमाकार पाठीन नामक मत्स्य की पीठ के जहाजों से टकराने के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न विलक्षण रूप में धधकती वाडवाग्नि से क्षुब्ध समुद्र में तीव्र वेग में उछलती तरंग-शिखरों पर डगमगा रहे जहाज लिये भक्त पुरुष अप्रत्याशित संकट से उबर कर पार निकल जाते हैं/तट पर पहुँच जाते हैं।

बाङला

हे प्रभु ! भीषण नक्रचक्र, मकर, प्राणीन ओ पीठे ओ भयंकर वाड़वाग्नि ते जे समुद्रे विक्षुब्ध, सेइ समुद्रेर तरंगे उत्क्षिप्त जाहाजे अवस्थित व्यक्तिओ तोमाके स्मरण-मात्र त्रासहीन हये ता अतिक्रम करते समर्थ।

(अर्थात् तोमाके स्मरणमात्र ए रूप दुस्तर जे भव जलधि ताओ अतिक्रम करते से समर्थ हय।)

अंग्रेजी

Persons seated in the ships staggering on the summits of the impetuous waves of the ocean infested with the terrible crocodiles, alligators, whales and peesh aquadits etc. and by the dreadful submarine fire, sail to the shore fearlessly by contemplating name.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमयसवीणं।
मंत्र –ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लंकाधिपतये महाबल-पराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा।
प्रभाव–सब प्रकार की आपत्तियाँ हट जाती हैं।

अन्वय + अर्थ

भवतः स्मरणात्
आपके स्मरण से
क्षुभित भीषण नक्र चक्र
पाठीन पीठ भयद् उल्वण वाडवाग्नौ
अत्यन्त भयावने मगर, मच्छ, घड़ियाल आदि के क्रुद्ध होने तथा भीमकाय पाठीन मत्स्य की पीठ के जलपोतों से टकराने के फलस्वरूप उत्पन्न विलक्षण धधकती वाडवाग्नि से क्षुब्ध
अम्भोनिधौ
समुद्र में
रंगत् तरङ्ग शिखर स्थित यान पात्राः
तीव्रता में उछलती हुई तरंगों की चोटियों पर डगमगा रहे हैं जिनके जहाज ऐसे भक्त पुरुष
त्रासं विहाय
आकस्मिक संकट से उबर कर
व्रजन्ति
पार निकल जाते हैं।

यन्त्र

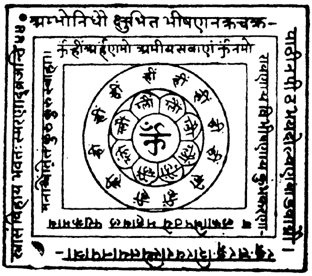

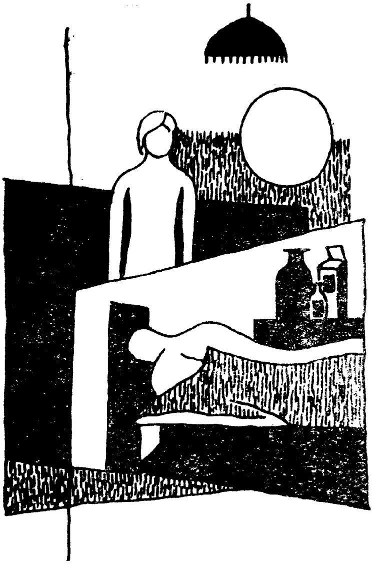

संस्कृत

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना:
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशा:
त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपा: ।।४५।।

हिन्दी

जीने की आशा
जिसने
बिलकुल छोड़ी है
हुआ जलोदर जिसे
भुग्न काया
अपरूपा ।
ऐसा
मानव भी
यदि
पद-पंकज-रज तेरी
धारण करता तन पर
तो
पाता मकरध्वज-तुल्य रूप
अभिनव
पल-भर में ।

हिन्दी (भाषा)

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं ।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं ।।
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आसा ।
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा ।।
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग ।
ते नीरोग सरीर लहि, छिन में होय अनंग ।।

राजस्थानी

जिण रे रोग जलोदर भारी,
झुक्या अंग अर मरण सरीखो ।
वो भी थारी पग-रज ले तो–
कामदेव सो वणे व'नी को ।

गुजराती

अंगो जेना अतिशय वळ्या, पेटना व्याधिएथी,
जेणे छोडी जीवन जीववा, सर्वथा आशतेथी;
एवा प्राणी शरण प्रभुजी! आपनुं जो धरे छे,
तेओ निश्च जगतभरमां देवरूपे फरे छे.

मराठी

ज्याला भयंकर जलोदर रोग होय ।
जो जीवितास मुकुनी अति शोचनीय ।।
त्याला तुझा पदरजामृत-लेप केला ।
निर्व्याधि तो मदन रूप दिसे जगाला ।।

कन्नड़

भय जलोदर भारदिंदलि ।
लयव पोंदुत्तिर्प जनरुं ।
जयव मरेतु प्राणदासेय नीगि कोरगुतिरे ।।
भय विनाशक निन्न पाद ।
द्वयगळेंबुव पंकजर रज ।
नयादि नवरिगे मार सुंदर रूपनीयु वुदु ।।

हिन्दी

उत्पन्न जलोदर-व्याधि के भार से जो कुबड़ा गये हैं, जिनकी अवस्था शोचनीय है, जिनके जीने की कोई संभावना शेष नहीं है, ऐसे मनुष्य भी तुम्हारे चरण-कमल के धूलि-अमृत से शरीर को लिप्त कर कामदेव के समान रूपवान् हो जाते हैं।

बाङला

हे जिनराज! भीषण जलोदर रोगे कुब्जता प्राप्त हये जे ए मन शोचनीय अवस्था प्राप्त हय जे आर बाँचवार आशा थाके ना, सेओ यदि तोमार चरणधूलिर अमृते निज देह के लिप्त करे तवे कामदेवेर समान रूप-लाभ करे।

अंग्रेजी

Persons, bent down under the weight of horribly swollen dropsy, having reached a precarious stage and have lost of survival are also cured and transformed into handsomeness like that of God Cupid by anointing the nectar of the pollen of your lotus like feet.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं।
मंत्र –ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्ति-कारिणी रोगकुष्टज्वरोपशमं (शान्तिं) कुरु कुरु स्वाहा।

अन्वय + अर्थ

उद्भूत भीषण जलोदर
उत्पन्न असाध्य जलोदर के
भार भुग्नाः
भार से जो कुबड़ा गये हैं
शोच्यां दशां उपगताः
(और) जो शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुए हैं
च्युत जीवित आशाः
(तथा) जिनके जीने की कोई आशा शेष नहीं रही है
मर्त्या
ऐसे मनुष्य भी
त्वत् पाद पङ्कज रजस् अमृत
तुम्हारे चरण-कमलों के धूलि-रूपी अमृत से
दिग्ध देहाः
शरीर को लिप्त कर के
मकरध्वज तुल्य रूपाः
कामदेव के समान रूपवान्
भवन्ति
हो जाते हैं।

यन्त्र

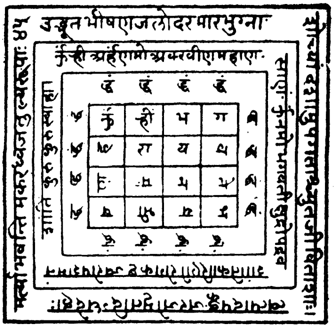

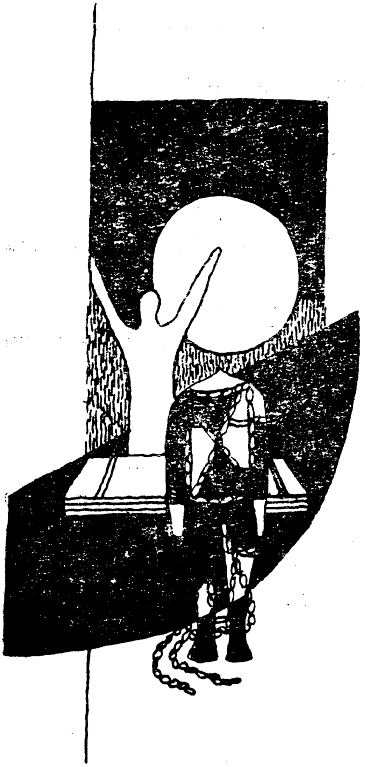

संस्कृत

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ।।४६।।

हिन्दी

लोह शृंखलाओं से
जिसकी
काया जकड़ी
ऐसा क़ैदी
जिसकी जंघाएँ
बेड़ी की कोरों के
तीखे संघर्षण से
आहत ।
आठों
पहर नाम लेता हो
यदि प्रभु तेरा
तो निश्चय ही
विगत-बन्ध होता पल-भर में ।

हिन्दी (भाषा)

पाँव कंठ तैं जकर बाँध साँकल अति भारी ।
गाढी बेड़ी पैर माँहि जिन जाँघ बिदारी ।।
भूख प्यास चिंता सरीर दुख जे बिललाने ।
सरन नाँहि जिन कोय भूप के बंदीखाने ।।
तुम सुमरत स्वयमेव हीं, बंधन सब खुल जाहिं।
छिन में ते संपत्ति लहैं, चिंता भय बिनसाहिं ।।

राजस्थानी

लोहारी साँकल सूँ जकड्यो,
बेड्याँ सूँ जाँघाँ छिल जाय।
अस्यो मानवी थने जपे, तो–
बंधन सूँ खुद ही छुट जाय।

गुजराती

जे केदीनां पगमहीं अरे! बेडीओ तो पडी छे,
माथाथी ते जकडी लइने जांघ सुधी जडी छे;
एवा केदी मनुज प्रभुजी! आपने जो स्मरे छे,
सर्वे बंधो झटपट छूटी, छूटथी ते करे छे.

मराठी

हा देहशृंखल-निबद्ध जरी जहाला ।
बेड्या अनेक जरी घर्षिति या तनूला ।।
त्वन्नाम-घोष जरि चालविला बसून ।
बेड्या तटातट तरी पडती तुटून ।।

कन्नड़

कालिंनि कुत्तिगेय वरेगं ।
मालेया संकोलेयिंदलि ।
जालि मुल्ळुगळंते बिगिदा देहवनु ताळि ।।
गोळिडुत हिंसेयनु पडुवरु ।
जाल माडदे निन्न नेनेयलु ।
पालकने निगडंगळेल्लवु कळचि बीळुवुदु ।।

हिन्दी

हे प्रभो ! पाँव से ग्रीवा तक बड़ी-बड़ी सुदृढ़ साँकलों से जिनके अंगांग जकड़े हुए हैं और खूब कसी हुई बड़ी-बड़ी बेड़ियों/जंजीरों की कोरों की रगड़ से जिनकी जाँघें छिल गयी हैं ऐसे मनुष्य भी तुम्हारे नामरूपी मन्त्र का सतत् स्मरण करने से अविलम्ब/तत्क्षण आपोआप बन्धन के भय से संपूर्णतः मुक्त हो जाते हैं।

बाङला

हे देव ! जार शरीर पा हते गला अवधि बड़बड़ शृंखले निरन्तर आवद्ध ओ बेड़ीर तीक्ष्ण नाम जार जंघा भीषण भावे छिले गेछे, एमन मानुषो यदि तोमार नाम-रूपी मन्त्र उच्चारण करे तवे से निज हतेइ सेइ समयेइ भय हते सर्वदा रहित हवे जाय।

(तोमाके जे स्मरण करे तार समस्त रकम भौतिक बन्धन छिन्न हये जाय।)

अंग्रेजी

Persons who are always kept cordoned by strong Iron Chains right from the ankle to the neck, whose thighs have been badly bruised by the frictions of the corners of big shackles, get themselves rid of them immediately and have no fear of confinement by incessantly (day and night) reciting your name, which takes the shape of a kind of incantation.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।
मंत्र –ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः क्षः श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।

प्रभाव–शत्रु अधीन होता है, विजय मिलती है, शस्त्रादि के घाव नहीं हो पाते।

अन्वय + अर्थ

आपाद कण्ठम्
पैरों से गले तक
उरु शृंखल वेष्टित अङ्गाः
बड़ी-बड़ी सुदृढ़ जंजीरों से जिनके अंग जकड़े हुए हैं (और)
गाढ़म्
अत्यन्त
बृहत् निगड कोटि निघृष्ट जङ्घाः
बड़ी-बड़ी बेड़ियों-जंजीरों की कोरों की रगड़ से जिनकी जंघाएँ छिल गयी हैं (ऐसे)
मनुजाः
मनुष्य
त्वत् नाममन्त्रम्
तुम्हारे नाम-रूपी मन्त्र का
अनिशम्
सतत्
स्मरन्तः
स्मरण करते हुए
सद्यः स्वयं विगत बन्ध भया
तत्काल आपोआप बन्धन के भय से सर्वथा मुक्त
भवन्ति
हो जाते हैं।

यन्त्र

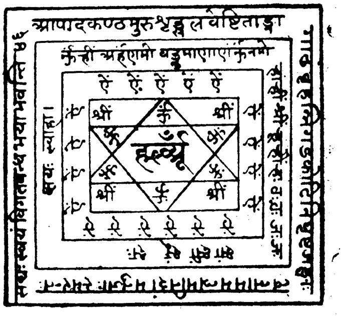

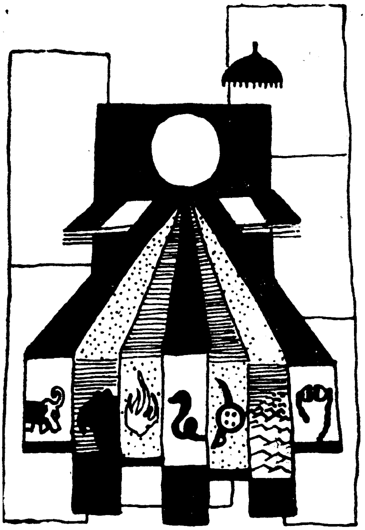

संस्कृत

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।।४७।।

हिन्दी

जो प्रज्ञा के धनी
भक्ति-अर्पित
इस थुति को
आदिनाथ की
प्रतिपल करते ।

उनके
भय-आतंक
स्वयं मिट जाते क्षण में ।

मदमाता गज
भीषण रण
विकराल सिंह
दावानल घातक
फन उठाये फणि
हहराता निधि
रोग उदर के
लोह श्रृंखलाएँ
विनष्ट होतीं
क्षण-भर में ।

(हिन्दी भाषा)

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल ।
फनपति रन परचंड नीर-निधि रोग महाबल ।
बंधन ये भय आठ डरप कर मानो नासै ।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकासै ।
इस अपार संसार में, सरन नाहिं प्रभु कोय ।
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय ।।

राजस्थानी

मतिवान जो करे पाठ नित,
इण इस्तुति रो जिनवर थारी ।
हाथी, दव, संग्राम, जलोदर,
नाहर रो भागे डर भारी ।

गुजराती

गांडा हाथी, सिंह दव अने सर्व युद्धे थयेली,
अब्धि केरी उदर-दरदे बंधने के बनेली;
एवी भीति झटपट बहु तेमनी तो हरे छे,
जेओ तारूं स्तवन प्रभुजी! प्रेमथी रे करे छे.

मराठी

हस्तींद्र-केसरि दवानल सर्प यांची ।
संग्राम-सागर-जलोधर-बंदनांची ।।
भीती मनांत कधिहि नसते तयाला ।
देवा तुझें स्तवन आवडते जयाला ।।

कन्नड़

यावनी स्तोत्रवनु पाडुव ।
नावनिदनच्यन माडुव ।
नाविदुषगोदगिद महोदर मायवागुवुदु ।।
तीविदुज्वल काडु किच्चिन
साबुतह मद्दाने सिगद
पावु वारिधियं क भयमु नाशमैदुवुदु ।।

हिन्दी

जो प्रज्ञ पुरुष आपके इस स्तोत्र का अध्ययन/वाचन करता है उसके मदोन्मत्त हाथी, आक्रमक सिंह, धधकती दावाग्नि, काले नाग, भीषण संग्राम, क्षुब्ध वारिधि, असाध्य जलोदर तथा कठोर कारावास से उत्पन्न भय आपोआप भयभीत होकर यथाशीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

बाङला

जे सुधि तोमार एइ स्तव अध्ययन करे, पड़े, तार मत्त हातीं, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, उदररोग ओ बन्धन हते जे आठ प्रकारेर भय सेइ भय शीघ्रक नष्ट हये जाय।

अंग्रेजी

The wise man who recites this Panegyric of you has found that this fear arising out of intoxicated elephant, lion, fire, serpent, battle, ocean, dropsy and bonds suddenly vanish away as if it (fear) were being frightened.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणं।

मंत्र –ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः यः स्वाहा।

प्रभाव–शत्रु परास्त होता है और शस्त्रादि के घाव शरीर में नहीं हो पाते।

अन्वय + अर्थ

यः
जो
मतिमान् तावकं इमं स्तवं अधीते
प्रज्ञावान भक्त आपके इस स्तोत्र का अध्ययन/पाठ करता है
तस्य
उसके
मत्तद्विपेन्द्र मृगराज दवानल अहि
मदोन्मत्त हाथी, सिंह, दावाग्नि, नाग
संग्राम वारिधि महोदर बन्धन उत्थम्
युद्ध, समुद्र, जलंधर, बन्धन द्वारा उत्पन्न
भयम्
भय
भिया इव
स्वयं भयभीत की भाँति
आशु
शीघ्र ही
नाशम्
नाश को
उपयाति
प्राप्त होता है।

यन्त्र

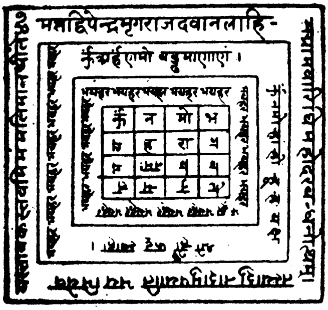

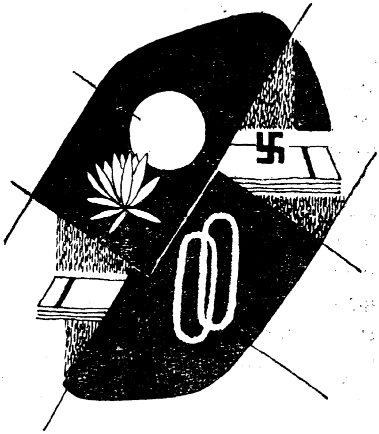

संस्कृत

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ।।४८।।

हिन्दी

मात्र
भक्ति के वशीभूत
यह स्तुति-माला
मैंने गूँथी
मनहर बहुवर्णी सुमनों से ।

भक्त इसे जो
सदा कण्ठ में
धारण करते
उन्हें मानतुंगी
मुक्तिश्री
धारण करती
सहज, अवश हो ।

(हिन्दी भाषा)

यह गुनमाल विसाल नाथ तुम गुनन सँवारी ।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति बिथारी ।।
जे नर पहिरे कंठ भावना मनमें भावैं ।
'मानतुंग' ते निजाधीन सिव-लछमी पावैं ।।
भाषा भक्तामर कियो 'हेमराज' हित हेत ।
जे नर पढ़ैं सुभावसों ते पावैं शिव-खेत ।।

राजस्थानी

थारा गुण रा भाँत-भाँत रा–
फूलाँ सूँ गूँथी या माला ।
धारण करे इणे जो कण्ठे–
वणे मुगत री लछमी वाला ।

गुजराती

जेने गूंथी गुणगणरूपे वर्णफूले रमूजी,
एवी माळा विविध विधिए आपनी हे प्रभुजी;
तेने जेओ निशदिन अहा! कंठमांहे धरे छे,
तेओ लक्ष्मी सुखथी जगमां मानतुंगी वरे छे.

मराठी

जी ओविली सहज या तव सद्‌गुणांत ।
म्यां घातली विविध वर्ण फुलें जयांत ।।
घालील जो स्तवन-माळ सदा गळ्यांत ।
तो मानतुंग मिळवील सुखें जगांत ।।

कन्नड़

विभुवे तव गुण कुसुममालेय ।
सोबगिनक्कर नूलिनिंद ।
विबुध कट्टिह मानतुंगनु भकुति भावदलि ।।
शुभव कोरुव भव्य जनरिद
विभवदिं कंठदोळु धरिसलु
सुभगदिं कैवल्यलक्ष्मी पतिगळागुवरु ।।

हिन्दी

हे जिनेश्वर ! इस जगत् में मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक अनन्त ज्ञानादि गुणों से गूँथी गयी मनोज्ञ वर्णों/मनोहारी रंगों के बहुविध पुष्पों वाली तुम्हारी इस स्तोत्र-रूपा माला को जो पुरुष सदैव कण्ठ में धारण करते हैं अथवा इसे कण्ठाग्र करते हैं उस प्रतिष्ठित पुरुष को अथवा इस स्तोत्र के शिल्पी मानतुंग को राज्य/स्वर्ग/मोक्ष/काव्य-रूपा लक्ष्मी विवश हो कर वरण करती है।

बाङला

हे जिनेन्द्र ! एइ संसारे भक्ति द्वारा आमि मनोज्ञ आकारादि वर्णेर यमक, श्लोष, अनुप्रास आदि विचित्र फुलेर माला गुम्फित करेछि सेइ माला के सर्वदा जे कण्ठे धारण करे सेइ मानतुंग वा आदरणीय पुरुष राज्य, स्वर्ग, मोक्ष ओ सत्काव्यरूप लक्ष्मी अनायासेइ लाभ करे।

अंग्रेजी

O Lord ! in the world the goddess of Prosperity (wealth, dignity, heavens and salvation) will be impelled to approach the person who always wears round his neck (keeps by his heart) this garland of the Eulogy composed by (Acharya) Mantung Preceptor in the elegant style of your innumerable virtues (infinite knowledge etc.) and interwoven in multifarious flowers of varied and attractive (alliterations, pun, etc.) hues.

मन्त्र

ऋद्धि –ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं।

मंत्र –महतिमहावीरवड्ढमाणबुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

प्रभाव–समस्त मनवांछित कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

अन्वय + अर्थ

जिनेन्द्र !
हे जिनेश्वर !
इह
इस जगत् में
मया भक्त्या गुणैः[1] निबद्धाम्
मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक अनन्त ज्ञानादि गुणों गूँथी गयी
रुचिर वर्ण[2] विचित्र पुष्पाम्
मनोज्ञ/मनोहारी वर्णों के बहुरंगी पुष्पों वाली
तव
तुम्हारी
स्तोत्र स्रजम्
स्तोत्र-रूपी इस माला को
यः
जो पुरुष
अजस्रं कण्ठगताम्
सदा कण्ठ में
धत्ते[3]
धारण करता है
तं मानतुङ्गं[4] लक्ष्मीः
उस प्रतिष्ठा-प्राप्त पुरुष को
अथवा इस स्तोत्र के रचयिता मानतुङ्ग को
राज्य/स्वर्ग/मक्ति/काव्य-रूपी लक्ष्मी
अवशा समुपैति
विवश हो कर प्राप्त कर लेती है।

---

(1) गुण, धागा; (2) वर्णमाला के वर्ण रंग; (3) धारण करता है, कण्ठस्थ करता है; (4) ऊँची प्रतिष्ठा/सम्मान, आचार्य मानतुङ्ग।

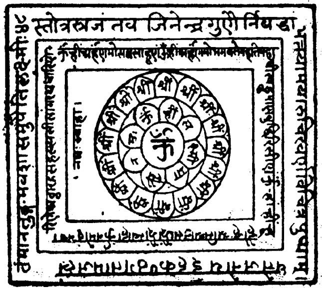

(पृष्ठ २३ का शेष)

वस्तुत: यहाँ सबकुछ वैज्ञानिक है।

सुनें,

जैसे रसायन में मिश्रण तैयार करने की नाना विधियाँ हैं और तैयार मिश्रण में विभिन्न मूलतत्त्व अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ खो देते हैं, ठीक ऐसा ही होता है ध्वनियों के संयोजन में। ध्वनि-मिश्रण साधना की ध्यानगर्भी प्रयोगशालाओं में बनते हैं, और फिर इन ध्वनि-मिश्रणों के साथ जुड़ती है आध्यात्मिक जीवन्तता; अत: यदि इनका विधिपूर्वक/युक्तियुक्त/सविवेक उपयोग किया जाए और कोई घटना घटित हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। ध्वनि-ऊर्जा का इस्तेमाल जितना अच्छा अहिंसक मन्त्रों द्वारा संभव है, उतना हिंसक लक्ष्य से प्रयुक्त मन्त्रों द्वारा नहीं। इस दृष्टि से 'भक्तामर स्तोत्र' के मान्त्रिक व्यक्तित्व को समझने/उसकी समीक्षा करने का प्रयास होना चाहिये। एकाग्रता/पदस्थ ध्यान ही मन्त्रशक्ति के मूलाधार हैं, जिन्हें जान लेने से काफी निर्भ्रम हुआ जा सकता है। इस दृष्टि से आचार्य श्री विमलसागरजी का योगदान उल्लेखनीय, स्पष्ट, और ऐतिहासिक है।

इसके बाद अन्वय+अर्थ है। इसे नेमीचन्द जैन ने तैयार किया है।

इससे भक्तामर स्तोत्र की भाषिक/भाविक बुनावट को तार-तार समझने में सुविधा हो सकती है।

इसके बाद है यन्त्र-चित्र।

सब जानते हैं कि रेखाओं में कितनी जान होती है। नदी के सीधे बहने और अकस्मात् मुड़ जाने में कितना अन्तर होता है/हो सकता है, इसे कोई इंजीनियर ही बता सकता है। जरा-सी बाँक किसी भी क्षेत्र में गज़ब ढा सकती है। आदमी सीधा बोले/और/टेढ़ा बोले तो उसमें कितना अंतर होता है, इसे प्राय: सभी जानते और भोगते हैं।

रेखाओं का अपना गणित है। शक्लों का अपना शास्त्र है।

ये चित्रकला से अलग हैं बिलकुल अलग तो नहीं, किन्तु ····।

रेखाओं के वे संयोजन जो मन्त्र-मैत्री में अस्तित्व ग्रहण करते हैं, यन्त्र कहलाते हैं। इन यन्त्रों की अपनी अस्मिता/सत्ता/निजता है।

ध्वनियों के साथ जुड़ कर रेखाओं में जो बल या ऊर्जा जन्म लेती है, उसे एक ध्याता ही जान सकता है। विषय सूक्ष्मतम अनुभूति का है और इसीलिए जब तक तन्निमित्त कोई भाव-भूमिका नहीं बनती कुछ भी जानना या घटित होना संभव नहीं है।

भक्ति और तर्क की सड़कें काफी अलग-अलग हैं। तर्क से प्राय: भक्ति मुरझा जाती है।

स्तुति, स्तोत्र, प्रार्थना, पूजा, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र इत्यादि सब भावना की भूमिका पर चलने वाले पथिक हैं, किन्तु पता लगायें/खोजें कि इनकी कोई गूढ़ वैज्ञानिकता है, जिसे अकारण नकारना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। —संपादक

भयहर / नमिऊण स्तोत्र

☐ विद्याधर जोहरापुरकर

आचार्य मानतुंग का 'भक्तामर स्तोत्र' जैन समाज के दोनों संप्रदायों में सुप्रचलित है। उनकी एक और रचना 'भयहर स्तोत्र' दिगम्बर समाज में लगभग अज्ञात है। इसे यहाँ अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका मूल पाठ शा. भीमसिंह माणक द्वारा सन् १८८८ में निर्णयसागर छापखाना, बम्बई से प्रकाशित 'पंचप्रतिक्रमणादिसूत्र' से लिया है।

'भयहर स्तोत्र' में प्राकृत भाषा के २४ पद्य हैं। इनमें २३ गाथाएँ हैं और अन्तिम पद्य दोहा छन्द में है, जिसमें अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव है। प्रथम शब्द के अनुसार इस रचना को 'नमिऊण स्तोत्र' भी कहते हैं।

पहली गाथा में स्तोत्र-रचना के संकल्प के बाद दो-दो गाथाओं में कोढ़, समुद्र, आग, सर्प, चोर, सिंह, हाथी और युद्ध इन आठ भयों से मुक्त होने के लिए पार्श्वप्रभु के नाम-स्मरण का आश्रय लिया गया है। आठों भयों का एकत्र उल्लेख १८ वीं गाथा में है। १९ वीं गाथा में स्तोत्र-पठन के मंगल फल का निर्देश है। २० वीं गाथा में यक्षादि अन्य बाधाओं के लिए स्तोत्र की उपयोगिता बतायी है। २१ वीं गाथा में कवि का नाम उल्लिखित है। २२ वीं गाथा में पार्श्वप्रभु पर कमठासुर के उपसर्ग का उल्लेख है। २३ वीं गाथा में इस स्तोत्र में अठारह अक्षरों का मन्त्र गुम्फित होने का निर्देश है। अन्तिम पद्य में पार्श्वप्रभु के स्मरण से एक सौ आठ रोगों के भय से मुक्त होने का कथन है।

'भक्तामर स्तोत्र' के श्लोक ३८ से ४६ तक हाथी, सिंह, आग, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर, और बन्धन इन आठ भयों का वर्णन है तथा श्लोक ४७ में उन सबका एकत्र उल्लेख है। 'भयहर स्तोत्र' की तुलना में 'भक्तामर स्तोत्र' का वर्णन अधिक अलंकृत है। दोनों में शब्द-साम्य स्पष्ट है। 'भयहर' के **खरपवणुद्धुअवणदव** की तुलना 'भक्तामर' के **कल्पान्तकाल पवनोद्धतवह्नि** से, 'भयहर' के **अरुणनयण नवजलयसच्छय** सर्प की तुलना 'भक्तामर' के **रक्तेक्षण कोकिलकंठनील** सर्प से, 'भयहर' के **विअलिअगइंदकुंभत्थल** सिंह की तुलना 'भक्तामर' के **भिन्नेभकुंभ** सिंह से तथा 'भयहर' के **कुंतविणिभिन्नकरि** युद्ध की तुलना 'भक्तामर' के **कुंताग्रभिन्नगज** युद्ध से की जा सकती है।

संसार के त्रिविध ताप के प्रति तीन दृष्टिकोण अपनाये जाते हैं। साधारणत: अन्न, वस्त्र, औषधि आदि उपायों से कष्ट दूर किये जाते हैं, या समाज की व्यवस्था में सुधार द्वारा कष्टों की तीव्रता कम करने का प्रयास किया जाता है। जब ये उपाय विफल हों तब दो विकल्प शेष रहते हैं : एक यह कि भवितव्य की

अनिवार्यता समझ कर शान्त भाव से कष्ट की उपेक्षा करें और अध्यात्म-चिन्तन का आश्रय लें। दूसरा यह कि अपने आराध्य देव या देवी के चिन्तन से भय-मुक्त होने का प्रयास करें। जैन परम्परा में दोनों विकल्पों का प्रयोग देखा जाता है। उपासना द्वारा भय-मुक्ति के सन्दर्भ में भद्रबाहु के 'उपसर्गहरस्तोत्र' मानतुंग के दो स्तोत्र, धनंजय के 'विषापहारस्तोत्र', वादिराज के 'एकीभावस्तोत्र', तथा अभयदेव के 'जयतिहुअणस्तोत्र' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

मूल पाठ

नमिऊण पणयसुरगणचूडामणि किरणरंजिअं मुणिणो।
चलणजुअलं महाभयपणासणं संथवं वुच्छं ॥१॥

सडियकरचरणनहमुहनिबुड्डनासा विवन्नलायन्ना।
कुट्ठमहारोगानलफुलिंगनिद्दड्ढसव्वंगा ॥२॥

ते तुह चलणाराहण सलिलंजलिसेयवड्ढिउच्छाहा।
वणदवदड्ढा गिरिपायवव्व पत्ता पुणो लच्छि ॥३॥

दुव्वायखुभियजलनिहि उब्भडकल्लोल भीसणारखे।
संभंतभयविसंठुलनिज्जामयमुक्कवावारे ॥४॥

अविदलिअजाणवत्ता खणेण पावंति इच्छियं कूलं।
पासजिणचलणजुअलं निच्चं चिअ जे नमंति नरा ॥५॥

खरपवणुद्धुअवणदवजालावलिमिलियसयलदुमगहणे।
उज्झंतमुद्धमयवहुभीसणरवभीसणम्मि वणे ॥६॥

जगगुरुणो कमजुअलं निव्वावियसयलतिहुअणाभोअं।
जे संभरंति मणुआ न कुणइ जलणो भयं तेसिं ॥७॥

विलसंतभोगभीसणफुरिआरुणनयणतरलजीहालं।
उग्गभुअंगं नवजलयसच्छयं भीसणायारं ॥८॥

मन्नंति कीडसरिसं दूरपरिच्छूढविसमविसवेगा।
तुह नामक्खरफुडसिद्धमंतगुरुआ नरा लोए ॥९॥

अडवीसु भिल्लतक्करपुलिंदसद्दूलसद्दभीमासु।
भयविहुरवुन्नकायरउल्लूरियपहियसत्थासु ॥१०॥

अविलुत्तविहवसारा तुह नाह पणाममत्तवावारा।
ववगयविग्घा सिग्घं पत्ता हियइच्छियं ठाणं ॥११॥

पज्जलिआणक्तनयणं दूरवियारियमुहं महाकाय ।
नहकुलिसघायविअलिअगइंदकुंभत्थलाभोअं ॥१२॥

पणयससंभमपत्थिवनहमणिमाणिक्कपडिअपडिमस्स ।
तुह वयणपहरणधरा सीहं कुद्धं पि न गणंति ॥१३॥

ससिधवलदंतमुसलं दीहकरुल्लाववड्ढिउच्छाहं ।
महुपिंगनयणजुअलं ससलिलनवजलहरारावं ॥१४॥

भीमं महागइंदं अच्चासन्नं पि ते नवि गणंति ।
जे तुम्ह चलणजुअलं मुणिवइ तुंगं समल्लीणा ॥१५॥

समरम्मि तिक्खखग्गाभिघायपव्विद्ध उद्धुयकबंधे ।
कुंतविनिभिन्नकरिकलहमुक्कसिक्कारपउरम्मि ॥१६॥

निज्जियदप्पुद्धररिउनरिंदनिवहा भडा जसं धवलं ॥
पावंति पावपसमिण पासजिण तुह प्पभावेण ॥१७॥

रोगजलजलणविसहर चोरारिमइंदगयरणभयाइं ।
पासजिणनामसंकित्तजेण पसमंति सव्वाइं ॥१८॥

एवं महाभयहरं पासजिणिंदस्स संथवमुआरं ।
भवियजणाणंदयरं कल्लाणपरंपरनिहाणं ॥१९॥

शयभयजक्खरक्खस कुसुमिणदुस्सउणरिक्खपीडासु ।
संझासु दोसु पंथे उवसग्गे तह य रयणीसु ॥२०॥

जो पढइ जो अ निसुणइ ताणं कइणो य माणतुंगस्स ।
पासो पावं पसमेउ सयलभुवणच्चिअच्चलणो ॥२१॥

उवसग्गंते कमठासुरम्मि झाणाउ जोन संचलिओ ।
सुरनरकिन्नरजुवईहि संथुओ जयउ पासजिणो ॥२२॥

एअस्स मज्झयारे अट्ठारसअक्खरेहि जो संतो ।
जो जाणइ सो झायइ परमपयत्थं फुडं पासं ॥२३॥

पासह समरण जो कुणइ संतुट्ठे हियएण ।
अट्ठुत्तरसयवाहिभय नासइ तस्स दूरेण ॥२४॥

हिन्दी-अनुवाद

प्रणत देवगण के चूडामणिकिरणों से रंजित मुनि के।
चरणयुगल को वन्दन कर भयनाशक संस्तव कहता हूँ ।।१।।

गले हाथ पैरों के नख मुख गली नाक लावण्य गया।
कोढ महारोग आग की चिनगारी से सब अंग जला ।।२।।

वे तव पद सेवा जल अंजलि सेचन से उमंग बढ़ कर।
दावानल से झुलसे गिरि के तरु सम फिर पाये शोभा ।।३।।

आँधी से विक्षुब्ध सिन्धु ऊँची लहरें भीषण गर्जन।
संभ्रम भय से अस्तव्यस्त हो कर्णधार ने छोड़े काम ।।४।।

अक्षत जलयानों से पहुँचे पलभर में इच्छित तट पर।
पार्श्वप्रभु के चरणयुगल को सदा नमन करते जो लोग ।।५।।

तेज हवा से दावानल की लपटें ग्रासें वृक्षों को।
जलती मुग्ध हरिणियाँ भीषण नाद करें भीषण वन में ।।६।।

जगगुरु के जो चरणयुगल देते हैं शान्ति जगत्रय को।
उनका स्मरण करें जो मानव उन्हें अग्निभय हो न कभी ।।७।।

चमके भीषण फणा लाल आँखें फैलीं चंचल जिह्वा।
उग्र सर्प की नये मेघ-सी कान्ति देख आकृति भीषण ।।८।।

कीड़े जैसा समझें विष के विषम वेग को छोड़ें दूर।
तव नामाक्षर सिद्धमंत्र से बलशाली मानव जग में ।।९।।

भील चोर वनचर शेरों के गर्जन से भीषण वन में।
भय से घबराये जो कातर पथिकों के समूह बिखरे ।।१०।।

लुप्त न हुआ विभव उनका जो नाथ तुम्हें वन्दन करते।
विघ्न दूर हो कर जलदी पहुँचे मनचाहे स्थानों को ।।११।।

ज्वलित अग्नि-सी आँखें मुख विस्फारित हो शरीर भारी।
वज्राघात नखों के कर जो हाथी के मस्तक फाड़े ।।१२।।

वन्दन करते भूपति तव नखमणिमाणिक में प्रतिबिम्बित।
तव वचनों के आयुध हों वे क्रुद्ध सिंह को नहीं गिनें ।।१३।।

धवल चन्द्र सम दाँत मुसल से लम्बी सूँड उमंग बढ़ी।
मधु-सी पीली आँखें हों जलभरे मेघ-सी ध्वनि जिसकी ।।१४।।

बड़ा भयंकर हाथी हो अति निकट उसे वे नहीं गिनें।
जो तव चरणयुगल का मुनिपति ऊँचा आश्रय पाते हैं ।।१५।।

रण में तीखी तलवारों से आहत हो कबंध डोले।
भालों की चोटों से आहत हाथी जिसमें चिंघाड़े ।।१६।।

जीतें अभिमानी रिपु राजाओं को वीर धवल यश को।
प्राप्त करेंगे पाप शान्त कर पार्श्वप्रभु तव महिमा से ।।१७।।

रोग जलधि का अग्नि सर्प का दस्यु सिंह गज रण का भय।
पार्श्वजिनेन्द्र नामकीर्तन से सभी शान्त हो जाते हैं ।।१८।।

पार्श्वजिनेश्वर का उदार यह संस्तव भयहारक होगा।
भव्यजनों को आनंदित कर मंगल परंपरा देगा ।।१९।।

भूपति यक्षों से राक्षस से स्वप्न शकुन ग्रह से पीड़ा।
दोनों संध्याओं में पथ में अथवा रात उपद्रव हो ।।२०।।

जो यह संस्तव पढ़े सुने जो उनके मानतुंग कवि के।
पार्श्व पाप का शमन करें सब विश्व करे जिनकी पूजा ।।२१।।

कमठासुर के उपसर्गों से चलित ध्यान से नहीं हुए।
सुरनर किन्नर युवतिस्तुत उन पार्श्वजिनेश्वर की जय हो ।।२२।।

इस संस्तव में मंत्र अठारह अक्षर का जो गुंफित है।
जाने ध्यान करे वह परमपदस्थित पार्श्वजिनेश्वर का ।।२३।।

स्मरण करे जो पार्श्व का मन में रख संतोष।
अष्टोत्तर शत रोग भय होवे उसका दूर ।।२४।।

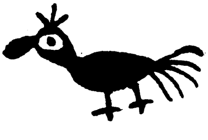

अगरचन्द नाहटा

'भक्तामर स्तोत्र : पद्यानुवाद-सर्वेक्षण

'भक्तामर' स्तोत्र के सर्वाधिक पद्यानुवाद हिन्दी भाषा में हुए हैं। वैसे मराठी, गुजराती, उर्दू, कन्नड़, अंग्रेजी के भी प्राप्त हैं। श्वेताम्बर पद्यानुवादों में हिन्दी पर राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव मिलता है। मराठी के पाँचों पद्यानुवाद दिगम्बर कवियों के हैं। गुजराती में ३ पद्यानुवाद उपलब्ध हैं, जिनमें से १ दिगम्बर और २ श्वेताम्बर कवियों द्वारा रचित हैं। हिन्दी पद्यानुवादों में दिगम्बर कवियों की अधिकता है। श्वेता. हेमकीर्ति-रचित पद्यानुवाद की एक अधूरी प्रति हमारे संग्रहालय में है, पूरी प्रति की खोज जारी है।

जैन स्तोत्र साहित्य बहुत विशाल और वैविध्य-पूर्ण है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, कन्नड़, बंगला, सिन्धी, तमिल आदि अनेक भाषाओं में तीर्थंकरों के छोटे-छोटे बहुविध स्तोत्र-काव्य, हज़ारों की संख्या में उपलब्ध हैं। श्वेताम्बर कवियों ने बहुत अधिक स्तोत्र काव्य रचे हैं। उनके संग्रह के रूप में सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं, हज़ारों छप चुके हैं और कई गुना अधिक अभी अप्रकाशित अवस्था में पड़े हैं। केवल प्राकृत-संस्कृत के श्वेताम्बर जैन स्तोत्रों की एक अकारादिक्रम-सूची स्वर्गीय विद्वान् मुनिश्री चतुरविजयजी ने करीब ४० वर्ष पहले तैयार की थी, जो साराभाई नवाब अहमदाबाद के प्रकाशित 'जैन स्तोत्र समुच्चय' के प्रथम भाग के परिशिष्ट में प्रकाशित हुई थी। इस सूची में क़रीब एक हज़ार प्राकृत-संस्कृत श्वेताम्बर स्तोत्रों की नामावली और पद्य-संख्या के साथ अकारादिक्रम से प्रकाशित हुई थी। यह सूची तो केवल प्रकाशित श्वेताम्बर स्तोत्र-साहित्य की थी, अप्रकाशित तो इतने अधिक हैं कि उनकी सूची बनानी भी संभव नहीं।

१४ वीं शताब्दी के मुहम्मद तुगलक प्रतिबोधक शासन-प्रभावक श्री जिनप्रभसूरि के लिए तो यह कहा जाता है कि वे प्रतिदिन नया स्तोत्र रच कर ही आहार-जल ग्रहण करते थे। उनके रचित ७०० स्तोत्रों का उल्लेख तो उनके एक स्तोत्र की टीका में पाया जाता है, जिनमें से क़रीब १०० स्तोत्र ही अभी तक प्राप्त हो सके हैं। जो बहुत महत्त्व के हैं और प्रकाशित भी हो चुके हैं। ऐसे और भी कई आचार्य एवं कवि हो गये हैं, जिनमें से एक-एक कवि ने सैकड़ों स्तोत्र, स्तवन, गीत, पद आदि बनाये हैं। २४ तीर्थंकरों की स्तुति-रूप में हज़ारों पद या स्तवन बनाये गये हैं, जिनमें से ११५१ स्तवनों का एक बड़ा संग्रह पहले साराभाई

नवाब ने अहमदाबाद से प्रकाशित किया था। अभी-अभी पं. अभयसागरजी गणि ने ६० चौबीसियों अर्थात् क़रीब डेढ़ हज़ार स्तवनों का संग्रह २ भागों में प्रकाशित करवाया है । समयसुन्दर-कृत-कुसुमांजलि जिनहर्ष-ग्रंथावली आदि ग्रंथों में भी सैकड़ों स्तवन प्रकाशित हो चुके हैं । इन सब प्रकाशित संग्रह-ग्रन्थों से जैन स्तोत्र एवं स्तवन-साहित्य की विशालता, विविधता एवं विशिष्टता का परिचय भलीभाँति मिल जाता है। इसी तरह दिगम्बर स्तोत्र एवं पद-साहित्य के भी कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

जैन स्तोत्र-साहित्य में सभी सम्प्रदायों को मान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध, आचार्य मानतुंग-रचित 'भक्तामर स्तोत्र' उल्लेखनीय है। इस स्तोत्र पर जितनी टीकाएँ लिखी गयी हैं, उतनी और किसी स्तोत्र पर नहीं लिखी गयीं। प्रत्येक श्लोक के अलग-अलग मन्त्र, यन्त्र और चित्र बनाये गये और स्तोत्र के माहात्म्य की अनेक कथाएँ रची गयीं। अर्थात् इस स्तोत्र से संबन्धित साहित्य बहुत विशाल है। 'भक्तामर' के समग्र पाद-पूर्ति, चतुर्थ पाद-पूर्ति आदि के रूप में नाना पूर्ति-काव्यों रचना हुई हैं। अन्य किसी स्तोत्र पर इतने पूर्ति-काव्य नहीं रचे गये। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ४४ श्लोकी स्तोत्र प्रसिद्ध हैं।

४८ श्लोकों वाली कई सचिव प्रतियाँ प्राप्त हैं। चित्रकला की दृष्टि से भक्तामर की यन्त्र-युक्त सचित्र प्रतियों का विशेष महत्त्व है। 'भक्तामर-रहस्य' में एक सचित्र प्रति के ४८ चित्र, यत्र-मन्त्र आदि छपे हैं। इसी तरह अन्य प्रतियों के रंगीन चित्र भी ज्यों-के-त्यों छपाने जरूरी हैं।

ऋषभ स्तुतिरूप 'भक्तामर' आद्य पद वाला स्तोत्र संस्कृत में है, अतः साधारण जनता उसे ठीक से समझ नहीं पाती। इस समस्या को हल करने के लिए अनेक कवियों ने लोक-प्रचलित हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में इसका पद्यानुवाद किये। अंग्रेजी, उर्दू, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी इस स्तोत्र के पद्यानुवाद हुए हैं । आज भी वह परम्परा चालू है । 'भक्तामर' का सर्वप्रथम पद्यानुवाद दिगम्बर कवि हेमराजजी ने १७ वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में किया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदासजी ने 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' का पद्यानुवाद किया। लगता है इससे प्रेरणा लेकर उसी के आस-पास कवि हेमराजजी ने 'भक्तामर' का हिन्दी-पद्यानुवाद किया। यह पद्यानुवाद खूब लोकप्रिय हुआ, इसीलिए इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिलती हैं। और अनेक स्थानों से इसके मुद्रित संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। इसके बाद १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर श्वेताम्बर कवि आनन्दवर्द्धन, ज्ञानमेरू, देवविजय, हेमकीर्ति और दिगम्बर कवि विनोदीलाल, गंगाराम, धनदास आदि ने हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में १८ वीं

शताब्दी में पद्यानुवाद किये। उन्नीसवीं में भी यह क्रम जारी रहा। बीसवीं में तो सर्वाधिक हुए।

खुरई के पण्डित कमलकुमार जैन शास्त्री जब 'भक्तामर रहस्य' ग्रंथ का का सम्पादन कर रहे थे, तब उनसे विदित हुआ कि उन्होंने 'भक्तामर' के बहुत से पद्यानुवाद भी संगृहीत किये हैं। मैंने उनसे सूची मंगवायी और मेरी जानकारी में जो और बहुत से पद्यानुवाद थे उनकी भी जानकारी उन्हें दी। पत्राचार से यह निश्चित हुआ कि हम दोनों सम्मिलित रूप से भक्तामर के समस्त पद्यानुवादों का एक संग्रह ग्रन्थ तैयार कर प्रकाशित करवायें। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि वह संग्रह-ग्रन्थ अब लगभग तैयार-सा है। संकलित पद्यानुवादों की संख्या ७० तक पहुँच चुकी है। इनमें सब से अधिक पद्यानुवाद हिन्दी-भाषा में हैं। मराठी, गुजराती, उर्दू, कन्नड़ और अंग्रेजी के पद्यानुवाद भी प्राप्त हुए हैं। श्वेताम्बर पद्यानुवादों की हिन्दी पर राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव परिलक्षित है। मराठी के पाँचों पद्यानुवाद दिगम्बर कवियों के हैं। हिन्दी की तरह इस भाषा में पद्यानुवाद की परम्परा भी १७-१८ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो चुकी थी। गुजराती के ३ पद्यानुवाद इन्हीं शताब्दियों के है, जिनमें एक दिगम्बर और दो श्वेताम्बर कवियों के हैं।

हिन्दी में वैसे दोनों सम्प्रदायों और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मूर्ति-पूजक के साथ-साथ स्थानकवासी और तेरापंथी इन दोनों उप सम्प्रदायों के कवियों ने भी पद्यानुवाद किये हैं। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के पद्यानुवाद आधुनिक हैं। कन्नड़ का पद्यानुवाद पण्डित भुजबली शास्त्री ने भेजा है। यह किसका, और कब किया हुआ है, ज्ञात नहीं हो सका है। हिन्दी-पद्यानुवादों में दिगम्बर कवियों की अधिकता रही है। श्वेताम्बर हेमकीर्ति-रचित पद्यानुवाद की एक अधूरी प्रति हमारे संग्रहालय में है, जिसकी पूरी प्रति की खोज जारी है।

प्राप्त पद्यानुवाद विविध छन्दों में है। कवियों की भाषा-शैली भी अपनी-अपनी है। जैनेतर कवि गिरिधर शर्मा आदि के पद्यानुवाद विशेष रूप में उल्लेखनीय है। पद्यानुवाद वाले संग्रह-ग्रंथ में हम कवियों के संक्षिप्त परिचय और उनका समय भी देना चाहते हैं; किन्तु कुछ कवियों को छोड़ अन्य के विवरण ही नहीं मिल पा रहे हैं।

अब तक प्राप्त पद्यानुवादों की सूची इस प्रकार है- १. अज्ञेय, सत्यव्रत शर्मा; २. कल्लप्पा अनन्त (मराठी); ३. काका हजारीमल; ४. काला, माणकचन्द; ५. काला माणिकचंद; ६. कौमुदी, प्रेमलता; ७. गंगवाल, अछयकुमार; ८. गंगारामजी; ९. गोविन्दराजजी; १०. चंचल, अमृतलाल; ११. चौधरी, शीलचन्द; १२. चौपड़ा, जीमल; १३. ज. ने. छीरसागरजी (मराठी); १४. जारोली, विपिन (राजस्थानी);

(शेष पृष्ठ १३३ पर)

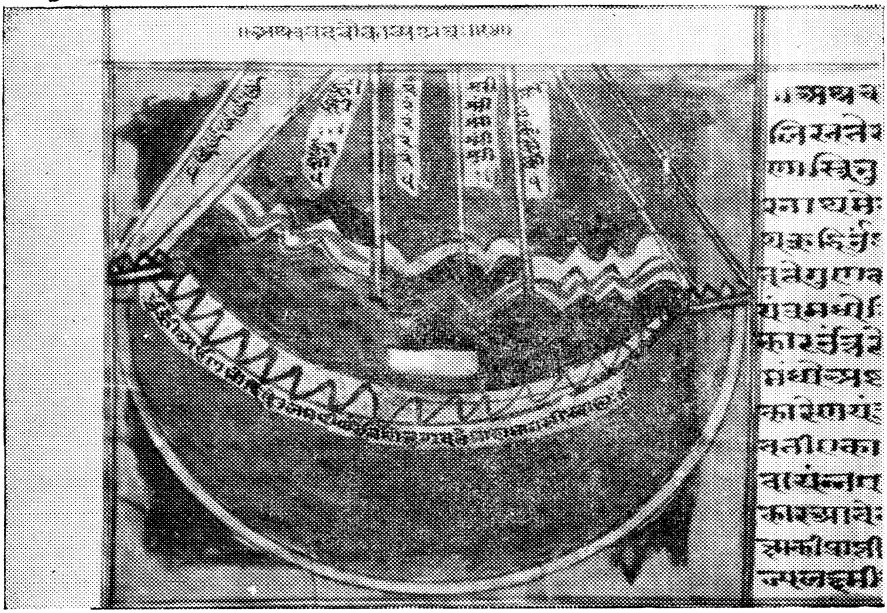

(श्लोक क्र. १४; देखें पृ. ५०)

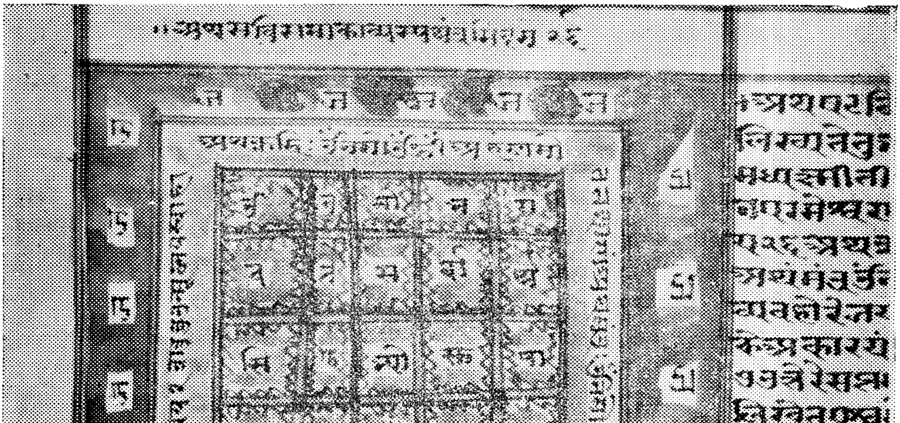

(श्लोक क्र. २६; देखें पृ. ७४)

सौजन्य : एल. डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद; स्रोत : पू. पुण्यविजयजी-संकलन, के. क्र. 130; छाया : रमेश डी. मालवणिया, अहमदाबाद।

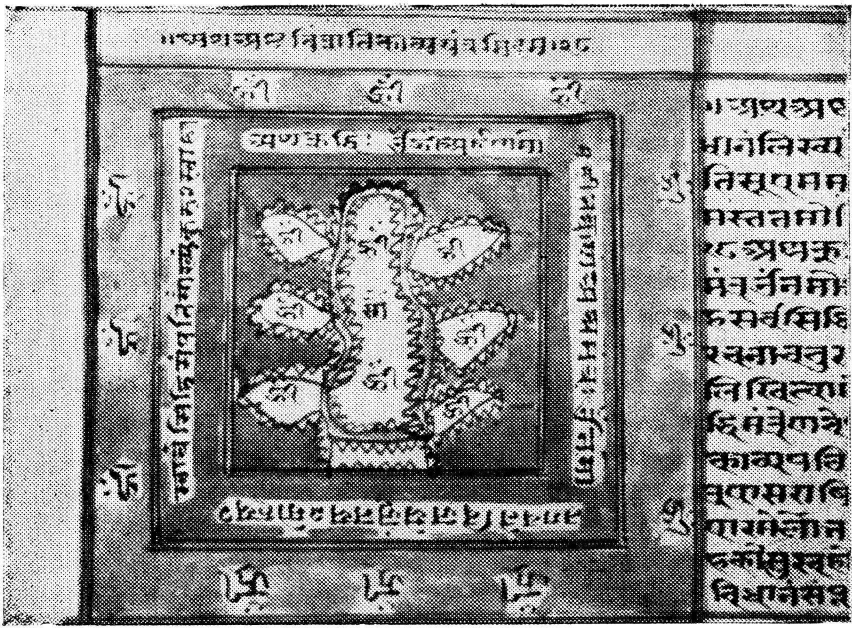

(श्लोक क्र. २८; देखें पृ. ७८)

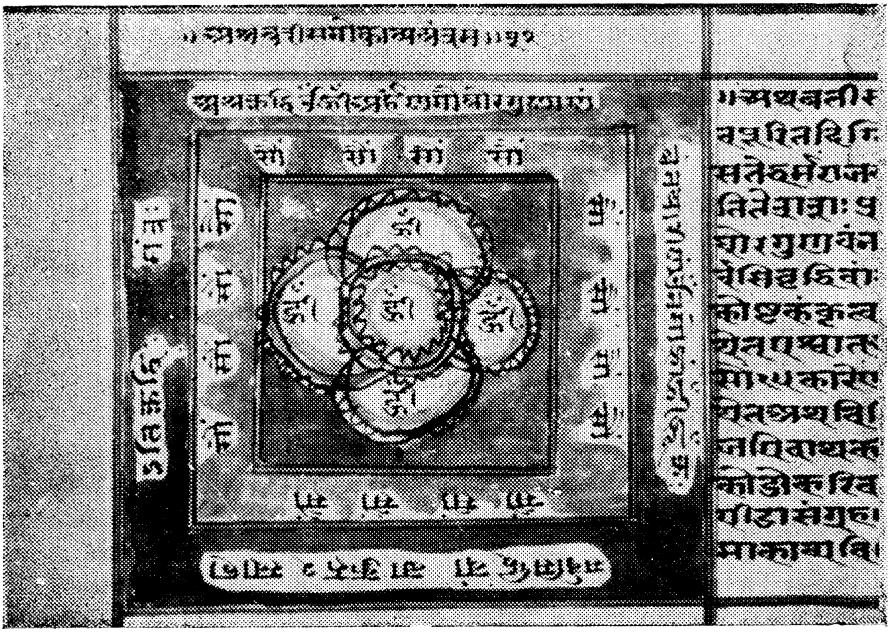

(श्लोक क्र. ३२; देखें पृ. ८६)

राजस्थान में 'भक्तामर स्तोत्र' की लोकप्रियता

राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में जितनी अधिक संख्या में भक्तामर स्तोत्र की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं, उतनी किसी दूसरे ग्रन्थ की पाना कठिन है। इसके अतिरिक्त इस स्तोत्र पर संस्कृत टीकाएँ, गद्य एवं पद्य टीकाएँ भी राजस्थान के ग्रन्थागारों में सर्वाधिक मिलती हैं।

—डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

भक्तामर स्तोत्र समस्त जैन समाज का राष्ट्रीय स्तोत्र है, जिसका बालक, युवा एवं वृद्ध सभी जन प्रतिदिन पाठ करते हैं। लाखों जैनों को वह कण्ठस्थ है। संस्कृत का एक अक्षर भी नहीं जानने वाले उसको प्रतिदिन मौखिक रूप से बोलते हैं और जब वे बोलते हैं तो ऐसा लगता है जैसे वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। 'गढ़ों में चितौड़गढ़ और सब गढ़ैय्या' तथा 'तालों में भोपाल ताल और सब तलैय्या' उसी प्रकार 'स्तोत्रों में भक्तामर स्तोत्र और सब स्तुतियाँ' वाली कहावत यहाँ भी लागू हो सकती है।

वैसे तो भक्तामर स्तोत्र की सभी प्रदेशों में लोकप्रियता रही, लेकिन राजस्थान में इसको सर्वाधिक आदर मिला और वह सारे राजस्थानवासियों का, फिर चाहे वह दिगम्बर हो या श्वेताम्बर, सभी के लिए वह समान रूप से श्रद्धास्पद स्तोत्र रहा है। वह एक ऐसा स्तोत्र है जिसका पाठ किये बिना हज़ारों-लाखों भाई-बहिन पानी नहीं पीते, भोजन की बात तो दूर रही। भक्तामर स्तोत्र की लोकप्रियता इससे भी आँकी जा सकती है कि राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में जितनी अधिक संख्या में उसकी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं, उतनी किसी दूसरे ग्रन्थ की पाना कठिन है। इसके अतिरिक्त इस स्तोत्र पर संस्कृत टीकाएँ, टब्बा टीकाएँ, गद्य एवं पद्य टीकाएँ भी राजस्थान के ग्रन्थागारों में सर्वाधिक मिलती हैं। सब से अधिक लोकप्रियता तो इस बात से सिद्ध होती है कि इस स्तोत्र की चित्रित प्रतियाँ भी राजस्थान के भण्डारों में ही उपलब्ध हुई हैं, अन्यत्र नहीं; इसलिए राजस्थान में भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय स्तोत्र रहा, यह कहने में किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं है।

राजस्थान के ग्रन्थागारों में भक्तामर स्तोत्र की कितनी पाण्डुलिपियाँ संग्रहीत हैं इसकी निश्चित संख्या बतलाना कठिन है; लेकिन इतना अवश्य है कि इस स्तोत्र की पाण्डुलिपियाँ प्राय: समस्त शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत हैं और वह भी हजारों की संख्या में। भक्तामर स्तोत्र की एकल पाण्डुलिपियाँ तो मिलती ही हैं, लेकिन गुटकों में भी उसे प्रचुर संख्या में संग्रहीत देखा जा सकता है। भक्तामर पर मंत्र लिखे गये हैं। पूजा के लिए मंडल बनाये गये हैं। एक-एक पद्य का एक-एक मंडल। उसका मंत्र एवं उसके जपने की विधि आदि का भी खूब प्रचार रहा।

राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में भक्तामर स्तोत्र की प्राचीनतम पाण्डुलिपि १५ वीं शताब्दी तक की मिलती है। प्राचीन पाण्डुलिपि सुरक्षित नहीं रखने का एक कारण यह भी है कि यह स्तोत्र एक ऐसा स्तोत्र है जिसका सर्वाधिक उपयोग होता है इसलिए इससे अधिक प्राचीन पाण्डुलिपि सुरक्षित रखना कठिन हो गया। ताड़पत्रीय प्रतियों में संवत् का उल्लेख नहीं होने से नहीं कह सकते कि ये कागज की पाण्डुलिपियों से प्राचीन हैं। फिर भी इन पाण्डुलिपियों के आधार पर गत ५०० वर्षों का भक्तामर स्तोत्र के पठन-पाठन एवं लोकप्रियता का इतिहास अवश्य लिखा जा सकता है।

एक बात यहाँ मैं ओर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भक्तामर स्तोत्र के ५२ पद्यों के होने की बड़ी चर्चा रहती है तथा राजस्थान के दो-तीन शास्त्र-भण्डारों में ५२ पद्य भी मिले हैं, लेकिन एक तो सभी पाण्डुलिपियों में समान पाठ वाले पद्य नहीं हैं तथा चार पद्यों में वह लालित्य एवं भाषा-माधुर्य नहीं है जो शेष ४८ पद्यों में मिलता है इसलिए भक्तामर स्तोत्र के ४८ ही पद्य हैं। यद्यपि श्वेताम्बर समाज इसके ४४ पद्य ही मानता है, लेकिन सही संख्या ४८ ही है, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

संस्कृत टीकाएँ

दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही आचार्यों एवं कवियों ने भक्तामर स्तोत्र पर टीकाएँ लिख कर उसके अर्थ को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास किया है। स्तोत्र पर सब से प्राचीन टीकाएँ कौन सी हैं, इस सम्बन्ध में तो निश्चित नाम नहीं लिया जा सकता; लेकिन यहाँ के भण्डारों में ब्रह्म रायमल्ल (दि.), समयसुन्दर (श्वे.), हर्षकीर्ति सूरी (श्वे.), केशवसेन (दि.), कनककुशल (श्वे.), लब्धिवर्धय (श्वे.), गुणाकरसूरी (श्वे.) आदि विद्वानों की टीकाएँ अच्छी संख्या में मिलती हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय में ब्रह्म रायमल्ल की संस्कृत टीकाएँ अत्यधिक लोकप्रिय रही, जिस पर आगे चलकर हिन्दी में भी टीकाएँ लिखी गयीं। ये टीकाएँ भक्तामर स्तोत्र के महत्त्व को प्रकाशित करने वाली हैं तथा उसके अर्थ को पाठकों के सामने स्पष्ट रखने वाली हैं।

हिन्दी टीकाएँ एवं पद्यानुवाद आदि

हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में भी भक्तामर स्तोत्र पर कितनी ही टीकाएँ एवं पद्यानुवाद लिखे गये। राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों में इस प्रकार की सैकड़ों पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं, राजस्थानी अथवा हिन्दी में टीकाएँ लिखने वाले अधिकांश दिगम्बर विद्वान् रहे हैं। इनमें सर्वप्रथम हिन्दी-पद्यानुवाद पांडे हेमराज का मिलता है; जो समाज में पर्याप्त लोकप्रिय है। दि. जैन मन्दिर कामा के शास्त्र-भण्डार में स्वयं हेमराज पांड्या की पाण्डुलिपि संग्रहीत है जिसका लेखन-काल सं. १७२७ है। इस पाण्डुलिपि में २९ पत्र हैं (राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची, भाग २, पृ. ७४७)। पाण्डे हेमराज की अब तक १२ से भी अधिक रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं (राजस्थान जैन शास्त्र भण्डारों को ग्रंथ सूची, भाग ३, पृ. २१)।

राजस्थानी गद्य-टीकाकारों में अखयराज श्रीमाल का नाम भी उल्लेखनीय है। ये दिगम्बर विद्वान् थे और इन्होंने गुणस्थान चर्चा एवं विषापहार, एकीभाव, कल्याण मन्दिर आदि पर भी राजस्थानी में टीकाएँ लिखी हैं। नथमल कवि ने लालचन्द की सहायता से संवत् १८२९ में भक्तामर स्तोत्र को हिन्दी-पद्य में निबद्ध किया साथ में ऋद्धि मंत्र एवं कथाएँ भी निबद्ध कीं। नथमल लालचन्द की इस रचना को भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। संवत् १८७० में जयपुर में महापंडित टोडरमलजी का पूरा जोर था तथा पंडित जयचन्दजी छाबड़ा भाषा ग्रन्थों का गद्यानुवाद कर रहे थे। पंडित जयचन्द छाबड़ा ने भक्तामर स्तोत्र के प्रभाव को स्वीकृत किया और उस पर ढूंढारी भाषा में अर्थ लिखकर उसके महत्त्व को समझाया। गंगाराम पांड्या ने भी भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद लिखा। इसके अन्तिम पद्य का रसास्वादन कीजिये–

हे जिन तुम्हारे गुण कथन पहुप माल
  भक्ति प्रतीति भावधरि कै बनाई है
प्रेम की सुरुचि नाना वरन सुमन धरि
  गुण गण उत्तम अनेक सुखदाई है
जेई भव्य जन कंठ धरि है उछाह करि
  पुलकित अंग ह्वै कै आनन्द सो गाई है
तेई मानतुंग करि मुकति वधू सो होत
  गगन सरित राम सोभा सुख धाई है।

पूजा-साहित्य

भट्टारक-युग में जब पूजा-प्रतिष्ठाओं का जोर बढ़ा तथा भक्तामर स्तोत्र की पूजा की माँग होने लगी, तो समय-समय पर भट्टारकों एवं उनके शिष्यों ने भक्तामर स्तोत्र की पूजा निबद्ध करके उसे और भी अधिक लोकप्रिय बनाया। इनमें भट्टारक ज्ञानभूषण का नाम सर्वोपरि लिया जा सकता है। इन्होंने भक्तामर स्तोत्र पूजा के अतिरिक्त ओर भी आठ पूजाएँ निबद्ध कीं (राजस्थान का जैन साहित्य पृ. ११०)। ज्ञानभूषण के अतिरिक्त श्रीभूषण, सोमसेन, केशवसेन, विश्वकीर्ति की भी भक्तामर स्तोत्र पर निबद्ध पूजाएँ राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में संग्रहीत हैं।

कथा-साहित्य

१७ वीं शताब्दी के अन्त में हिन्दी में जब कथाएँ निबद्ध करने का युग प्रारम्भ हुआ तो कविवर विनोदीलाल ने भक्तामर स्तोत्र पर संवत् १७४७ में (सन् १६९०) में पद्यानुवादित कथाएँ निबद्ध करके भक्तामर स्तोत्र के एक-एक पद्य का महत्त्व समझाने में सफलता प्राप्त की। विनोदीलाल ने ३८ कथाएँ लिखीं जो अपने ढंग की अच्छी कथाएँ हैं। इसके पश्चात् करीब १०० वर्ष पूर्व ही जयपुर में पन्नालाल चौधरी भक्तामर स्तोत्र पर स्वतन्त्र रूप से कथाएँ निबद्ध करके कथा-साहित्य में एक और बहुमूल्य कृति जोड़ने में सफल हुए।

भक्तामर स्तोत्र के प्रति जैनों में अत्यधिक श्रद्धा रही है इसलिए उसकी स्वर्णाक्षरी एवं शैय्याधरी प्रतियाँ भी यत्र-तत्र मिलती हैं। जयपुर के बैराठियों के मन्दिर में इस प्रकार की प्रतियों का संग्रह मिलता है। इसके अतिरिक्त भक्तामर की पाण्डुलिपियों के पत्रों के बॉर्डर भी कलात्मक ढंग से लिखे हुए मिलते हैं।

सचित्र पाण्डुलिपियाँ

जयपुर एवं भरतपुर के शास्त्र-भण्डारों में भक्तामर स्तोत्र की एक-एक सचित्र पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। इन पाण्डुलिपियों में ४८ पद्यों के ४८ चित्र हैं तथा प्रत्येक चित्र में एक-एक पद्य का भाव प्रदर्शित किया गया है। महाकवि मानतुंग को स्तवन करते हुए बतलाया गया है। विभिन्न रंगों में चित्रित सभी चित्र भारतीय चित्र-कला के अद्‌भुत नमूने हैं। भरतपुर की पाण्डुलिपि जयपुर की पाण्डुलिपि से २३ वर्ष से भी अधिक प्राचीन है; लेकिन कला एवं स्याही की दृष्टि से जयपुर की पाण्डुलिपि से अधिक सजीव है। इन चित्रों को देखते ही हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है तथा चित्रकार की क़लम की प्रशंसा में मन

झूम उठता है। जयपुर के तेरहपंथियों के मन्दिर में संग्रहीत भक्तामर स्तोत्र की यह सचित्र पाण्डुलिपि जयपुर की ही नहीं अपितु सारे समाज की निधि है। इन पाण्डुलिपियों में चित्रों के अतिरिक्त मूल पद्यों के साथ उनको पद्य-गद्य में बहुत ही अच्छी तरह से समझाया गया है।

एक बार पं. लाड़लीप्रसाद 'नवीन' ने सवाई माधोपुर में भी भक्तामर स्तोत्र की सचित्र पाण्डुलिपि होना बतलाया था; लेकिन उस प्रति के दर्शन करने का मुझे अभी तक सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका है।

ऋद्धिमंत्र

भक्तामर स्तोत्र केवल स्तोत्र ही नहीं है उसके प्रत्येक पद्य में एक अद्‌भुत शक्ति है इसलिए भट्टारक-युग में उसके पद्यों पर मंत्र लिखे गये; जिनकी साधना के पश्चात् विभिन्न ऋद्धियाँ प्राप्त होने का वृत्तान्त भी लिखा गया है। राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में ऋद्धिमंत्र सहित भक्तामर स्तोत्र की कितनी ही पाण्डुलिपियाँ मिलती हैं। एक युग था जब मंत्रों की सिद्धि साधु-सन्तों के लिए आवश्यक मानी जाती थी।

इस प्रकार राजस्थान के ग्रन्थागारों में भक्तामर स्तोत्र की विविध पाण्डुलिपियाँ मिलती हैं; जो धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, तथा जिसका विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। □

(पृष्ठ १२८ का शेष)

१५. जिनसागरजी (मराठी); १६. जैन, गुणभद्र; १७. जैन, गुलाबचन्द्र; १८. जैन, चुन्नीलाल; १९. जैन, मांगीलाल; २०. जैन रमेशचन्द्र; २१. जैन, शेखरचंद; २२. जोशी, बालमुकुन्द; २३. डोंगरीय, नाथूराम; २४. डोडिया, चुन्नीलाल; २५. दरख्शा, भोलानाथ (उर्दू); २६. दिगम्बरदास; २७. धनदासजी; २८. नथमलजी; २९. पांडे, हेमराज; ३०. पीताम्बरदासजी; ३१. पुष्पेन्दु, फूलचन्द; ३२. प्रेमी, नाथूराम; ३३. प्रेमसागर; ३४. बनवारीजी; ३५. भट्ट, लक्ष्मणजी अमरजी; ३६. भूषण, शकुनचन्द; ३७. मंगलसेन; ३८. मकरन्द कवि (मराठी); ३९. मित्रसेन; ४०. मुनि, आनन्दवर्धनजी; ४१. मुनि, छत्रमलजी; ४२. मुनि, छीरसागर; ४३. मुनि, ज्ञानमेरुजी; ४४. मुनि, देवविजयजी; ४५. मुनि, राजकृष्णजी; ४६. ४७. मुनि, सन्मतिभूषणजी; ४८. मुनि, हेमकीर्तिजी; ४९. रतनलालजी; ५०. रामप्रसाद; ५१. वर्मा, कृष्णपाल; ५२. विनोदीलालजी; ५३. व्यास, बालकृष्ण; ५४. शशि, कल्याणकुमार; ५५. शहा, हरजीवन रामचंद (गुजराती); ५६. शहा, हीराचंद तलकचंद (मराठी); ५७. शास्त्री, इन्द्रलाल; ५८. शास्त्री, कमलकुमार; ५९. शास्त्री, गिररिधर शर्मा; ६०. शास्त्री, तिलकधर; ६१. शास्त्री, धरमचन्द्र; ६२. शास्त्री, भुजबली के. (कन्नड़)); ६३. शास्त्री, भुवनेन्द्रकुमार; ६४. शाह, मावजी दामजी (गुजराती); ६५. सरोज, लक्ष्मीचंद्र; ६६. सूरि, विजय धुरंधर; ६७. सेठी, किशनलाल। □□

शत-शत तुम्हें प्रणाम

आदि जिनेश्वर, निर्मल जीवन, शत-शत तुम्हें प्रणाम।
तीन लोक के कष्ट-हरण तुम, जीवन के विश्राम ।।

कमल पत्र पर रहता जल-कण,
मोती-सा अभिराम।
श्री चरणों पर रहकर होता,
चंचल मन निष्काम ।।

उदयाचल के तुंग शिखर पर, नया लिये आयाम।
किरण जाल फैला कर निकला, शीतल अरुण ललाम ।।

नीरस होकर रसना जपती,
जहां तुम्हारा नाम।
उज्ज्वल रहता जन का रसमय,
जीवन आठों याम ।।

एक तुम्हारे बल से निर्बल, बन जाता बलधाम।
जन-मानस के परम हंस तुम, करुणामय घनश्याम ।।

मानवता के महासिंधु तुम,
करुणा-स्रोत अनाम।
आत्म तेज से गल जाते सब,
लोभ, मोह, मद, काम ।।

गूंज रहा है नभ-शिखरों पर, भव्य तुम्हारा नाम।
आदि जिनेश्वर निर्मल जीवन, शत-शत तुम्हें प्रणाम ।।

☐ बाबूलाल जैन 'जलज'

'भक्तामर स्तोत्र' : बहिरंग और अन्तरंग झाँकी

'भक्तामर स्तोत्र भक्ति, ज्ञान और कर्म का समन्वित प्रबन्ध है। . . . इसको किसी धर्म, जाति, मत आदि के घेरे या कोष्ठक में नहीं रखा जा सकता।

—कन्हैयालाल सरावगी

जैन परम्परा के मन्त्रों में सबसे अधिक चर्चित और मान्य णमोकार मन्त्र है और स्तोत्रों में भक्तामर स्तोत्र है। भक्तामर स्तोत्र के ऋषि मानतुंगाचार्य और देवता आदिनाथ ऋषभ हैं। स्तोत्र के प्रथम शब्द से इस स्तोत्र का नामांकन किया गया है। प्राचीन युग में स्तोत्रों, मन्त्रों आदि को प्रायः उनके प्रथम शब्द, या वाक्य से कहने का रिवाज था। इस मान्यता के सूचक जैन स्तोत्रादि ही नहीं थे, अन्य साहित्यों में भी इस प्रकार के विपुल उदाहरण मिलते हैं। वेदों में भी नासदीय आदि अनेक मन्त्र हैं, जिन्हें आद्य शब्दों से जाना जाता है। जैन परम्परा में भी एकीभाव, कल्याण मंदिर आदि स्तोत्र और 'प्राणप्रिय' आदि काव्य इसी कोटि के हैं।

यहाँ इस स्तोत्र की कुछ बहिरंग और कुछ अन्तरंग झाँकी उपस्थित करने की चेष्टा करेंगे। रुचि और प्रज्ञा के तल पर इस स्तोत्र के एक-एक श्लोक को एक-एक मन्त्र, यन्त्र और विधान के रूप में देखा, जाना और कहा गया है। कोई-कोई इसे जैन दर्शन का निचोड़ मानते हैं। लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय इसका माहात्म्य बताया जाता है। इसके सम्बन्ध में यह कहावत चरितार्थ है कि 'जाकी रही भावना जैसी हरि मूरति देखी तिन तैसी'।

यह एक सर्वाधिक चर्चित और पठित स्तोत्र होने के कारण विभिन्न भाषाओं और शैलियों में इसके शताधिक गद्य और पद्यमय अनुवाद हो चुके हैं और होते जा रहे हैं। दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, गीता आदि प्राचीन छन्दों के अलावा आधुनिकतम छन्दों और स्वछन्दों (अनुकान्त आदि) में इसकी रचनाएँ देखने, सुनने में आती हैं। विद्वानों ने इसके पदों का समस्या-पूर्ति के रूप में भी व्यवहार किया है। 'वीर भक्तामर' (धर्मवर्द्धन गणी), 'नेमि भक्तामर' (भावप्रभसूरि), 'प्राणप्रिय काव्य' (रत्नसिंह) आदि इसके उदाहरण हैं। 'नेमि भक्तामर' और 'प्राणप्रिय काव्य' दोनों में तीर्थंकर नेमिनाथ से सम्बन्धित कथानक हैं। यहाँ उनके एक दो श्लोक नमूने के लिए उद्धृत करना उपयुक्त होगा—

श्री धर्मवर्द्धन गणी रचित 'वीर भक्तामर' का प्रथम श्लोक है–

"राज्यर्द्धिवृद्धिभवनाद् भवने पितृभ्याम्
श्री वर्द्धमान इति नाम कृतं कृतिभ्याम् ।
यस्याद्य शासनमिदं वरर्वात भूमा–
वालम्बनं भवजले पततां जमानाम् ।।"

'तित्थयर', वर्ष १, अंक १, पृष्ठ १७ ।

श्री भावप्रभसूरि रचित 'नेमि भक्तामर' का प्रथम श्लोक है–

"भक्तामर त्वदुपसेवन एव राजी–
मत्यां ममोत्कमनसो दृढतामपनुत्त्वम् ।
पद्माकरो वसुकलोवसुखोऽसुखार्ता–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।"

'तित्थयर', वर्ष १, अंक १, पृष्ठ १७ ।

श्री रत्नसिंह रचित 'प्राणप्रिय काव्य' का प्रथम श्लोक है–

"प्राणप्रियं नृपसुता किल रैवताद्रि–
शृंगाग्रसंस्थितमवोचदिति प्रगल्भम् ।
अस्मादृशामुदितनीलवियोगरूपेऽ–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।"

–'जैन साहित्य और इतिहास'; नाथूराम प्रेमी, पृ. ४१४, पा. टि. १

'प्राणप्रिय काव्य' का एक और मार्मिक श्लोक उद्धृत करते हैं, इसमें कवि के मानस की उर्वरता, रसज्ञता, सम्वेदनशीलता, शालीनता आदि के स्पृहणीय दर्शन होते हैं । शृंगार, करुणा, अद्भुत आदि कई रसों का एक श्लोक में मिश्रण कवि की प्रतिभा का विरलतम उदाहरण है । कवि ने उपालम्भ के स्वर में राजुल के उद्गारों को व्यक्त करते हुए लिखा है–

"पूर्वं मयासह विवाहकृते समागाः
मुक्तिस्त्रियास्त्वमधुना च समुद्यतोऽसि ।
चेच्चञ्चलं तव मनोऽपि बभूव हा तत्
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ।।१५।।"

(पहले तो आप मुझसे विवाह करने के लिए आये और आज मुक्ति-नारी से विवाह करने को तैयार हो गये हैं । जब आपका भी मन चलायमान हो गया, तब तो सदा स्थिर रहने वाले मंदराचल का शिखर भी काँप गया ।)

सोलहवीं शताब्दी में धनुदास नामक एक प्रबुद्ध कवि हो गये हैं, जिन्होंने कवित्त में 'भक्तामर स्तोत्र' का अनुवाद किया है । उदाहरणार्थ एक पद प्रस्तुत है –

'तुम्हारौ बदन देखैं निरखि नयन नाथ ! पलकसों पलक लगाए कैसें जातु है ।
नाहीं तो तृपित होत, रहै इक टक लाइ, सुखको समूह देखैं भारी ललचातु है ।
क्षीरोदधि पीयो है जिहि छीर सम, ताकौ मनु वाही पयपानमैं समातु है । ।
'धनुदास' कोई कैसे इच्छवत खारो जल, अमृतको छाँड़ि कोऊ विषफल खातु है ? ।।११।।'

इसमें कवि की अनंन्य भक्ति मनोमुग्धकारी है । कवि हेमराजकृत भाषा भक्तामर का भी एक भावपूर्ण पद दर्शनीय है, जिसमें उपास्य की अपेक्षित दानशीलता का उद्‌घाटन दृष्टव्य है –

'नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत । तुमसे तुम-गुण वर्णत संत ।।
जो अधीन को आप समान । करै न सो निंदित धनवान् ।।१०।।'

पं. गिरिधर शर्मा कृत स्तोत्र का ३२ वाँ पद भी अलौकिक छटा से भरा है –

'गम्भीर नाद भरता दशही दिशायें, सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता ।
धर्मेशकी कर रहा जयघोषणा है, आकाश बीच बजता यशका नगारा ।।'

जिस स्तोत्र के अनुवाद इतने भाव-प्रवण हैं, वह मूलतः कितना भावपूर्ण होगा इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है । काव्य-सौष्ठव, शब्द-प्रबन्ध, अनुप्रास, समन्वय आदि की छटा जहाँ-तहाँ बिखरी मिलती है । उदाहरण के लिए एक पद दृष्टव्य है –

'बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्त्व शङ्करोऽसि भुवनत्रय शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्ग विधेर्विधानाद् व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५।।'

(बुद्धि, ज्ञान आदि से सम्पन्न होने और देवों अथवा विद्वानों द्वारा पूजे जाने के कारण आप ही बुद्ध हैं । तीनों लोकों में कल्याण करने वाले होने के कारण शङ्कर (शं=कल्याण + कर=करने वाले)हैं । हे धीर ! मोक्षमार्ग के विधाता–प्रणेता होने के कारण आप ही ब्रह्मा हैं और हे भगवन् ! आप ही व्यक्त पुरुषोत्तम (सदेह पुरुषों में सर्वोत्तम, विष्णु का एक नाम) हैं ।)

इस स्तोत्र के सभी ४८ श्लोक काव्य के पाण्डित्यपूर्ण सौष्ठव से भरे हैं, फिर भी कवि की विनम्रता, सरलता और निरभिमानता तीसरे से छठे श्लोकों में कूट-कूट कर भरी है । 'बालं'–श्लोक-३, 'विगतशक्ति'–श्लो.-५, 'अल्पश्रुतं' और 'परिहासधाम'–श्लो. ६ आदि शब्द दर्शनीय और चिन्तनीय हैं । यद्यपि आचार्य ने अन्तिम श्लोक में 'भक्त्या मया विविधवर्ण विचित्र पुष्पाम्' कहकर प्रस्तुत स्तोत्र की श्रेष्ठता और महत्ता पर स्वयं मुहर लगायी है, फिर भी उनका मानस प्रतिभा के

अभिमान से सर्वथा शून्य है । रचना की श्रेष्ठता का कारण अपना पाण्डित्य न मानकर वे उसे भगवान् की भक्ति का प्रसाद मानते हैं । स्तोत्र की प्रभावकता का कुछ दर्शन भी उपयुक्त होगा ।

इसके छन्द लम्बे और जटिल नहीं होने के कारण इसका पाठ सरलता और सुन्दरतापूर्वक किया जा सकता है । वसंततिलका एक ललित छन्द होने के कारण आबाल-वृद्ध-वनिता, बहुश्रुत या अल्पश्रुत सभी इसका पाठ सुगमता से कर लेते हैं। लम्बे-लम्बे समासों के कारण संस्कृत क्लिष्ट भाषा मानी जाती है, किन्तु यह स्तोत्र उसका अपवाद है । सन्धियों, समासों आदि का प्रयोग सुगमता से बोला और पढ़ा जा सकता है । उपयुक्त शब्दों का चयन कवि की प्रतिभा और अधिकार को प्रदर्शित करता है । पहले युग्म (दो श्लोकों) से ही उनकी इस प्रतिभा का दर्शन होने लगता है । स्वर का ज्ञान नहीं रखने वाला अथवा अल्प ज्ञान रखने वाला भी किसी हद तक इसका सस्वर पाठ कर लेता या करने लगता है ।

इसमें भक्ति के अगाध सागर की लहरों के साथ ज्ञान-विज्ञान के भी स्रोत दीख पड़ते हैं। अकेला ज्ञान शुष्क होता है; श्रद्धा, भक्ति और प्रेम उसे तरल और सरल बनाते हैं। ज्ञान बुद्धि का विषय और विलास होता है/हो जाता है और श्रद्धा या भक्ति हृदय की वस्तु होती है। पाश्चात्य विद्वान् फ्रांसिस बरडिघन ने कहा है कि, 'मस्तिष्क के हज़ार दृष्टिकोण होते हैं पर हृदय का एक ही लक्ष्य या कोण होता है। फिर भी हृदय के कोण के अस्तव्यस्त होने पर (ज्ञान-विज्ञान-सहित) जीवन का सारा प्रकाश खो जाता है (दि माइंड हैज़ ए थाउजेन्ड आईज, एन्ड द हार्ट बट वन, येट द लाइट ऑफ ए होल लाइफ डाइज वेन लव्ह इज डन)।

स्तोत्र की अंतरंग परीक्षा करते समय इससे जुड़ी एक किवदंती की ओर ध्यान जाता है। कहा जाता है कि मानतुंगाचार्य को, उनके विद्वेषियों के कहने से राजा ने कारागार में ४८ तालों के भीतर बंद कर दिया था। आचार्य ने उस समय इस स्तोत्र के द्वारा भगवान् ऋषभ की आराधना की और प्रत्येक श्लोक पर एक-एक ताला खुलकर अन्ततः वे मुक्त हो गये। सम्भवतः इस चमत्कार का आधार स्तोत्र का ४६ वाँ श्लोक है, जिसमें बेड़ियों से जकड़े मनुष्य के बन्धन मुक्त होने की बात कही गयी है।

इस कथा में सत्य और तथ्य का और अंश चाहे जितना हो, पर एक बात ध्रुव सत्य यह है कि झूठे मान (ज्ञान-बल आदि आठ मदों) के शिखर से उतर कर अकिंचन बनने वाला साधक मान (सम्मान) तुंग (ऊँचे) शिखर (चोटी) पर पहुँचता है। मानतुंगाचार्य की कृति की लोकप्रियता का आधार उनका निरभिमानी पांडित्य, अचल श्रद्धा और अकम्प भक्ति हैं । इस स्तोत्र के स्रोत में उनकी सहृदयता

की पवित्र धारा प्रवाहित होकर लोगों के भावों की शुद्धि कर श्रद्धा रूप परिवर्तन लाने और आत्मशान्ति की शीतलता प्रदान करने में समर्थ हुई है।

यहाँ मूल उद्देश्य स्तोत्र की परीक्षा है, अस्तु – दो-तीन श्लोकों के भीतर झाँकने की चेष्टा करेंगे। तीर्थंकर की दिव्यध्वनि की विशिष्टता का वर्णन कवि ने कम-से-कम शब्दों में चमत्कारिक रूप में श्लोक ३५ में किया है —

'स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः सद्धर्मतत्त्वकथनैक पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ सर्वभाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।।३५।।'

इसमें श्रुतज्ञान के कथन के संकेत के साथ उसकी सर्वव्यापकता और सर्व-ग्राह्यता का चमत्कार दिखाया गया है। २१ वाँ श्लोक वक्रोक्ति का अनूठा उदाहरण है। इसमें कहा गया है कि, आपको देखने के बाद कोई दूसरा देव मन को नहीं भाता अथवा किसी देव को देखने की इच्छा ही नहीं होती। इससे तो हरिहरादि अन्य देव कहीं अच्छे हैं, जिन्हें देख कर मन आपके विषय में संतुष्ट हो जाता है। कवि हेमराज ने इसके भाव को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है –

'सरागदेव देख मैं भला विशेष मानिया, स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया।
कछू न तोहि देख के जहाँ तुही विशेषिया, मनोग चित्तचोर और भूल हू न पेखिया ।।'

२४ वें श्लोक में गागर-में-सागर भरने की अद्भुत प्रतिभा के दर्शन होते हैं, कम-से-कम शब्दों में तीर्थंकर के अनन्त गुणों की ओर संकेत करते हुए तत्सम्बन्धी जैन वाङ्मय की मान्यताओं को भी प्रदर्शित किया गया है। एक-एक शब्द से उस जाति, विचार अथवा सिद्धान्त के गुण-विशेषों का दिग्दर्शन होता है। 'अव्यय' शब्द यहाँ केवल शाश्वत स्थिति का प्रतीक न होकर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों का प्रतिनिधित्व करता है।'विभु' शब्द तीर्थंकर के ज्ञान की व्यापकता, सर्वज्ञता और उनके लोकमान्य होने का सूचक है । 'अचिन्त्य' केवली के स्वरूप और गुणों की अचिन्त्यता, अथवा अनन्त चतुष्टय (दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य) का प्रतीक है। 'असंख्य' शब्द ऋषभदेव के गुण-समूहों और अनन्त पूर्व पर्यायों के अर्थ में है। 'आद्य' शब्द भगवान् के प्रथम तीर्थंकर होने, युग के आदि में होने, कर्मभूमि के आद्य प्रवर्तक और आद्य उपदेष्टा होने की याद कराता है। इसी प्रकार 'ब्रह्मा', 'ईश्वर', 'अनंगकेतु' आदि शब्दों में भी विशद अर्थ भरे पड़े हैं ।

इस स्तोत्र का यह एक ऐसा श्लोक है, जिसके एक-एक शब्द की व्याख्या करने पर एक अच्छा खासा ग्रन्थ बन सकता है । विज्ञ पाठक इसकी गहराई में जितना उतरेंगे उतना ही अधिक इसमें विचार-रत्नों का अप्रतिम भंडार उन्हें दीख पड़ेगा। जैन सिद्धान्त का बड़ा भाग इसमें गर्भित है, यह कहना सम्भवतः अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अन्त के दस श्लोकों (३८ से ४७) में संसारी जीवों की वेदना, बन्धन, मुक्ति आदि का जीवन्त वर्णन हुआ है। श्लो. ४६ में स्थूल बेड़ियों और कर्मजात दोनों प्रकार से बंधे जीव की मुक्ति का साधन भगवन्नाम मंत्र को बताया गया है। एक अन्य आचार्य ने इससे मिलते-जुलते भावों को दर्शाते हुए कहा है कि वीतराग देव के पुण्यगुणों को स्मरण करने मात्र से पापियों के भी मन पवित्र हो जाते हैं।

विस्तार में न जाकर इतना ही कहेंगे कि 'भक्तामर स्तोत्र' भक्ति, ज्ञान और कर्म का समन्वित प्रबन्ध है। सम्यक् दृष्टि इसमें मोक्ष के दर्शन करता है अर्थात् निश्चय नय का आभास पाता है और लोकव्यवहारी संसारी इसे धन-जन, स्वर्ग आदि व्यवहार धर्म का पोषक मानता है। ज्ञानी इसके द्वारा ज्ञान की साधना करता है और अल्पज्ञ इसे स्तुति समझता और इसका भक्तिपूर्वक पाठ करता है। कर्मशील व्यक्ति इससे कर्त्तव्यों के अपनाने की प्रेरणा ग्रहण करता है। इस स्तोत्र को किसी धर्म, जाति, मत आदि के घेरे या कोष्ठक में नहीं रखा जा सकता। इसमें गर्भित अर्थ पर सदाशयता से विचार करने पर एक अलौकिक ज्ञान और आनन्द का प्रकाश मिलता है। अन्तिम प्रशस्ति 'मानगुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः' भी दर्शनीय और विचारणीय है। इसमें प्रयुक्त 'मानतुङ्ग' शब्द द्वयर्थक है। यह प्रणेता आचार्य का नाम और उच्चतम प्रतिष्ठा का सूचक है। □□

भक्तामर की यशोपताका

भक्तामर की यशोपताका फहराते हैं साधु-भक्तजन,
भावपूर्वक पाठ-मात्र से फट जाते सब संकट तत्क्षण।
भक्तामर रच मानतुंग ने निज-पर का कल्याण किया था,
अड़तालीस काव्य रचनाकर शुभ अमरत्व प्रदान किया था।
नृप-कारा से मुक्त हुए मुनि श्रुत उपदेश महान् दिया था,
आदिनाथ की स्तुति करके निज स्वरूप का ध्यान किया था।
मैं भी प्रभु की महिमा गाकर भाव-पुष्प करता हूँ अर्पण,
भक्तामर की यशोपताका फहराते हैं साधु-भक्तजन।

□ **राजमल पवैया**

एलाचार्य मुनि विद्यानन्द/डॉ. नेमीचन्द जैन
उदयपुर (हासन, कर्नाटक) : 22 दिसम्बर 1981

जैन भक्ति स्वरूप और सार्थकता

- ☐ जैन भक्ति की दो विशेषताएँ हैं : मोक्षमतित्व और शान्तरस । इस भक्ति के साथ सम्यग्दर्शन का होना आवश्यक है अर्थात् इस भक्ति की राह मुक्ति-लक्ष्य तक है।
- ☐ भक्तामर स्तोत्र ने जैन समाज में संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने की सुरुचि को जगाया है और उसके प्रचार-प्रसार में काफी योग दिया है ।
- ☐ भक्तामर स्तोत्र का अखण्ड पाठ उसका व्यावहारिक रूप है, उससे लाभ तो है तथापि उसके स्वरूप/उसकी समग्र प्रक्रिया पर पुनर्विचार की काफी गुंजाइश है।
- ☐ यद्यपि भक्तामर स्तोत्र आदि का मूल लक्ष्य लौकिक/जागतिक कामनाओं को निर्वंश/निर्बीज करना है, तथापि आचार्यों ने सांसारिक सुख की प्राप्ति अथवा संकट-निवारण के निमित्त उसका सर्वथा निषेध नहीं किया है।

डॉ. नेमीचन्द जैन : मैं बहुत प्रसन्न हूँ, बल्कि कहूँ कि बहुत उल्लसित हूँ आपके दर्शन-लाभ से; और धर्मस्थल से चला आ रहा हूँ, इसलिए समन्वय की चेतना बनी हुई है। महाराजश्री, मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो भक्ति-तत्त्व है, वह जैनधर्म के ढाँचे में वीतरागता के साथ जुड़ता नहीं है । आप क्या सोचते हैं; वीतरागता और भक्ति में कोई संबन्ध है ?

एलाचार्य मुनि विद्यानन्द : बात यह है कि जिसकी वीतरागता के प्रति भक्ति है, उसे वह वीतरागी बना देती है; उसे वह वीतरागता की ओर अग्रसर करती है। सराग के पीछे जो भक्ति होती है, वह संसार को बढ़ानेवाली है।

ने. : वीतरागता के प्रति भक्ति यानी कैसे ?

वि. : वीतराग देव हैं, वीतराग शास्त्र हैं; वीतराग गुरु हैं—प्रारम्भावस्था में इनके प्रति जो भक्ति है, वह वीतरागता की ओर अग्रसर करती है; वह मार्ग प्रशस्त करती है, उस ओर ले जाती है। जैसे एक रस्सी के सहारे से मनुष्य उसे पकड़ कर ऊपर जाता है। यदि वह रस्सी न ले, तो वह ऊपर नहीं जा सकता। इसी तरह भक्ति के सहारे वह आगे बढ़ सकता है। आरम्भ में इसकी बहुत

आवश्यकता है। जब निर्विकल्पवास्था में वह जम जाएगा, तो भक्ति आदि सभी कारण छूट जाएँगे। जब तक सविकल्प अवस्था है, तब तक वीतराग देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति में मन लगाना आवश्यक है। भक्ति का स्थायीभाव अनुराग (रति) है। यह तो राग ही है। रस नौ हैं, किन्तु शान्तरस की ओर यही अनुराग ले जाता है। शान्तरस का स्थायीभाव निर्वेद है, जबकि भक्ति का अनुराग है–देव, शास्त्र, गुरु के प्रति; इसीलिए भक्ति निर्वेद की ओर ले जाने में सहायक है। भक्ति आत्मशोधन में भी सहायक है।

ने. : भक्ति के विषय में यदि किसी को थोड़े में समझाना हो, तो कैसे समझायेंगे ?

वि. : थोड़े में समझाना हो, तो कह सकते हैं कि गुणों के प्रति अनुराग भक्ति है।

ने. : किन गुणों के प्रति अनुराग ?

वि. : नैतिकता की दृष्टि से जहाँ भी अच्छे गुण मिलते हैं, वहाँ अनुराग होता है। जो जैनधर्म/तत्त्वज्ञान की ओर बढ़ना चाहता है, उसमें वीतरागता के प्रति/जिनेन्द्र भगवान् के प्रति भक्ति होती है।

ने. : यदि हम 'जैन भक्ति' कहना चाहें, तो वह क्या है ?

वि. : जैन भक्ति गुणों की आराधना है। जैसे अरिहन्त भगवान् हैं उनके गुणों का चिन्तवन करना; सिद्ध भगवान् हैं उनके गुणों का चिन्तवन करना। भक्ति में हम अरिहन्त और सिद्ध के गुणों का चिन्तवन करते हैं, उनका आदर्श हम अपने सामने रखते हैं। व्यक्ति अपने सामने आदर्श क्यों रखता है ? क्योंकि वह शुद्ध/अविकल बनना चाहता है।

ने. : जैनधर्म में आत्मस्वातंत्र्य का स्थान है। आत्मस्वातंत्र्य के साथ भक्ति-तत्त्व को जोड़ना बहुत कठिन पड़ता है; इसे कैसे जोड़ा जाए ?

वि. : आत्मस्वातंत्र्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होते हुए भी जब तक तत्त्वज्ञान को पूरी तरह समझें नहीं और निर्विकल्प दशा तक पहुँचें नहीं तब तक यानी प्रारंभिक अवस्था तक हम भक्ति को छोड़ नहीं सकते। जैसे हम नाव में बैठें, दूसरे किनारे पर नहीं पहुँचें और बीच मझधार में ही नाव को छोड़ देंगे, तो डूब जाएँगे।

ने. : किनारे पर पहुँचने पर तो नाव अपने-आप छूट जाएगी। वहाँ छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है।

वि. : नाव छूट जाएगी या नाव छोड़ देंगे ?

ने. : छूट जाना ज्यादा अच्छा लगता है।

वि. : बात यह है, तीर्थंकरों को कपड़े छोड़ने पड़ते हैं; वे अपने-आप नहीं छूटते हैं। लंगोट आदि का त्याग करना होता है।

ने. : लेकिन भीतर कोई घटना घटित होती है, तभी तो बाहर वैसा होता है।

वि. : ठीक है। भीतर घटना घटेगी, तो बाहर वैसा होगा। बाहर कपड़े छूट जाते हैं। किनारे पर पहुँचने पर नाव छूट जाती है। कहने का आशय यह है कि निर्विकल्प अवस्था के प्रकट होने पर भक्ति आपोआप छूट जाएगी, उसके पहले नहीं। निर्विकल्प अवस्था में कोई तभी पहुँच सकता है, जब उसके अंतरंग में पूर्ण परिपक्वता हो, तभी वह बहिरंग में छोड़ सकता है। यदि अंतरंग में नहीं है, तो वह बहिरंग में कैसे छोड़ सकता है? अंतरंग में परिपक्वता न होने पर छोड़ने से कोई लाभ भी नहीं है; और बहिरंग में छोड़ भी दिया, तो अंतरंग में भी कोई लाभ नहीं है। इसलिए अंतरंग और बहिरंग दोनों तप हैं। ये एक सिक्के के दो पहलू हैं। एकांगी कुछ नहीं होता है।

ने. : यानी तप का नाम भक्ति है?

वि. : हाँ, तप तो इसीलिए तपते हैं। अपने सामने एक आदर्श रखते हैं। सिद्धों का आदर्श रखते हैं; कौन? तीर्थंकर भी। वे 'णमो सिद्धाणं' कह कर केशलोंच करते हैं। वे तो तद्भव मोक्षगामी हैं, फिर सिद्धों का नाम क्यों लेते हैं? वह उनका लक्ष्य है। वे पहले सिद्धों का नाम लेते हैं, और फिर आत्मध्यान में लग जाते हैं। जब इतने परिपक्व और इसी भव से मोक्ष जाने वाले तीर्थंकरों को भी सिद्धों की भक्ति करनी पड़ती है, तब बाकी के हम तो सामान्य हैं। हमें विशेष भक्ति करनी पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य है? षोडशकारण भावना में भी भक्ति है।

ने. : आपने भक्तामर स्तोत्र का हिन्दी गद्यानुवाद किया है। यह स्तोत्र भक्ति का बहुत बड़ा आधार है। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

वि. : 'भक्तामर' में आदिनाथ भगवान् की स्तुति है। जैसे 'भज गोविन्दं' (शंकराचार्य) में भक्ति के मार्ग पर लगाने के लिए 'भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, मूढ़मते' कहा गया है। इसी तरह हमारे यहाँ भी—

> 'भज भगवन्तं, प्रथमारहंतं वृषभगवन्तं मोक्षमते!
> मोहोनष्टे मुक्तैतिष्ठे जगतोत्कृष्टे कोरमते!
> भज भगवन्तं प्रथमारहंतं वृषभगवन्तं मोक्षमते!'

यहाँ कहा 'मोक्षमते'; वहाँ कहा 'मूढ़मते'। 'मूढ़मते' क्यों कहा, 'मोक्षमते' क्यों कहा? एक नव्वे साल का बूढ़ा व्याकरण पढ़ने बैठा था। जब भज गोविन्दं के रचयिता श्री शंकराचार्य वहाँ से गुजरे तब उन्होंने उससे पूछा कि अरे मूर्ख, श्मशान भूमि में जा रहा है, और व्याकरण पढ़ने बैठा है, भगवान् का नाम ले। व्याकरण पढ़कर क्या करेगा? तब उन्होंने उसे 'भज गोविन्दं स्तोत्र' कहा। कहने का आशय यह कि इस भक्ति में भी 'मोक्षमते' का ध्यान रखो। तभी तो कहा है: 'भज भगवतं प्रथमारहंतं वृषभगवन्तं मोक्षमते!'

ने. : जिन-भक्ति में 'मोक्षमति' प्रथम है।

वि. : मोक्षमति प्रथम है और शान्तरस प्रधान है । शृंगार आदि रस गौण हैं।

ने. : संक्षेप में, जिन-भक्ति में इन दोनों की मुख्यता/विशेषता है।

वि. : हाँ, मोक्षमति और शान्तरस–प्रशान्तरस । भक्तामर स्तोत्र के ४८ श्लोकों में मुझे जो अत्यन्त रुचिकर है, वह है :

> **सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश**
> **कर्तुं स्तवं विगत शक्तिरपि प्रवृत्तः।**
> **प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं–**
> **नाभ्येति किं निज शिशोः परिपालनार्थम् ।।५।।**

ऐसे थे मानतुङ्ग महानाचार्य जो भगवान् के परम भक्त थे, जो स्वयं तो अमर हुए ही, भक्तामर पढ़नेवालों को भी अमर कर गये। इसमें (५वें श्लोक में) वे कहते हैं : 'भगवन्, मैं आपकी भक्ति नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि इतने गुण आपके हैं, मैं उन गुणों को क्रम से बोल नहीं सकता हूँ, न उन गुणों का चिन्तवन कर सकता हूँ और न उन गुणों के द्वारा स्तुति कर सकता हूँ–जुबान के द्वारा। मेरी स्तुति में वह योग्यता (क्षमता) नहीं है, ताकत नहीं है। यह सब मैं उस तरह कर रहा हूँ कि जिस तरह से हिरनी के छौने को शेर अपने मुँह में पकड़ लेता है। हिरनी को यह मालूम है कि शेर होने के नाते यह उसकी शक्ति के बाहर की बात है, परन्तु मोह के वशीभूत होकर उसे छुड़ाने के लिए वह सिंह पर प्रहार करती हैं। इसी प्रकार भगवन् ! आप अनन्त गुणों के आगार हैं और मैं छद्मस्थ हूँ, मुझमें शक्ति नहीं है, तथापि भक्ति-वश मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ।

ने. : कितनी अपूर्व / अद्भुत है यह स्तुति !

वि. : अपूर्व तो है ही : **सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश** — भक्तिवश होकर स्तुति कर रहा हूँ, यह जानता हूँ कि यह मेरे ताकत के बाहर की बात हैं। हिरनी भी जानती है कि शेर के सामने उसकी कोई सत्ता नहीं है, फिर भी वह शावक को छुड़ाने के लिए मोहवश जाती है। यहाँ मैं भी इसी तरह स्तुति प्रारंभ करता हूँ। छद्मस्थ अवस्था में इस जीव को भगवान् की स्तुति बहुत आवश्यक है। 'महापुराण' में जिनसेनाचार्य ने कहा है, साधु के लिए भी स्तुति करना आवश्यक है । एक जगह तो जिनसेनाचार्य ने भगवान् के उपदेश की उपेक्षा करते हुए भी भक्ति का प्रतिपादन किया है।

ने. : भक्ति आवश्यक है।

वि. : है ही; जिनसेनाचार्य कहते हैं : 'भगवन्, आपने मुझे कहा हैं कि मौन रखो। आपने कहा है कि वचन-गुप्ति रखो, काय-गुप्ति रखो, मनोगुप्ति रखो;

यानी शरीर मत हिलाओ, जुबान मत हिलाओ, मन को भी मत हिलाओ। यह मुझे मंजूर है, यह मुझे मान्य है, परन्तु जब आपकी स्तुति करने का प्रसंग आयेगा, तब मैं मौन-भंग कर दूँगा; जब आपके गुणों का चिन्तवन करने का प्रसंग आयेगा, तो मैं अपनी वचन-गुप्ति भंग कर दूँगा और जब प्रणाम करने का प्रसंग आयेगा तो मैं काय-गुप्ति को भंग कर दूँगा। चाहे इसे कोई भले ही मेरी उद्दण्डता समझे, पर मैं आपके गुणों के कारण यह करूँगा।

ने. : यह है भक्ति!!! भक्तामर स्तोत्र की और विशेषताएँ बताइये।

वि. : 'भक्तामर स्तोत्र' को लेकर सबमें बड़ी बात यह है कि यदि जैन समाज में संस्कृत पढ़ने या उसके प्रचार-प्रसार में किसी ने योगदान किया है, तो इस स्तोत्र ने। स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े, रोगी आदि सभी इस स्तोत्र को पढ़ते और कंठस्थ करते हैं। इससे उन्हें आत्मशान्ति/आत्मशक्ति मिलती है। यदि आप पत्राचार करके या प्रश्नावली भेज कर पूछते कि इस स्तुति के पढ़ने से कुछ लाभ हुआ है, तो हजारों लोग बता देते/देंगे कि इससे हमें अमुक-अमुक लाभ हुआ। इससे सिद्ध होता है कि इस स्तोत्र में कोई अद्‌भुत शक्ति है। यद्यपि इस स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे भगवान् कुछ देते नहीं हैं, तथापि उनकी भक्ति के द्वारा हमारे हृदय में जो पवित्र भावनाएँ (स्फूर्त) होती हैं, उससे जो पुण्यबन्ध होता है, उसका फल हमें अवश्य मिलता है। गृहस्थावस्था में इसकी आवश्यकता है। इसके बिना काम नहीं चलता।

ने. : क्या जैन भक्ति अहैतुकी भक्ति है?

वि. : नहीं, पूर्ण भक्ति है। भक्ति दो तरह के लोग करते हैं; एक तो वे जिन्हें सांसारिक सुख चाहिये। उन्हें भी आप रोक नहीं सकते। दूसरे वे लोग हैं जो 'तद्‌गुण लब्धये' (आपके जैसे गुणों की प्राप्ति चाह रहा हूँ। मैं अपने में आप-जैसे गुणों को प्रकट करना चाह रहा हूँ, आप-जैसा बनना चाह रहा हूँ) के लक्ष्य से भक्ति करते हैं। ये दो मार्ग हैं। यह चुने या वह; जिसकी जैसी मरजी हो करे। अधिकतर लोग संसार के दुःखों से दूर होने के लिए प्रयत्न करते हैं, भक्ति का मार्ग अपनाते हैं; इसलिए मैं समझता हूँ कि जब कोई सांसारिक लक्ष्य से भी भक्ति करता है, तब भी उसे आचार्यों ने क्षम्य बताया है।

आचार्य पूज्यपाद कहते हैं कि लड़का यदि खाना नहीं खा रहा है तो माँ चिन्ता नहीं करती, कहीं मिट्टी तो नहीं खा रहा है इसकी चिन्ता वह जरूर रखती है। लड़का कमा नहीं रहा है इसलिए बाप इसकी चिन्ता नहीं कर रहा है, पर लड़का शराब आदि व्यसनों में तो धन गँवा नहीं रहा है, इसकी वह चिन्ता करता है। इसी प्रकार वीतराग भगवान् के मन्दिर में जाकर कोई पूजा-भक्ति नहीं करता है, इसकी चिन्ता नहीं है, अपितु कुमार्ग में लगकर कुदेवी-देवता की

भक्ति में तो नहीं लग रहा है, यह देखना है। यदि वह बीच में फँसेगा नहीं या रुकेगा नहीं, तो कालान्तर से वह भी वीतराग भगवान् की भक्ति कर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है; इसीलिए जो कुमार्ग पर नहीं लगा है, वह अभी सन्मार्ग पर नहीं भी लगा हो, तटस्थ हो, बीच में हो, तो भी उसे उद्धार के लिए कोई मार्ग मिल सकता है। यदि एक बार वह कुमार्ग में फँस जाएगा या लग जाएगा, तो उसका संसार बढ़ जाएगा।

ने. : महाराजश्री, यह देखा जा रहा है कि 'भक्तामर' का जो अखण्ड पाठ करते हैं, उसमें एक आदमी थक जाता है, तो दूसरा आ जाता है। यह क्रम चला करता है। तो क्या इस तरह के अखण्ड पाठ की धर्म में कोई गुंजाइश है?

वि. : बात यह है कि लोकानुकरण होता है। जो अच्छाइयाँ होती हैं उनका लोग अनुकरण करते हैं। अखण्ड पूजा-पाठ नाना प्रकार से लोग करते हैं। वह तो पवित्र वातावरण बनाने के लिए मन को सद्भाव या विचार में लगाये रखने के लिए है। मन बड़ा चंचल है, इसे बाँधना बड़ा कठिन है। आचार्य ने कहा है कि मन बन्दर-जैसा है, उसकी चंचलता कैसे रोकें? उन्होंने कहा कि जैसे पेड़ पर अधिक फल-फूल हों, तो पत्थर फेंकने के बावजूद भी बन्दर वहाँ से नहीं हटता है। ठीक इसी तरह मन शास्त्र, भगवान् की भक्ति, स्वाध्याय इत्यादि में रम जाता है; इसीलिए अखण्ड पाठ ठीक है। वह सामान्य व्यावहारिक रूप है; तब भी उससे लाभ होता ही है; जागृति होती है। हज़ारों लोग अखण्ड पाठ करते हैं, तो दस-पाँच में जागृति होती ही है। 'फिल्म' देखने जाते हैं, तो सभी उसमें 'हीरो' नहीं बन जाते हैं, एकाध कभी-कभार बन पाता है। ऐसा ही इसमें है। फिर भी इसमें सुधार/संशोधन की काफी गुंजाइश है।

ने. : आशावादी होने की आवश्यकता है।

वि. : आशावादी होना ही चाहिये। यह जरूरी भी है। वीतराग भगवान् के दरबार में जाकर हम सांसारिक इच्छा न रखते हुए वीतरागता की पवित्र इच्छा रखें। वीतरागता की ओर जाने पर हमारा कल्याण सुनिश्चित है।

ने. : 'भक्तामर स्तोत्र' के साथ कई अंधविश्वास भी जुड़ गये हैं। इसका मन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। कोई समाधान बताइये।

वि. : मन्त्र-शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र है। 'परमात्म प्रकाश' के टीकाकार ने स्पष्ट लिख दिया कि यह पदस्थ ध्यान है। मन्त्रों में अनन्त शक्ति है, इसमें कोई संशय नहीं है, क्योंकि यह पदस्थ ध्यान है। उन मन्त्रों का यथार्थ समझकर चिन्तन करने से एकाग्रता बनती है, कर्मों की निर्जरा होती है, पुण्य-बन्ध होता है, परन्तु अन्तिम लाभ सम्यग्दर्शन से ही होता है।

ने. : जैन भक्ति के साथ **सम्यग्दर्शन जरूरी है।**

वि. : ज़रूरी है, उससे अधिक लाभ होगा।

ने. : 'भक्तामर स्तोत्र' आदि जैन भक्ति-स्तोत्रों का उद्देश्य लौकिक कामनाओं को निर्वंश/निर्बीज कर देना है।

वि. : वह मुख्य ध्येय है; परन्तु गौण रूप में कोई सांसारिक सुख भी चाहता है, तो आचार्यों ने इसकी सर्वथा मनाही नहीं की है। उसके लिए उन्होंने कुछ गुंजाइश रखी है। डॉक्टर साहब, मैं एक ही बात आपसे पूछता हूँ कि जिस डॉक्टर के पास जाने से आपका रोग ठीक नहीं होता है, उसके पास आप क्यों जाएँगे? जिस डॉक्टर के पास जाने से रोग ठीक होगा, उसके पास ही तो आप जाएँगे न? यदि वीतराग भगवान् से संसारी रोग ठीक नहीं होते, तो कोई क्यों उनके पास जाएगा? इसलिए लोग तात्कालिक सुख या लाभ देखेंगे। जहाँ अच्छे-से-अच्छा डॉक्टर जल्दी-से-जल्दी रोग ठीक कर देता है, वहाँ वह रोगी जाता है। जिस भक्ति के द्वारा जल्दी फल मिलता हो, उस ओर वह जाता है; इसलिए सामान्य लोगों के दुःखों को दूर करने की बात उठी है। आचार्यों ने इसकी सर्वथा उपेक्षा नहीं की है। इतना ध्यान रखिये कि यदि संसारी दुःख दूर नहीं होते, सान्त्वना नहीं मिलती, तो सामान्य लोग भक्ति नहीं करते।

पूज्यपाद-जैसे आचार्य ने अपनी शान्त भक्ति में यह स्पष्ट लिख दिया कि जलमन्त्र देने, हवन करने और इसी प्रकार के धार्मिक मन्त्रों के करने से निर्विष हो जाते हैं, उससे दुःख दूर हो जाते हैं। तो भगवन्, आपके नामस्मरण से क्यों नहीं हो सकते हैं? बहिरंग साधन यानी तन्त्रविद्या कहिये, जैसे जलमन्त्र देना आदि ये सब गृहस्थों के लिए हैं। पूज्यपाद-जैसे आचार्यों ने शान्त भक्ति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। मेरे पास वह कारिका है।

ने. : भक्तामर नामस्मरण में आता है–'त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः'।

वि. : नामस्मरण बहुत श्रेष्ठ है; लेकिन भक्ति-मार्ग में एक बात आप ख्याल में रखिये। भक्ति-मार्ग विचित्र है। एक दृष्टान्त दे रहा हूँ। दस आदमियों ने दुकानें खोल रखी हैं–कपड़े, लकड़ी, सोने, लोहे, सीमेन्ट आदि की। इनमें तरह-तरह का सामान रखा हुआ है। सबका ध्येय क्या है? पैसा। सबका एक ही ध्येय है–पैसा कमाना। कोई भक्ति करता है तो करने दो। कोई स्तुति गाता है, तो गाने दो। कोई संगीत के द्वारा भगवान् के गुणों में मगन होता है, तो होने दो। कोई जाप जपता है, जपने दो। कोई प्रक्षाल करता है, प्रक्षाल करने दो; परन्तु ध्येय यही होना चाहिये कि हमें मुक्ति पानी है। जैसे कोई शत्रु को बाण से भगाता है, कोई तलवार से भगाता है, कोई बन्दूक से भगाता है। कोई अन्यान्य शस्त्रों से भगाता है। यहाँ कर्म-शत्रु को भगाने के लिए कोई भगवान् का नाम लेता है, कोई स्तुति करता है, कोई प्रणाम करता है, कोई सामायिक करता है,

कोई ध्यान करता है। जिसमें जिसकी रुचि होती है, वह वैसा करता है। ध्येय पवित्र होना चाहिये। साधन पवित्र होना चाहिये। इतनी-सी बात हमें देखना है।

ने. : मतलब यह कि साध्य बहुत स्पष्ट होना चाहिये। साधन वैसे तो शुद्ध होंगे ही, लेकिन साधन भी उसी ओर केन्द्रित होने चाहिये।

वि. : उसी ओर केन्द्रित होने चाहिये। वाह, कितनी अच्छी बात है!

ने. : जिनकल्पी मुनि कैसे होते हैं?

वि. : जिनकल्पी मुनि पूर्णतया स्वावलम्बी होते हैं। शास्त्रों में दृष्टान्त दिया गया है कि यदि उनके पैर में काँटा लग गया, तो उसे वे न तो खुद ही निकालते हैं और न किसी अन्य को निकालने देते हैं। वृषभनाराचसंहनन होने से वे पूर्ण आत्मनिर्भर होते हैं।

ने. : आहार तो लेते हैं।

वि. : ठीक है। आहार तो मामूली-सी बात है। आहार तो लेते हैं, वह तो शरीर का रोग है, उसकी पूर्ति करनी है चुल्लू-भर लेकर। बाकी के जो उपसर्ग हैं, उन्हें सहन करने की उनमें क्षमता होती है। शास्त्र में उनके ऐसे भेद दिये हैं।

ने. : मुझे तो दो ही पढ़ने को मिले हैं–जिनकल्पी और स्थविरकल्पी। मैं जानना चाहता था कि क्या मानतुङ्गाचार्य जिनकल्पी थे?

वि. : वे स्थविरकल्पी थे। महावीरस्वामी तद्भव मोक्षगामी थे। उनके बाद कोई जिनकल्पी नहीं हुआ।

ने. : जिनकल्पी के लिए शरीर द्वितीय (दोयम) हो जाता है। वे कायोत्सर्गी होते हैं।

वि. : शरीर पर उनका बिलकुल ममत्व नहीं होता। वे कायोत्सर्गी हो जाते हैं। वहाँ ममत्व नाम की कोई चीज नहीं होती।

ने. : भक्ति से आत्मशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

वि. : भक्ति से मनोबल बढ़ता है। यदि मैंने भगवान् की भक्ति की है, तो मुझ पर कोई संकट नहीं आ सकता है।

ने. : एक तरह का अभय पैदा हो जाता है।

वि. : हाँ। उसे अभयदान मिल जाता है।

ने. : भक्ति सबसे बड़ी अभयदानी है।

वि. : बिलकुल ठीक। श्रेष्ठ तो है ही। हमारे जितने कवि हुए हैं, उनमें पं. दौलतरामजी ने–

'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित अरि-रज रहस विहीन॥'

भक्ति के बारे में क्या नहीं कहा है? वे यह भी कहते हैं—

'पशु नारक नर सुरगति मँझार। भव-धर-धर मर्यो अनंत बार।
अब काललब्धि बलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुसाल।'

(हे भगवन्, मैं चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ आया, पर काललब्धि नहीं आयी। आज काललब्धि आयी, आपके दर्शन हुए। भक्ति के कारण मैं मगन हुआ।)

ने. : क्या भक्ति से सामाजिक स्नेह संवर्धित होता है?

वि. : सामाजिक संगठन के लिए पंचकल्याणक, तीर्थयात्रा, रथ-यात्रा आदि कारणभूत हैं। जैसे 'महामस्तकाभिषेक' का मेला हुआ तो उसके कारण सारे देश के लोग आये; उसमें सामाजिक संगठन की बात हुई। संगठन की भावना प्रबल रही। भक्तामर में, भक्ति में संगठन शक्ति है, क्योंकि भक्ति करनेवाले लोग इकट्ठा होते हैं। एक ही माला की मणियाँ होते हैं।

ने. : एक प्रकार से सामाजिक संगीत बनता है।

वि. : सामाजिक संगीत होता है। भक्ति से कोई सुनते हैं, कोई श्रद्धा रखते हैं, कोई स्वयं बोलते हैं, कोई सुनते हैं, कोई सुनाते हैं। सबको लाभ मिलता है।

ने. : एक रहस्य समझ में नहीं आया, महाराज! जितने भी शब्द हैं भक्ति, स्तुति, पूजा—ये सब स्त्रीवाची क्यों हैं?

वि. : मुक्ति स्त्रीवाचक है। इस संसार में सारे जीवन में मनुष्य के जन्म-मृत्यु का कारण स्त्री है। इससे उन्होंने लिख दिया कि सबसे प्रिय स्त्री मानते हो, तो उससे मुक्त होने के लिए मुक्ति को स्त्री का नाम दे दो।

ने. : शायद भक्ति में माधुर्य के कारण ऐसा है; लेकिन स्तोत्र शब्द पुरुषवाची है। भक्तामर स्तोत्र के विषय में आप और कुछ बताना चाहें, तो बताइये।

वि. : मैं पहले भक्तामर स्तोत्र बहुत पढ़ता था। लम्बा होने से रोज नहीं पढ़ सकता हूँ। अतः छोटी-सी स्तुति पढ़ता रहता हूँ। दस-बारह श्लोकों को अब पढ़ता हूँ। मुझे तो बड़ा आनन्द आता है। कुन्दकुन्दाचार्य ने भक्तियाँ लिखी हैं—सिद्ध-भक्ति इत्यादि। उनके अन्त में 'अञ्चलिकाएँ' लिखी हैं; प्रार्थना है : भगवन्, मुझे भक्ति के लिए किसी ने नियुक्त नहीं किया। मैं किसी के भय से भक्ति नहीं कर रहा हूँ। मैं अंतरंग से, स्वेच्छा से भक्ति कर रहा हूँ। भय, लालच अथवा किसी के थोपने से मैं भक्ति नहीं कर रहा हूँ। भक्ति अंतरंग से निकलनी चाहिये। भक्ति भी एक तरह से शुल्क है। जैसे दुकान में पैसे देते हैं, तो माल लेते हैं, उसी तरह भगवान् की भक्ति भी एक तरह से शुल्क ही है—ऐसा भी हमारे आचार्यों ने कहा।

ने. : धर्मस्थल में जो गोम्मटेश्वर की मूर्ति प्रतिष्ठित होने जा रही है। इस अवसर पर लोगों को आप कुछ सन्देश दीजिये।

वि. : इस भौतिक युग में लोग अतिरेक/अतिशय (विपुल-प्रचुर) भौतिक पदार्थों की ओर दौड़ रहे हैं। ऐसे पदार्थों की प्राप्ति और उनके संग्रह करने की होड़ लगी हुई है, जिसका कोई अन्त नहीं है। यह परिग्रहवाद को उद्दीपित करता है, परिग्रह को बढ़ाता है। अन्ततः यह परिग्रह ही दुःखदायी है। उस परिग्रह को कम करने के लिए वीतराग भगवान् की जो मूर्तियाँ हैं, उनकी विशेष भक्ति/पूजा/अभिषेक देखने से जिनके पास कुछ भी नहीं है, उस पुरुष के मन में अपरिग्रह-वाद की तरफ दृष्टि आ सकती है। हम साधु तो हैं ही, हममें और भी बड़े महान् अपरिग्रहधारी हैं। इसका कारण यह कि गोम्मटेश्वर-जैसे महापुरुषों के आदर्श के कारण हम साधु जी रहे हैं। गृहस्थ/श्रावक भी इस आदर्श से कुछ-न-कुछ अपनायेंगे। गोम्मटेश्वर की भव्य/विशाल मूर्ति दुनिया को अपरिग्रहवाद का सन्देश देने में समर्थ है। गोम्मटेश्वर की विराट् मूर्ति अहिंसा-अपरिग्रह का जीवन्त प्रतीक है। प्रतिष्ठा में जो लोग आयेंगे, वे यहाँ से कुछ-न-कुछ प्रेरणा लेकर अवश्य ही जाएँगे।

ने. : महाराजश्री, मैं आपसे अन्तिम प्रश्न कर रहा हूँ, जो व्यक्तिगत है। आप तो सिद्धान्त-चक्रवर्ती हैं, एलाचार्य हैं और इस समय मुनियों में हम सबके लिए श्रेष्ठ हैं—दिशा-दर्शन देनेवाले हैं। जब आपको चोट लगी तो कैसा लगा ?

वि. : कुछ नहीं। जब देखा कि चालीस फीट से सरक गये, पच्चीस फीट पर पत्थर पकड़ने से चोट लग गयी. जब हम किनारे पर पहुँचे, तो खड़े हो गये। भट्टारकजी ने हमें बैठाया, और उसके बाद वे सहारे से हमें ले गये। हम आम के पेड़ के नीचे खड़े हो गये। हड्डी बाहर आ गयी ऐसा दिखायी देने से साथ में जो थे, उन्होंने पकड़ लिया। उन्होंने डर के कारण हड्डी को नहीं खींचा। तो हमने हड्डी को बैठा दिया। और हमें कुछ नहीं लगा। बिलकुल भी कुछ नहीं लगा।

ने. : दर्द की अनुभूति बिलकुल नहीं हुई ?

वि. : उसकी अनुभूति तो हुई, लेकिन सामान्य। चोट लगने के बाद दूसरे दिन तो हम आहार ज्यों-का-त्यों लेने लगे या लेते रहे। इतनी-सी बात अवश्य हुई कि आहार में हमें हाथ उठाने के बजाय मुँह को ही नीचा करके आहार लेना पड़ता था (हँसी)। आहार लेते समय हाथ हिलने से दर्द बढ़ जाता, आहार में दिक्कत होती, इसलिए ऐसा करना पड़ा।

ने. : यानी आप हाथ के साथ मुँह का सहयोग लेते थे। मैंने यह इसलिए पूछ लिया कि हम सबको चोटें लगती हैं, इसलिए चोट को सहन करने की जो कला है, वह हम जानना चाहते हैं। ऐसी चोटें लगें, तो उन्हें कैसे सहन किया जाए ?

वि. : हमारा शरीर ही ऐसा मजबूत है कि सामान्य चोट का कोई खास असर नहीं पड़ता। यह शरीर-पिण्ड ही ऐसा है।

ने. : हम लोग यह बात कैसे पैदा करें?

वि. : दूसरी बात, त्यागी बनने के बाद रोना-पीटना तो कर नहीं सकते हैं कि हाय-हाय!! (हास्य) जो भी थोड़ा दर्द होगा तो मुँह से अरिहन्त भगवान् का नाम निकलेगा, सिद्ध भगवान् का नाम निकलेगा, णमोकार मन्त्र और स्तुति निकलेगी; इसलिए हाय-हाय करके तो कुछ होगा नहीं। हम जानते हैं कि यह कायोपसर्ग है, दूर होने तक इसे सहन करना होगा। वेदना होते हुए भी उसको सहन करते थे। श्रावक आदि सभी कहते थे कि अस्पताल में भरती करो। सर्जन कह रहे थे कि बेहोश किये बिना हम हड्डी को कैसे जोड़ सकते हैं? उनके लिए यह आश्चर्यजनक था।

ने. : मैं सोचता हूँ कि जब आपको चोट लगी तो आपने हड्डी को बेहोश कर दिया, उसके कारण आप बेहोश नहीं हुए।

वि. : बिलकुल ठीक।

ने. : इसका रहस्य तो बता दीजिये।

वि. : जोड़ने के बाद बिलकुल ठीक हो गया। नहीं तो बाद में सूजन आने के बाद ध्यान में बहुत दिक्कत हो जाती।

ने. : यह सब आत्मशक्ति का प्रभाव है।

वि. : जब हड्डी को बिठाया तो आवाज आयी 'खट्'। हमने कहा कि अब मिट गया। मामूली-सी आवाज सुनायी दी।

ने. : दर्द का ताला बन्द हो गया; ऐसा 'खट्' होने से हुआ।

वि. : हमने सुना है कि बहुत-से वीर युद्धभूमि में हाथ कट जाने के बाद भी हाथ बाँधकर युद्ध करते थे। ऐसे वे शूर-वीर थे। फिर वीतरागता को माननेवालों को ऐसी चोट तो मामूली-सी बात है।

ने. : आप भी तो अध्यात्म-क्षेत्र के शूर-वीर हैं।

वि. : एक हाथ कट जाने के बाद दूसरे हाथ से युद्ध जीतने की कोशिश वे करते थे, ऐसा वर्णन हम पढ़ते हैं। तब हमारी तो मामूली-सी चोट थी।

ने. : अनुमति दीजिये कि मैं समाज को सूचित करूँ कि आप पूर्ण स्वस्थ हैं।

वि. : हाँ, हम तो अन्तरंग से स्वस्थ हैं, बहिरंग से स्वस्थ हैं, अत्यन्त प्रसन्न हैं।

□□

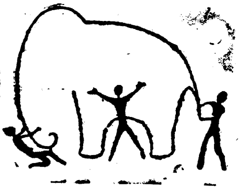

मुनि जयन्तविजय 'मधुकर'/डॉ. नेमीचन्द जैन; मद्रास : 24-12-1981

भक्तामर स्तोत्र :
डगर
भक्ति से मुक्ति तक

☐ 'भक्तामर स्तोत्र' में समर्पणतत्त्व यदि नहीं होता, तो वह इतना व्यापक/प्रभावक नहीं बन पाता, लोक/जनमान्य नहीं होता और सर्वजनग्राह्य भी नहीं होता ।

☐ किसी स्तोत्र की श्लोक-संख्या के कम-ज्यादा होने से भक्ति की तीव्रता में कोई उतार-चढ़ाव संभव नहीं है। भक्ति तो भीतर से उमगती है; वह होती है स्वयं की जीवन्त आत्मशक्ति की अप्रतिम/अजस्र अभिव्यक्ति ।

☐ समझने के लिए अनुवाद/भाषान्तर अवश्य कर सकते हैं, किन्तु मूल का बल और रस सहज ही उसमें नहीं आ सकता; क्योंकि मूल में रचयिता की साधना का जो अमोघ बल है, भक्ति की जो शक्ति है, अनुवाद में वह स्वभावतया अनुपस्थित होगी ।

☐ श्रीमानतुंङ्गाचार्य ने इस जगत् के हम-जैसे जीवों को 'भक्तामर स्तोत्र' के माध्यम से अन्तःस्थल तक, भीतर की अतल गहराइयों तक पहुँचने का अपूर्व/अचूक अवसर प्रदान किया है । उनके इस अवदान के लिए मात्र जैन समाज ही नहीं, सारा भक्त-समाज उनका बहुत ऋणी है । उन्होंने इस अनुपम/अद्वितीय स्तोत्र की रचना कर तत्त्व और सत्त्व दोनों को ही प्रकाशित किया है ।

डॉ. नेमीचन्द जैन : 'भक्तामर स्तोत्र' पर आपके विचार जानना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं आपसे यह जानना चाहूँगा कि जैन दर्शन में वीतरागता का महत्त्व अधिक है, लेकिन भक्ति-तत्त्व को उससे जोड़ने में कठिनाई होती है; आप क्या सोचते हैं कि वीतरागता से भक्ति-तत्त्व जुड़ता है ?

मुनि जयन्तविजय 'मधुकर' : वीतरागता के साथ भक्ति का संबन्ध इतना ही है कि उस वीतरागी प्रभु की हम जितनी भक्ति करते हैं, उतनी ही वीतरागता प्रकट करने में हमें क्रमशः सहायता मिलती है। वीतरागता की भक्ति और हमारे अपने संकुचित परिणामों का शुद्धिकरण, ये ही वीतरागता की वस्तुस्थिति को समझने में सहायता कर सकते हैं; इसलिए वीतराग की भक्ति वीतरागता की भक्ति है,

वीतरागता को पाने के निमित्त भक्ति है। भक्ति को उपाध्याय श्री यशोभद्रविजयजी महाराज ने तो यहाँ तक कहा है कि भगवन्, वीतराग की भक्ति ही मुझे चाहिये, क्योंकि भक्ति में ही मुक्ति का आकर्षण भरा पड़ा है; इसलिए भक्ति भक्त को सर्व प्रकार से अपने रागों से मुक्त कर वीतरागता की ओर ले जाने में सहायक होती है; अतः वीतरागता और भक्ति का संबन्ध योग्य, उत्तम, और समुचित है।

ने. : मैं सोचता हूँ कि हमारी भक्ति में लौकिक कामना नहीं है। भक्ति के पीछे आत्मोत्थान का बल है, इसलिए भक्ति आध्यात्मिक उत्थान के लिए है।

ज. : है। भक्ति आध्यात्मिक उत्थान के लिए ही है। भक्ति में व्यावहारिक और लौकिक किसी प्रकार का संबन्ध होता ही नहीं है। जो स्वार्थरहित भक्ति है, वही भक्ति है। वही वीतरागता से संबन्ध रखती है।

ने. : क्या स्तोत्र, स्तुति, स्तवन, प्रार्थना, पूजा आदि को जीवन्त भक्ति कह सकते हैं?

ज. : निश्चित रूप से भक्ति इनके माध्यम से ही प्रकट होती है। भक्ति की जो धारा है, वह भीतर से प्रवाहित होती है और भक्त अपने भावों को इनके द्वारा ही प्रकट करता है।

ने. : क्या भक्ति के द्वारा हृदय निर्मल होता है?

ज. : भक्ति के द्वारा हृदय की निर्मलता होती ही है। ज्यों-ज्यों भक्त भक्ति के प्रवाह में बहता है, त्यों-त्यों उसे स्वयं की शुद्धि का अनुभव होता है, ज्ञान होता है। जितनी जागृत अवस्था में वह भक्ति करता है, उतनी ही उसकी निज की आत्मिक निर्मलता समृद्ध होती है।

ने. : मानतुङ्गाचार्य का यह भक्तामर स्तोत्र आपको कैसा लगा? यदि बहुत अच्छा लगा या प्रेरक लगा, तो उसके कारण बताइये।

ज. : आचार्य मानतुङ्ग महाराज का यह स्तोत्र सब रसों से परिपूर्ण है। उसमें उपमान, उपमेय और औपम्य की अद्भुत छटा विद्यमान है। भक्तामर स्तोत्र में सहज भाव से, सहज रूप से उनके आन्तर भावों की स्फुरणा हो रही है। इस स्तोत्र में आचार्य मानतुङ्गसूरिजी ने एक प्रकार से सुषुप्त चेतना को जागृत कर देने वाला बहुत बड़ा प्रयास किया है।

मैं तो इसका नियमित पाठ करता हूँ और सामूहिक रूप से संघ में भी करवाता हूँ। जब 'भक्तामर' का उच्चारण करता हूँ, उसके भीतर जाता हूँ, तब एक-एक श्लोक, एक-एक पद और उन पदों के साथ में बननेवाला पूरा पद्य स्पष्ट होता है। वीतरागता और सरागता की स्थिति में कितना भेद है, यह बताने के साथ अनेक दृष्टान्तों को देकर उन्होंने भगवान् के निकट अपने को ले चलने में बहुत

बड़ी सफलता प्राप्त की है। जिसका मैं भी स्तोत्र का बार-बार स्मरण करने से थोड़ा-बहुत अनुभव करता हूँ।

'भक्तामर स्तोत्र' सचमुच समर्पण-भावना के बाद में ही लिखा (रचा) गया है। इसमें अभिव्यक्त समर्पण-भावना का आज भी सर्वत्र एक बहुत बड़ा आदर्श स्थान है। यदि समर्पण-भाव का कोई मर्मस्पर्श इस स्तोत्र में नहीं होता, तो वह इतना व्यापक नहीं होता, वह जनमान्य/लोकमान्य नहीं होता, और सर्वजनग्राह्य भी नहीं होता। भक्तामर स्तोत्र का जैन समाज के समस्त सम्प्रदाय एक रूप में, एक दृष्टि से समादर करते हैं, उसका पवित्र स्मरण करते हैं, और उसका जाप भी करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वास्तव में समर्पित भाव की कोई रचना निज को भी समर्पित वृत्ति, समर्पित स्थिति का बनने/बनाने में सहायक होती है।

ने. : क्या इस स्तोत्र का कोई मान्त्रिक प्रभाव भी है?

ज. : निश्चित रूप से है। इस स्तोत्र के हर पद में, हर अंश में मान्त्रिक शक्ति है; किन्तु उस मान्त्रिक शक्ति को सहज ही हर कोई नहीं जान सकता। स्तोत्र के हर पद्य/श्लोक में अक्षर-पद इस तरह संयोजित हैं कि इन अक्षरों को अगर कोई व्यक्ति व्यवस्थित रूप से जाननेवाला हो, तो उस पद में से अपूर्व मन्त्र-शक्ति प्रकट हो सकती है।

ने. : जैसे णमोकार मन्त्र हमारे यहाँ है, उसी तरह भक्तामर स्तोत्र भी है। जैसा आपने णमोकार मन्त्र का अनुभव बताया था कि इससे संकटमोचन हो जाता है। क्या ऐसी कोई स्थिति बनी कि आपको भक्तामर स्तोत्र का भी इसी तरह का कोई अनुभव हुआ हो?

ज. : मेरे जीवन पर इस स्तोत्र की बहुत गहरी छाप है। मैंने दीक्षा ली उसके पूर्व मेरे पेट में बहुत दर्द रहता था। दर्द इतना होता था कि मैं जमीन पर लोटता था, इधर-से-उधर उछलता था। कई इलाज/उपचार किये, लेकिन दर्द दूर नहीं हुआ। मुझे दीक्षा के लिए इसीलिए घरवाले मना कर रहे थे कि इतने भारी दर्द में तू दीक्षा लेकर कैसे रह सकेगा? मुझे इस बात में पूरा भरोसा था कि जैन शासन में जिनदेव की अनन्य भाव से की गयी भक्ति में इतनी शक्ति है कि वह सब भौतिक/लौकिक दर्दों को मिटा देती है। जिस भक्ति का परिणाम मोह का नाश है, वह भक्ति शारीरिक दर्द तो मिटायेगी ही। इसी आशा/विश्वास से मैंने उनसे दीक्षा की अनुमति ली थी। दीक्षा लेने के बाद मैं भक्तामर स्तोत्र के जिस श्लोक का सतत् नियमित रूप से स्मरण करता रहा, वह है:

उद्भूत भीषण जलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत जीविताशाः।

त्वत्पाद-पंकज-रजोऽमृत दिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ।।

इस श्लोक की माला फेरता था। वर्षों तक मैंने इसकी माला फेरी। उसका फल/परिणाम यह हुआ कि मेरे पेट में होनेवाला दर्द, जो कई इलाजों के बावजूद नहीं मिटा था, केवल इसके स्मरण से/जाप से समाप्त हो गया, मिट गया। लोगों को भय लगता था कि इस दर्द के कारण मैं साधना-पथ में खप नहीं सकूँगा। इस दर्द के मारे मैं बच नहीं सकूँगा; लेकिन इस श्लोक का प्रभाव/चमत्कार यह है कि पेट का दर्द जड़-मूल से मिट गया। आज भी कई बार पेट के दर्दियों का प्रसंग आता है, तो मैं इसी श्लोक के आधार से कई दर्दियों (रोगियों) का दर्द मिटा सकता हूँ। मैंने उनका दर्द मिटाया भी है, या कहिये मिटा सका हूँ। इसके स्मरण से मैंने अपने पेट के दर्द को तो मिटाया है। कभी-कभी होने पर मिटा लेता हूँ। गुरुमहाराज के आदेश से मैं इस पद्य/श्लोक का प्रचार करता रहता हूँ।

ने. : गुरुदेव का भक्तामर स्तोत्र पर विश्वास था ?

ज. : गुरुदेव का तो यह स्तोत्र आधार ही था। वे दिगम्बर कुल में जन्म लेकर आये थे। उन्होंने बचपन से ही यह स्तोत्र सीखा था। प्रतिदिन नियमित रूप से इस स्तोत्र का पाठ करना उनका जीवन-क्रम था। उनकी भक्तामर स्तोत्र में इतनी आस्था थी कि वे अन्य स्तोत्रों में समय न लगाकर इसमें ही काफी समय लगाते थे। अंजनशलाका आदि के विशेष प्रसंगों पर वे 'भक्तामर' का पाठ स्वयं करते थे और इसके माध्यम से अपने आत्मबल से सामाजिक कार्यक्रमों को व्यवस्थित रूप से बढ़ाते थे, तथा सबको इस ओर प्रेरित करते थे।

ने. : क्या उन्होंने आपको कभी कोई अपना संस्मरण सुनाया ?

ज. : संस्मरण तो नहीं सुनाया, लेकिन इस स्तोत्र में पथ-दर्शन अवश्य किया।

ने. : मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस स्तोत्र के बारे में दिगम्बर सम्प्रदाय ४८ श्लोक मानता है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय ४४ श्लोक मानता है; वस्तुस्थिति क्या है ?

ज. : दिगम्बर सम्प्रदाय में जिन चार श्लोकों को विशेष माना जाता है, उनमें भगवान् के अतिशयों/प्रातिहार्यों का वर्णन है और श्वेताम्बर आचार्यों ने उन प्रातिहार्यों को जैसे—

सिंहासने मणिमयूख शिखाविचित्रे····
कुन्दावदात चलचामर चारु शोभं····'

को गौण रूप में माना है। उनका कथन है कि ये प्रक्षिप्त हैं। इसी कारण श्वेताम्बरों में उनका प्रचलन नहीं है। जबकि दिगम्बर शुरू से मानते हैं कि मानतुङ्गाचार्य ने

४८ श्लोकों की रचना की है, इसलिए कि चार प्रातिहार्यों का वर्णन स्पष्ट है। चार प्रातिहार्यों का वर्णन होना चाहिये, उनकी यह मान्यता चल रही है।

ने. : मैं सोचता हूँ कि इससे भक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता है ।

ज. : कतई नहीं। एक माने में फर्क आने का सवाल ही नहीं है। भक्ति श्लोकों के कम होने से कम नहीं होती और ज्यादा श्लोक हों, तो ज्यादा नहीं होती। भक्ति तो अपने भीतर से समर्पित भाव के कारण प्रकट होती है। वह तो अपनी स्वयं की आत्मशक्ति है अथवा आन्तरिक शक्ति है।

ने. : भक्ति में भी समुद्र-मंथन होता है–ज़हर और अमृत के रूप में। ज़हर को तो हम निकाल फेंकते हैं, अमृत ही रह जाता है। जैसे मानतुङ्गाचार्य ने आदिनाथ भगवान् की स्तुति की तो क्या उन्हें अपने विशाल समुद्र-मंथन में ऐसा लगा कि आदिनाथ भगवान् जीवन्त हैं?

ज. : बिलकुल लगा होगा।

ने. : क्या आपको भी ऐसा लगता है?

ज. : जब भक्तामर स्तोत्र का ध्यान करने बैठते हैं, तो सहज ही अनुभव होता है कि आदिनाथ भगवान् के सामने या उनके निकट बैठे हैं। वे हमें प्रेरित कर रहे हैं। भक्तामर स्तोत्र अथवा भक्ति के विशिष्ट आयोजन में अपने को सम्मिलित करने के बाद निश्चित रूप से अपने भीतर बहुत बड़ी भावना प्रवाहित होती है। भावना/विचार-सागर की स्थिति बनती है। जब हम भगवान् के सामने भक्ति के लिए बैठते हैं, तो हमारे भीतर रही कमजोरियों को और भगवान् के अन्दर रही संपूर्ण स्थितियों को बराबर देखने की कोशिश की जाती है। भक्ति के द्वारा अपने विषाक्त स्वरूप को और भगवान् के अमृतमय स्वरूप को देखने का प्रयास होता है। यही प्रयास हमें हमेशा सर्व प्रकार से वीतरागता के निकट ले जाने में सहायक होता है और हम अपने परिणामों को भी सर्व प्रकार से निर्मल बनाने का प्रयत्न करते हैं।

ने. : भक्तामर के अखण्ड पाठ के बारे में आपकी क्या राय है?

ज. : श्वेताम्बरों में ऐसी मान्यता है कि रात्रि में बारह बजे के बाद 'भक्तामर' का पाठ नहीं होना चाहिये। शुरू से ही यह परम्परा चली आयी है। अखण्ड पाठ तो बारह बजे बाद भी चलता रहता है, यह श्वेताम्बरों में परम्परा नहीं है। दिगम्बरों में अखण्ड पारायण होता है। अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थिति के कारण ये क्रम बने हुए हैं।

ने. : क्या श्वेताम्बरों में अखण्ड पाठ की परम्परा है ही नहीं।

ज. : अखण्ड नहीं चलता है। रात्रि के बारह बजे बाद नहीं।

ने. : इसके पीछे क्या कारण है?

ज. : इसके पीछे आचार्यों की, गुरुजनों की, उस स्थिति के निर्माताओं की स्थिति कैसी रही होगी, उसके बाद के आचार्यों ने कैसा अनुभव किया होगा, यह बताना तो बहुत कठिन है।

ने. : यह निश्चित कहा जाता है कि मानतुङ्गाचार्य ने भक्तामर स्तोत्र की रचना प्रातः ३ से ६ बजे के मध्य की है। यह तो बहुत स्पष्ट बात है, जो हमें देखने को मिलती है।

ज. : श्वेताम्बराचार्यों ने इस स्तोत्र में रही मान्त्रिक या शाब्दिक शक्ति का प्रातःकाल स्मरण करने के बाद अनुभव किया होगा कि इसका प्रातःकालीन स्मरण विशेष लाभकारी है।

ने. : ज्यादातर मैंने देखा है कि श्रावक इस स्तोत्र का अर्थ तो जानते नहीं हैं, उन्होंने कण्ठस्थ इसे कर लिया है। स्त्रियाँ भोजन बनाते समय भी इसका पाठ कर लेती हैं और दूसरी व्यस्तताओं के बीच भी इसका पाठ कर लेती हैं।

ज. : भक्तामर स्तोत्र का नियम है, सब प्रकार के नित्य कर्मों से निवृत्त होकर जब हम भक्तामर का पाठ करें, तभी उसकी सार्थकता है। अन्य प्रवृत्तियाँ करते हुए भक्तामर का पाठ करने से लाभ इसलिए नहीं है कि एक समय में हमारे दो उपयोग नहीं रह सकते। ऐसा करने से दोनों प्रवृत्तियाँ निष्फल हो जातीं हैं। भक्तामर का पाठ वे, जिन्हें इसका अर्थ मालूम नहीं, यदि करते हैं तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। वे इसका मूल ही याद करें। इसमें रहा हुआ जो शाब्दिक बल है, शब्दों में समाया हुआ जो मान्त्रिक बल है, शब्दों में भक्ति का जो बल है, वह बिना अर्थ जाने भी पाठ करने वालों पर असर करता है। जब हम औषधि लेते हैं, तब यह नहीं जानते कि वह कैसे बनी, किसने बनायी; वह तो गुणकारी हो जाती है। कोई ऐसे प्रसंग आते हैं कि हम शब्दों को नहीं जानते हुए भी उन्हें बोल देते हैं और वे शब्द बहुत बड़ी मान्त्रिक और आन्तरिक अनुभूति का काम करते हैं। इसी प्रकार से 'भक्तामर स्तोत्र' के श्लोकों के शब्दार्थों को नहीं जानने के बावजूद उनका जाप अथवा पाठ लाभकारी होता है। उनके शब्दार्थों और भावों को जानना तो उत्तम है ही। आचार्य मानतुङ्ग ने परमात्मा को अत्यन्त अनुपम, विशिष्ट बताते हुए अनुपमेय बना दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'भक्तामर' का विशेष रस प्राप्त करने के लिए हम इस स्तोत्र के एक-एक शब्द का, पंक्ति का, पद का चिन्तन करते जाएँ। हो सकता है कि उससे हमें विशेष लाभ हो। इस स्तोत्र का हमें साहित्य के माध्यम से प्रचार करना चाहिये। प्रचार के आधुनिक साधनों का उपयोग कर हमें इस स्तोत्र की सुन्दर, सरल, सुबोध, समुचित व्याख्या के साथ इसका प्रचार करना चाहिये।

ने. : यदि कोई इस स्तोत्र का अंग्रेजी में पाठ करता हो, तो क्या उसे वैसा ही लाभ मिलेगा, जैसा संस्कृत में करने से मिलता है?

ज. : मूल वस्तु का बल मूल वस्तु में ही रहेगा। अनुवाद में वह बल नहीं आ सकता। मूल में जितना बल है, उतना अन्य रूप बना लेने पर नहीं आ सकता, क्योंकि इससे स्थिति दूसरी हो जाती है। समझने के लिए भाषान्तर अवश्य कर सकते हैं, लेकिन मूल पाठ का बल और रस उसमें नहीं आ सकता। इस स्तोत्र का हमने गुजराती, हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं में अनुवाद देखा है, लेकिन मूल में जो रस है, मूल में जो रस आया है, वह तो उस भाषा के तदनुरूप शब्दों को जमाने पर भी नहीं आ सकता। अनुवाद/भाषान्तर में शब्दों को इधर-उधर बैठाना पड़ता है, शब्दों को आगे-पीछे करना पड़ता है। मूल स्तोत्र में जिस स्थान पर जो शब्द 'फिट' किया गया है या हो गया है, उसका जो स्वरूप है, उसकी जो स्थिति है, उसमें परिवर्तन करने से उसका वास्तविक प्रभाव न हो, तो संपूर्ण लाभ कैसे मिल पायेगा ?

ने. : इसका मतलब यह हुआ कि अनुवाद समझने के लिए तो ठीक है, लेकिन मूल में साधना का जो बल है, भक्ति की जो शक्ति है, उसका अनुवाद में अभाव रहता है। हमें मूल पाठ ही अपनाना चाहिये। अनुवाद से सहायता मिल सकती है।

ज. : समझने के लिए अनुवाद से सहायता हो सकती है।

ने. : 'भक्तामर' का पाठ साधु करते हैं और श्रावक भी। क्या इन दोनों के पाठ करने में कोई अन्तर है ? क्या दोनों के लिए अलग-अलग विधि-विधान हैं ?

ज. : भक्ति जिस रूप में, जिस भाव से जिस व्यक्ति द्वारा की जाती है, उसका परिणाम उसके जीवन में मिलता है। साधु स्वयं को वीतरागता की ओर जाने की दृष्टि से इसका पाठ करता है और क्रमशः धीरे-धीरे उसकी वह स्थिति बन सकती है, बनती जाती है। गृहस्थ जिन कामनाओं की पूर्ति करना चाहता है, वैसा हो सकता है, होता भी है। 'भक्तामर' में जहाँ समस्त कामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति है, वहीं उसमें कर्ममुक्त कराने की शक्ति भी है।

ने. : 'भक्तामर' के बारे में और कोई बात बताना चाहें, तो बताइये।

ज. : भक्तामर स्तोत्र को वसन्ततिलका में रचा गया है। यह वृत्त चौदह अक्षरों का है। चौदह की अपनी विशेषता है; जैसे—चौदह पूर्व, चौदह रत्न, श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार तीर्थंकर की माता के चौदह स्वप्न; शायद इसी विशेषता के कारण मानतुङ्गाचार्य ने वसन्ततिलका छन्द को पसन्द किया होगा; और इसी कारण उसमें इतना रस आया है। हर पद में भगवान् की अनुपम लोकोत्तर स्थिति को लौकिक स्तर पर समझने/समझाने के लिए इतना शानदार, इतना जानदार, इतना विशिष्ट बताया है। सचमुच आचार्यश्री ने इस जगत् के हम-जैसे जीवों को 'भक्तामर' के माध्यम से अन्तस्तल तक, भीतर तक पहुँचने का

(शेष पृष्ठ 166 पर)

जैन भक्ति-मार्ग

"एक बार मैं कई वर्षों तक कास रोग से ग्रस्त रहा। मैंने अपनी श्रद्धा के अनुसार 'भक्तामर' का एक पद्य केसर से भोजपत्र पर लिख कर और उसे सोने के ताबीज़ में रख कर गले में पहिन लिया। उसके बाद ही मेरा रोग बढ़ा। उस समय मेरे मन में विकल्प पैदा हुआ कि इसका कारण यह ताबीज़ तो नहीं है, जिसे मैं सदा पहिने रहता हूँ; शौच जाता हूँ तो वहाँ भी पहिने रहता हूँ। यह विकल्प आते ही मैंने ताबीज़ निकाल दिया और मैं फिर रोगमुक्त हो गया। इससे मुझे स्तोत्र की शक्ति पर विशेष श्रद्धा हुई।

—पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

जैनधर्म का सर्वोच्च लक्ष्य संसार के बन्धन से छूट कर मोक्ष की प्राप्ति है। जो इस लक्ष्य से भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति करता है, उसकी भक्ति ही सच्ची भक्ति है, किन्तु इसके विपरीत जो सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए ही जिन-भक्ति करता है, वह सच्चा जिन-भक्त नहीं है। जो लोग जैनकुल में जन्म लेकर भी विपत्ति दूर करने और सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए संकट में पड़कर जिन-देव को छोड़ अन्य देवों को पूजते हैं, वे घोर मिथ्यादृष्टि हैं।

'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के, तीन मूढ़ता तथा आठ मद-रहित और आठ अंग-सहित, श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है। और सम्यग्दर्शन के बिना न सम्यग्ज्ञान होता है और न सम्यक् चारित्र होता है; इसीलिए शास्त्रकारों ने लिखा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में से सर्वप्रथम पूरे प्रयत्नों के साथ सम्यग्दर्शन की आराधना करना चाहिये; क्योंकि उसके होने पर ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र होते हैं। अतः सम्यग्दृष्टि की भक्ति ही सच्ची भक्ति होती है। उसके विषय में आचार्य समन्तभद्र ने, जो जैन परम्परा में आद्य स्तुतिकार के रूप में विख्यात हैं और जिन्होंने जिन-भक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार अपने जीवन में देखा था, 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में लिखा है—

भयाशा लोभस्नेहाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चेव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः।।

(शुद्ध सम्यग्दृष्टि को भय से, आशा से, लोभ से, स्नेह से कुदेव, कुशास्त्र और कुलिंगियों को प्रणाम और विनय नहीं करना चाहिये।)

अभी बहुत से जैन स्त्री-पुरुष सु-देव और कु-देव को ही नहीं जानते। हमारे पास पत्र आते हैं कि क्या पद्मावती कुदेव है? यह प्रश्न बतलाता है कि पूछने वाले को सच्चे देव का स्वरूप ही ज्ञात नहीं है। और इस अज्ञान को फैलाने में

निमित्त हमारे शासन देवताओं के भक्त कुछ मुनि, आचार्य और आर्यिका माताएँ भी हैं, जो विपत्तिग्रस्त श्रावक-श्राविकाओं को जिन-भक्ति का ही उपदेश न देकर पद्मावती को पूजने का उपदेश देकर मिथ्यात्व का प्रचार करके नरक निगोद के भागी बनते हैं।

सच्चा देव वही है जो सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी है। ऐसे एकमात्र जिनेन्द्र देव ही हैं; किन्तु उनकी वीतरागता की ओट में कुदेव-पूजा के प्रचारक अज्ञानी श्रावकों को समझाते हैं कि जिनेन्द्र देव तो वीतरागी हैं–वे तो निन्दा से नाराज़ नहीं होते, भक्ति से प्रसन्न नहीं होते; अतः तुम पद्मावती को पूजो। यह कितना बड़ा अज्ञान है, ऐसा मिथ्या उपदेश देने वाले भी जिनदेव की भक्ति की शक्ति से अपरिचित हैं। शास्त्रों में लिखा है–

एकाऽपि समर्थेयं जिन भक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ।।१५५।।–सोम० उपा०

(अकेली एक जिन-भक्ति ही ज्ञानी के दुर्गति का निवारण करने में, पुण्य का संचय करने में और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है।)

और लिखा है–

एकैवास्तु जिने भक्तिः किमन्यैः स्वेष्टसाधनैः।
या दोग्धि कामानुच्छिद्य सद्योऽपायानशेषजः ।।७४।।

(एक जिन-भक्ति ही हो, अपने इष्ट के लिए अन्य साधनों से क्या लाभ? जो जिन-भक्ति तत्काल समस्त विघ्न-बाधाओं को नष्ट करके मनोरथों को पूर्ण करती है।)

जिस जिन-भक्ति के प्रसाद से मुक्ति की प्राप्ति होती है, क्या उसके प्रसाद से लौकिक संकट दूर नहीं हो सकते? जिस णमोकार मन्त्र के प्रभाव से नाग-नागिनी मरकर धरणेन्द्र-पद्मावती हुए, उन भगवान् पार्श्वनाथ और णमोकार मन्त्र की श्रद्धा न करके मूढ़ जन पद्मावती को पूज कर अपना संसार अनन्त करते हैं। धरणेन्द्र-पद्मावती तो अपने उद्धार का कारण भगवान् पार्श्वनाथ को जान कर उनकी भक्ति करते हैं; मूढ़जन पद्मावती को पूजते हैं। मानो भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति से श्री पद्मावती की भक्ति बड़ी फलदायक है!! कितना बड़ा अज्ञान है?

'स्वामिकार्तिकयानुप्रेक्षा' में कहा है–

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ।।३१९।।

इसकी संस्कृत टीका में आचार्य शुभचन्द्र ने लिखा है–

'कोई भी देव शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, व्यन्तर, चण्डिका, काली, यक्षी, यक्ष, क्षेत्रपाल आदि अथवा सूर्य-चन्द्रमा ग्रह आदि लक्ष्मी-स्वर्ण रत्न, धन-धान्य,

स्त्री-पुत्रादि देने में समर्थ नहीं है । इनमें से कोई भी जीव का उपकार या अपकार नहीं कर सकता। तब प्रश्न हुआ कि यदि कोई भी देव उपकार या अपकार नहीं करता तब कौन करता है ? इसके उत्तर में कहा है कि पूर्व में उपार्जित शुभ और अशुभ कर्म जीव का उपकार और अपकार करते हैं। पुण्य कर्म के योग से लक्ष्मी आदि इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है और पाप कर्म के उदय से दुःखः गरीबी और रोग आदि होते हे ।

'निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुञ्च दशेमुषीम् ।।

(प्राणी को अपने उपार्जित कर्म के अतिरिक्त कोई भी किसी को कुछ नहीं देता। ऐसा विचार करते हुए एकाग्र मन होकर दूसरा कोई देता है, इस बुद्धि को त्याग दो।)

दूसरे के देने-लेने की ग़लतफ़हमी के कारण ही जगत् में राग-द्वेष की आग जलती है। यही सब से बड़ी भूल है, जो संसार का कारण है; अतः इस बुद्धि से कुदेवों के चक्कर में न पड़कर एकमात्र वीतराग देव की ही भक्ति करनी चाहिये। उसी भक्ति के प्रसाद से होने वाले पुण्य कर्म के बन्ध के साथ पाप कर्म की निर्जरा होती है और उसके होने से संकट दूर होकर इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जिन-भक्ति के प्रसाद से संकट कैसे दूर होता है, इसको पं. आशाधरजी ने इस प्रकार समझाया है –

नेष्टं विहन्तुं शुभभावमग्नेमप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः ।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः ।।

(इच्छित वस्तु की प्राप्ति में बाधा देने वाला अन्तराय कर्म हैं। जब शुभ परिणामों के द्वारा उसकी शक्ति नष्ट कर दी जाती है तो वह इच्छित वस्तु की प्राप्ति में विघ्न डालने में असमर्थ हो जाता है; इसलिए गुणों में अनुराग-वश इच्छानुसार अर्हन्त आदि को नमस्कार आदि रूप भक्ति करने से इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है।)

आचार्य समन्तभद्र ने 'स्वयंभू स्तोत्र' में कहा है–

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल परिणामाय स तदा ।
भवेन्मा वा स्तुत्याः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथं ।
स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ।।

(स्तुति करते समय, जिसकी हम स्तुति करते हैं, वह मौजूद हो या न हो और फल की प्राप्ति भी उसके द्वारा सीधी होती हो या न हो परन्तु साधु स्तोता की स्तुति शुभ परिणामों का कारण होती है जब जगत् में इस प्रकार स्वाधीनता से कल्याण

का मार्ग सुलभ है तब हे सर्वदा पूजनीय जिन भगवान् नमिनाथ ! ऐसा कौन समझदार प्राणी है जो आपकी स्तुति न करे ।)

इन्हीं, आचार्य ने अरनाथ भगवान् की स्तुति में कहा है–

गुण स्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्‌ब हुत्वकथास्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वार्य सा कथम् ।।
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामाऽपि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चनं ।।२।।

(किसी में थोड़े गुण हों और उनको खूब बढ़ाकर कहने का नाम स्तुति है; किन्तु भगवन् आपके गुणों का पारावार नहीं है उन्हें कहना अशक्य है। अतः वह स्तुति आप में कैसे संभव है ? फिर भी आपका तो नाम-कीर्तन भी हमें पवित्र करता है । अतः कुछ कहता हूँ ।)

इसी की झलक हमें 'भक्तामर स्तोत्र' के निम्न काव्य में मिलती है–

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ।।९।।

(हे भगवन् ! समस्त दोषों से रहित आपके स्तवन की तो बात ही क्या, आपकी तो सम्यक् कथा-नाम भी जगत् के प्राणियों के पापों को नष्ट करता है। सूरज तो दूर ही रहो, उसकी प्रभा ही सरोवरों में कमलों को खिला देती है।)

स्तोत्र-जगत् में 'भक्तामर स्तोत्र' का बहुत महत्त्व है। इसका प्रथम हिन्दी पद्यानुवाद पं. हेमराज ने किया था; जो संस्कृत से अनजान हैं, वे उसी का नित्य पाठ करते हैं। मेरी माता पढ़ी-लिखी नहीं थीं; किन्तु उन्हें हिन्दी भक्तामर याद था और नित्य उसका पाठ करती थीं । उन्हीं से सुनते-सुनते मुझे भी याद हो गया और मैं संस्कृत का विद्वान् होते हुए भी उसका पाठ कर लेता हूँ ।

संस्कृत भक्तामर स्तोत्र भाव की दृष्टि से मुझे उतना उच्च प्रतीत नहीं होता। उसके ४८ काव्यों में से आदि का भाग तो स्तवन करने की अक्षमता को लिये हुए है। उससे आगे के भाग में भगवान् की तुलना सूर्य, चाँद, दीपक आदि से करते हुए उनका महत्त्व ख्यापन किया है । फिर अष्ट प्राप्तिहार्यों को लेकर स्तवन है। अन्त में आठ महाभयों को दूर करने की क्षमता का वर्णन है – हाथी, सिंह, सर्प, आग, युद्ध, समुद्र, रोग और बन्धन ये आठ महाभय हैं और ये भगवान् के स्तवन से दूर हो जाते हैं। लौकिक जनों के लिए यही सबसे बड़ा आकर्षण है और इसी ने इस स्तोत्र को इतना महत्त्व दिया प्रतीत होता है ।

प्राय: अधिकतर स्तोत्र विपत्ति के समय ही रचे गये हे। आचार्य समन्तभद्र पर संकट आने पर उन्होंने 'स्वयंभू स्तोत्र' रच कर जिन-भक्ति का चमत्कार दिखलाया। आचार्य मानतुंग को ४८ तालों में बन्द करने की कथा के अनुसार 'भक्तामर स्तोत्र' रचा गया । आचार्य वादिराज ने अपने कुष्ठ-ग्रसित शरीर को 'एकीभाव स्तोत्र' द्वारा ठीक करके जिन-शासन का प्रभाव प्रदर्शित किया। कविवर धनंजय ने अपने पुत्र का सर्प-विष दूर करने के लिए 'विषापहार स्तोत्र' रचा । श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार आचार्य सिद्धसेन ने, जिनका उपनाम कुमुदचन्द्र था, भगवान् पार्श्वनाथ के स्तवन में 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' रचकर जिन-शासन का प्रभाव प्रदर्शित किया, किन्तु इन सभी स्तोत्रों में 'भक्तामर' को जो प्रतिष्ठा प्राप्त है वह अन्य स्तोत्रों को नहीं है। जब मैं ८-९ वर्ष का था तो मेरी बहन प्रसव-पीड़ा में थी। उस समय मैंने भक्तामर का पाठ किया था। आज भी संकट के समय उसी की ओर दृष्टि जाती है ।

एक बार मैं कई वर्षों तक कास रोग से ग्रस्त रहा । मैंने अपनी श्रद्धा के अनुसार 'भक्तामर' का एक पद्य केसर से भोजपत्र पर लिखकर और उसे सोने के ताबीज में रखकर गले में पहिन लिया। उसके बाद ही मेरा रोग बढ़ा । उस समय मेरे मन में विकल्प पैदा हुआ कि इसका कारण यह ताबीज तो नहीं है जिसे मैं सदा पहिरे रहता हूँ, शौच जाता हूँ तो वहाँ भी पहिने रहता हूँ। यह विकल्प आते ही मैंने वह ताबीज निकाल दिया और मैं फिर रोगमुक्त हो गया । इससे मुझे स्तोत्र की शक्ति पर विशेष श्रद्धा हुई।

लौकिक हित-कामना से जो भक्ति आदि करते हैं उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि जिन भगवान् तो कुछ करते-धरते नहीं हैं, 'भक्तामर स्तोत्र' के अनुसार उनके चरण-युगल 'आलम्बनं भवजले पततां जनानां' संसार-समुद्र में गिरे हुए प्राणियों के लिए आलम्बन-मात्र हैं। उस आलम्बन को लेकर भक्त जितने विशुद्ध अन्तःकरण से शुभ भावना लेकर स्तवन करेगा, उतना ही पुण्य-लाभ वह कर सकेगा, किन्तु यदि स्तवन करने वाले के तीव्र पाप का उदय है और उसकी भक्ति इतनी प्रबल नहीं है कि उससे तीव्र पाप में मन्दता आ सके, इससे भक्ति करने पर भी यदि संकट दूर न हो, तो भी उसे अश्रद्धालु नहीं बन जाना चाहिए। यह दोष उस आलम्बन का नहीं है । इस विषय में 'कल्याणमन्दिर स्तोत्र' के अन्तिम पद्य बहुत महत्त्वपूर्ण हैं; यथा—

'आकर्णि तोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि
नूनं न चेतासि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलान्ति न भावशून्याः।'

(हे भगवन् ! मैंने आपकी वाणी को सुना, आपको पूजा, और देखा भी किन्तु निश्चय ही भक्तिपूर्वक चित्त में धारण नहीं किया । इसीसे हे जनबन्धु ! मैं दुःख का पात्र बना; क्योंकि भाव-रहित क्रिया फलदायक नहीं होती ।)

जो स्त्री-पुरुष लौकिक कामनाओं को लेकर जिन-भक्ति करते हैं उनका मन भगवान् में न लगकर अपनी कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है; अतः उनकी सकाम भक्ति यथार्थ भक्ति नहीं होती । और इसी से उसका यथार्थ फल नहीं मिलता ।

इस विषय में 'विषापहार स्तोत्र' के अन्तिम पद्य बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कविवर धनंजय सर्प के विष से ग्रस्त अपने पुत्र की प्राण-रक्षा के निमित्त से भगवान् ऋषभदेव का स्तवन करके अन्त में कहते हैं : 'हे देव, आपकी स्तुति करके दीन बनकर मैं आपसे कोई वरदान नहीं माँगता; क्योंकि आप तो वीतरागी हैं। जो वृक्ष का आश्रय लेता है उससे स्वतः छाया मिल जाती है तब वृक्ष से छाया देने की प्रार्थना करने से क्या लाभ ? किन्तु यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मेरी भक्ति आप में ही रहे, इतना ही मैं चाहता हूँ। जो जिन-भक्ति के महत्त्व को समझता है वह इसके अतिरिक्त कुछ माँग नहीं सकता । वही तो संसार के कष्टों से छुड़ाने वाली है।

'एकीभाव स्तोत्र' में कहा है–

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलविहितो योऽनवाप्यः परेषाम् ।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद् भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्धप्रकृति परुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ।।

(हे देव ! जो आत्मज्योति रूपी निधि अमर्याद है और दृष्ट पुरुष के आनन्द का कारण है; किन्तु कर्मबन्ध रूपी पृथ्वी के पटल से छिपी हुई है और जिसे दूसरे प्राणी प्राप्त नहीं कर सकते, उस आत्मज्योति रूपी निधि को आपके भक्तजन कर्मबन्ध-रूपी कठोर पृथ्वी को खोदने के लिए फावड़े के समान स्तोत्रों से जल्दी ही अपने हाथ में करते हैं; अर्थात् आपके स्तवन से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, जो मोक्ष का द्वार है।)

प्रारम्भ में जिन-भक्तों के द्वारा ही मोक्ष का द्वार खुलता है । 'एकीभाव स्तोत्र' में कहा है–

शुद्धे ज्ञाने शुचिति चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नोचेदनवधि सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम् ।
शक्योद्घटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो
मुक्तिद्वारं परिदृढ़महामोहमुद्राकवाटम् ।।

(शुद्ध ज्ञान और पवित्र चारित्र के होते हुए भी यदि अनन्त सुख को

प्राप्त कराने की आपकी भक्ति नहीं है तो मुक्ति के इच्छुक पुरुष का मुक्ति का द्वार खोलना कैसे शक्य हो सकता है, क्योंकि मुक्ति के द्वार पर अत्यन्त दृढ़ महा-मोह रूपी मुद्रा (सील) से अंकित कपाट लगे हुए हैं।)

अत: सच्ची जिन-भक्ति के बिना दर्शनमोह हट कर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती; अत: श्रावक के लिए सच्ची जिन-भक्ति ही कल्याणकारी है। सब संकल्प-विकल्प छोड़कर दु:ख में, सुख में एकमात्र जिनेन्द्रदेव का ही स्मरण करना चाहिये। जो जैन कुल में जन्म लेकर और जिन भगवान् के भक्त होकर भी अन्य देवों को भजते हैं उन्हें देखकर सखेद आश्चर्य होता है, क्योंकि मिथ्यात्व से निकालने वाले एक मात्र जिनेन्द्रदेव ही हैं, उनकी वीतराग प्रशान्त मुद्रा को देखकर ही मन शान्त हो जाता है। सच्चे जिन-भक्त का मन अन्यत्र जा नहीं सकता। 'भक्तामर' में ही कहा है–

मन्येवरं हरिहरादय एव दृष्टा:
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवतो भुवि येन नान्य:
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि॥

(हे नाथ! मैं समझता हूँ कि हरि-हर आदि देवों को देखना ही ठीक है; क्योंकि उनको देखने के बाद उचटा हुआ मन आपको देखकर सन्तुष्ट हो जाता है; किन्तु आपको देखने से मन ऐसा जकड़ जाता है कि जन्मान्तर में भी कोई देव मन को नहीं भाता।)

जिनेन्द्रदेव का स्तवन करते समय मन सावधान होना चाहिये, दृष्टि जिन-बिम्ब के मुख-कमल पर बद्ध होनी चाहिये। आँखों में आनन्द के आँसू झरते हुए हों, शरीर आनन्द से रोमाञ्चित हो और कण्ठ गद्गद हो। इस रूप में स्तवन करने से निश्चय ही स्वर्ग का सुख भोगने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

अत: आज के युग में सच्ची निष्काम जिन-भक्ति ही उद्धार में एकमात्र सहायक हो सकती है। भले ही सकाम भावना से भगवान् महावीर को भजिये, किन्तु घोर कष्ट में भी उन्हें छोड़कर किसी अन्य देव की शरण में मत जाइये।

यह मत भूलिये कि जो जिनेन्द्र का स्वरूप है, वही स्वरूप यथार्थ में आपका भी है; अत: जो अरहन्त के स्वरूप को जान लेता है वह अपने स्वरूप को भी जान लेता है; अत: जिनदेव के मन, वचन, काय से सच्चे आराधक बनिये। उनकी झूठी चापलूसी मत कीजिये, सच्ची भक्ति कीजिये। जिन-बिम्ब के पैर दबाना आदि भक्ति नहीं है, चापलूसी है। उनके गुणों को जानकर सच्चे अनुरागी बनिये। उनसे किसी तरह का व्यापार मत कीजिये। व्यापार के लिए जगत् पड़ा है। धर्म व्यापार की वस्तु नहीं है। □□

वन्दना

आज तुम्हारी स्वर लहरी से, जग में नयी चेतना आई ।
जड़-चेतन के अंग-अंग में, छाई रम्य बसंत निकाई ।।
हृदय-द्वार पर, आज तुम्हारी, देती है पद-चाप सुनाई ।
धरती-अम्बर के आंगन में, छिटकी अनुपम शरद जुन्हाई ।।१।।

जीवन की उलझी गाँठें सब, तुमने पल भर में सुलझाई ।
अंतस्थल से लोप हो गई, दुष्प्रवृत्तियों की परछाई ।।
जन्म-जन्म के तृषित हृदय में, बहने लगी ज्ञान की धारा ।
किस विधि वन्दन करूँ आज मैं, विश्व-वंद्य जिनराज तुम्हारा ।।२।।

बीन-बीन कर पथ के काँटे, तुमने मंजिल को दुलराया ।
जीवित साँसों के सरगम पर, प्राणों का संगीत सुनाया ।।
देते रहे जन्म से ही तुम, तिमिर-पुंज को खुली चुनौती ।
डूब-डूब गहरे में लाये, आत्म-ज्ञान के सच्चे मोती ।।३।।

जीवन-कला पुस्तिका के तुम, बिखरे पृष्ठ जोड़कर लाये ।
मानसरोवर के हंसों को, मानस के मोती चुगवाये ।।
हँस कर पिया हलाहल तुमने, पर जग को दी अमृत-धारा ।
किस विधि वन्दन करूँ आज मैं, विश्व-वंद्य जिनराज तुम्हारा ।।४।।

□ **बाबूलाल जैन 'जलज'**

(बातचीत–2 : पृष्ठ 158 का शेष)

एक अपूर्व अवसर प्रदान किया है। उनके इस मार्गदर्शन के लिए जैन समाज ही नहीं, सारा विश्व आचार्यश्री का बहुत बड़ा ऋणी है; उन्होंने इस स्तोत्र की रचना द्वारा तत्त्व और सत्त्व दोनों को प्रकाशित किया है।

ने. : बहुत-बहुत कृतज्ञ हुआ आपका मुनिश्री; 'भक्तामर' के बारे में आपने बहुत सारी बातें बतायीं। अन्त में आपको एक विशेष बात और बताऊँ कि मानतुङ्गाचार्य ने भक्तामर स्तोत्र की रचना शक्वरी जाति के वसन्ततिलक वृत्त में की है। शक्वरी का अर्थ होता है, बैल। ऋषभनाथ का चिह्न भी बैल यानी वृषभ है; सम्भव है, इसीलिए उन्होंने इस छन्द को अपनाया हो।

ज. : यह भी हो सकता है।

ने. : चौदह वाली बात तो बहुत अद्भुत है। आपने चौदह से इसे जोड़ा।

ज. : कोई-न-कोई तथ्य तो है ही। मर्म उन्हें छू गया और उस मर्म को उन्होंने छुआ या उस मर्म को उन्होंने पकड़ा। मर्मयुक्त छन्द में उन्होंने सरस्वती को गाना पसन्द किया। □□

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

एक श्लोक : सत्तर पद्यानुवाद

१६४४ ई.–१९८१ ई.

अनुवाद-भाषाएँ :

हिन्दी (भाषा); खड़ीबोली; गुजराती–नयी, पुरानी; राजस्थानी; मराठी; कन्नड़; अंग्रेजी

प्रस्तुतिः पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद'

"

अनुवादक की स्थिति काफ़्का को† तथा-
कथिक नागरिक-जैसी है ।
यह नागरिक दो साँकलों से बँधा हुआ है ।
एक साँकल का संबन्ध धरती से है तो
दूसरी का धरती-पार के प्रदेश से ।
जैसे ही वह एक दिशा में पग उठाता है,
दूसरी साँकल खनक उठती है और उसकी
गति अवरुद्ध हो उठती है ।
अनुवादक भी ऐसी ही दो साँकलों में जकड़ा
हुआ है ।
एक साँकल कहती है : मूल का आदर
करो, उसे बाअदब सलाम करो,
तो दूसरी इंगित करती है-
कुछ नया करो, इसमें से भी पुनर्निर्माण
करो ।

—स्टेनली कुनीत्झ़

† काफ़्का फ्रान्ज़, आस्ट्रियन लेखक, 1883-1924

१. स्त्रीजन शत सुत जनमहिं, तुझ समान नहिं कोई।
और दिशा तैं नखित बहु, पूरब सूरज होई।।

—कवि जयसागर/१६४४ ई. (?)/हिन्दी/दोहरा-चौपाई

२. अनेक पुत्रवंतनी नितंबिनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और मात तैं प्रसूत है।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै।।

—हेमराज पांडे/१६७० ई./जयपुर : प्रकाशन-१९०७ ई./लाहौर/हिन्दी

३. नारिन कै वृन्द पैंतारीस लाख योजन मैं,
सम‍ै समै असंख्याते जने सु बात सही है।
जननी न जन्यो आन कोऊ नर तो समान,
जाके गुन ज्ञान तेरी उपमानि बही है।।
ज्यों दिसि विदिसि विषै तारा की असंख लखै,
सूर जनिवे को साची प्राची एक यही है।
ऐसे ज्ञान-भान प्रभु प्रताप निधान जिन,
माता सो तो त्रिलोक माझि मरुदेवा कही है।।

—आनन्दवर्द्धन/हिन्दी/सवैया-इगतीसा

४. स्त्रीनि विषैं शत सहस्त्र सुतनि को जनति नारि बहुतेरी।
ना तोसो सुत अरु उंपमा को न जननी अरु केरी।।
नहिं दिशि ग्रह गन उदित होत सब गगन मध्य अवलोई।
एक पूर्व दिशि सहस कलाधर जननि भान को सोई।।

—पं. विनोदीलाल/१६९० ई./हिन्दी

५. धन्य वह घड़ी जिहि तेरो अवतार भयो,
धन्य तेरी माता जिहि तो सौ सुत जाइयौ।
जगत में त्रियानि के शत पुत्र जनै हू है,
तौ तेरो समान को का रूप गण पाइयौ।।
कलंक सहित और रहित कलंक तु ही,
त्रय ज्ञान तेरैं गरभावतार आइयौ।
'घनुदास' दिशा नक्षत्र जनन हारी,
प्राचीव दिशा क्यों सम जाए रवि राइयौ।।

—पं. घनदास/ईसा की १७वीं सदी/बुन्देलखण्डी/कवित्त

६. पृथ्वीवरी असति कामिनि पुत्रखाणी
त्वत्तुल्य पुत्र न जने जननीच कोण्ही।
सर्वा दिशा धरिति सव उडूच पोटीं
पूर्वा दिशा प्रसवते रवि ते च मोठी ।।

—कवि जिनसागर/१७ वीं सदी का अन्त/मराठी/समश्लोक

७. वीतराग धन धन तूं, धन मारुदेवी माता;
जायो पुत्र रतन तूं, त्रिभुवन विख्याता ।।वीतराग०
लाख गर्भ नारी भली लाख पुत्र प्रसूता
तो सम और न खलक में जन्म्या नहिं पूता ।।वीतराग०
आठौ दिशे ग्रह गन धरै; सहस किरनन राता
उदय होत पूरव दिशा, देव प्रभु गुण गाता ।।वीतराग०

—देवविजयजी/१८८४ ई./हिन्दी/रागमाला-संयुक्त

८. नारि अनेक अनेक सुत जनै, तुम पटतर सुत जन्म्यौ किनै।
पूरव दिशि रवि प्रसवै पूत, तारा मंडल चहुँदिसि हूत ।।

—ज्ञानमेरु/१९ वीं शताब्दी/हिन्दी

९. अहैं सैकड़ों सुभगा नारीं, जो बहु सुत उपजावैं ।।
पै तुम सम सु-पूत की जननीं, यहाँ न और दिखावैं ।
यद्यपि दिशि विदिशाएँ सिगरीं, धरैं नछत्र अनेका।
पै प्रतापि रवि को उपजावै, पूर्व दिशा ही एका ।।

—नाथूराम 'प्रेमी'/देवरी/१९११ ई./हिन्दी

१०. सदा सैकड़ों सुभगा नारीं शिशु समूह को निर्मातीं,
प्रभु सम सुत न प्रसव कर सकतीं जननि न प्रभु की बन पातीं ।।
देखी सुन्दर दिश, विदिशाएँ रंग पलटे नक्षत्र अनेक,
करे प्रकाश प्रभात सूर्य को माता पूर्व दिशा ही एक ।।

—पीताम्बरदास गुप्त/१९२० ई./हिन्दी

११. जगत के बीच अनेकों मात, प्रसव करती हैं पुत्र जिनेश !
किसी माँ ने न किया उत्पन्न, आप के सम पर, सुत-राकेश।
दिशायें सारी धरती हैं, सितारों का प्रभु उजियाला।
किन्तु प्राची ही प्रकटाती, दिवाकर सहस रश्मि वाला।

—अमृतलाल 'चंचल'/१९३७ ई./हिन्दी

१२. या शेंकडो युवति पुत्र जनीत धन्य
माता तुझ्यासम सुता सवली न अन्य।
तारागणां धरिति सर्व दिशा अपूर्व
तेजाल सूर्य सवते परि तींच पूर्व।

—कवि हिराचंद तलकचंद शहा/१९३८ ई./कोरेगाँव/मराठी

१३. हैं सैकड़ों युवतियाँ बहु पुत्र वाली—
माँ एक है कि जिसने तुझको जना है।
नक्षत्र जाल बहु सर्व दिशा उठाती,
देदीप्यमान जननी रवि एक प्राची ।।
—पं. लक्ष्मणजी अमरजी भट्ट/१९३९ ई./गरोठ/हिन्दी/समश्लोक

१४. यदपि अवनितल पर महिलाएँ
नित शत बालक जनतीं हैं।
किन्तु आप सम अनुपम हीरक
जननि न सब जन सकतीं हैं।
यथा निशा में सर्व दिशायें
धारण करतीं तारक दल।
पर प्रभात में विमल प्रभाकर
प्राची दिश ही जनती है ।।
—नाथूराम डोंगरीय 'अवनीन्द्र'/१९४० ई./बिजनौर/हिन्दी

१५. सौ सौ नारी सौ सौ सुत को जनती रहती सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली जननी महती क्या है और?
तारागण को सर्व दिशाएँ धरें नहीं कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी दिनपति को जनने वाली ।।
—कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'/१९४१ ई./खुरई/हिन्दी

१६. जननि अनेकों हैं प्रसूतनी और अनेकों पुत्र महान।
किन्तु आप सी जननी न दूजी, और आप सा पुत्र न आन ।।
दिशा और विदिशाएँ सारी बनी नक्षत्रों की आधार।
पूर्व दिशा ही एक अनोखी दिनकर को देती अवतार ।।
—ब्र. प्रेमसागर पंचरत्न/१९४६ ई./रैपुरा, पन्ना/हिन्दी

१७. अगणित माताएँ शत-शत,
शिशुओं से भरती अवनी,
तुझ से पुत्र-रत्न से शोभित,
थी पर तेरी ही जननी।
दिग्-माताएँ पैदा करतीं,
लक्ष-लक्ष हैं तारक बाल,
पर प्राची की रुचिर गोद में,
खिलता है रवि हीरक थाल ।।
—प्रेमलता 'कौमुदी'/१९५० ई./दमोह/हिन्दी

१८. सब नारीं जनती सुत घने–
पर तुम से सुत नाहीं जने।
सर्व दिशा से तारे मान!
किन्तु पूर्व दिश ऊगे भान।।

—महामुनि क्षीरसागर/१९५२ ई./झाँसी/हिन्दी

१९. है नितंबनी बहुत बहुत सुत सबके होई।
तो समान सुत मात और जनि है नहीं कोई।।
उड़गन धरत अनेक दिशा विदिशा जे सारी।
जनत पूर्व दिशि एक दिवाकर तम अनिवारी।।

—नथमलजी/१९५६ ई./हिन्दी

२०. सत सत जननी अनंत भुव लोक मांझ,
सत सत पुत्रनि को विविध जनति है।
तो समान आन उपमान न पुमान ओर,
तुव जननी समान और नाहीं होत है।।
जैसे नभ-मंडल में दसों दिसि तारागण,
उदय करत नहि कारज सरत है।
दिनकर सहस किरनि सों उद्योत होत,
पूरब ही दिशि एक सुधी यो भनत है।।

—गंगारामजी/१९५७ ई./हिन्दी

21. A constellation in all directions appears,
It is only the east which the sun bears.
Hundreds of suns other mothers bear,
A son like you is your mother's share.

—भगवानदास जैनी/११५७ ई./लखनऊ/अंग्रेजी

२२. स्त्रिया शेकडो प्रसवंति लोकीं अनेक-शत-पुत्रा।
न अन्य जननी प्रसवे त्वत्सम पुत्रा गुणमित्रा।।
धारण करिती असंख्य तारा-गणास सकल दिशा।
जगत्प्रकाशी प्रसवे सूर्या एकचि पूर्वाशा।।

—वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री/१९५९ ई./मराठी

२३. ये, सैकड़ों ही पुत्र जनतीं, सैकड़ों ही नारियाँ।
तुम-सा न जनती पुत्र कोई, अन्य दूजी माइयाँ।।
नक्षत्र तो धरती दिशाएँ, सर्वदा ही सर्व ही।
पर अंशुमाली सूर्य को, जनती दिशा है पूर्व ही।।

—पं. गोविन्दराय जैन शास्त्री/१९६१ ई./महरौनी/हिन्दी

२४. सुपूत को प्रसूत दें अनेक वाम लोचना
जनैं अहो कृशोदरी प्रभू समान पूत ना।
ग्रहादि तारिकामयी दिपैं प्रभो! दिशा-दिशा
सहस्र रश्मि पुंज को जनैं सु-पूर्व ही दिशा।।

—पं. चुन्नीलाल जैन/१९६२ ई./उज्जैन/हिन्दी

२५. सौ-सौ जनी जन रहीं सुत सैकड़ों ही,
तेरे समान जनती जननी न दूजा।
तारे सभी दिशि जगें पर अंशुमाली—
आदित्य को जन सकी बस एक प्राची।।

—मांगीलाल जैन/१९६३ ई./अलवर/हिन्दी

२६. वा! शेंकडों इतर पुत्रवती स्त्रियांत
माता क्वचित् सुत तुझ्यासम हो प्रसूत।
नक्षत्र-पुंज चमके सगळ्या दिशांत
हो सूर्य त्या उगवती सच कांतिवंत।।

—जयकुमार नेमिनाथ क्षीरसागर/१९६३ ई./मराठी

२७. स्त्रियाँ हजारों जनें सुतों को किन्तु आपकी मा ही धन्य,
जिसने जना आपको जग में, तुम सम नहीं दूसरा अन्य।
सभी दिशाएँ तारे धरतीं मिलै न जिनसे भव्य प्रकाश,
दश शत किरण सूर्य को जनती केवल पूर्व दिशा जग भास।।

—पं. इन्द्रलाल शास्त्री/१९६४ ई./जयपुर/हिन्दी

२८. कोटि कोटि माताएँ जग में जनती हैं नित पुत्र अनेक,
पर तुझ जैसे अनुपम सुत की अन्य न दिखती जननी एक;
सभी दिशाएँ तारक-दल से शोभित होती हैं बहु भाँति,
है पर प्राची एक दिशा ही जो जनती है दिनकर कान्ति।।

—रतनलाल जैन/१९६४ ई./दिल्ली/हिन्दी

२९. सैकड़ों हैं नारियाँ सुत सैकड़ों को जन्म दें।
धन्या है जननि एक वह जिसके उदर प्रभु जन्म लें।।
दसहों दिशा तारागणों से नभ प्रकाशित कर रहीं।
प्राची दिशा वह एक जो रवि उदित कर तम हर रही।।

—चुन्नीलाल डोंडिया/१९६४ ई./प्रतापगढ़/हिन्दी

३०. जनती नारि सैकड़ों पुत्रों को इस पावन धरती पर।
किन्तु अन्य जननी जन सकती कभी न तुम सा सुत सुन्दर।।
जैसे सभी दिशायें तारों को ही धारण कर सकती।
पैदा करती प्राची दिशि दीप्त सूर्य को प्रति वासर।।

—सत्यव्रत 'अजय'/१९६५ ई./ब्यावर/हिन्दी

३१. यद्यपि अन्य दिशाएँ हैं, पर पूर्व दिशा अति प्रियकारी।
वो ही देती जन्म सूर्य को, प्रकाश पाते सनसारी।।
इसी तरह हे नाथ जगत में जननी पद सब ने पाया।
पर तेरी माता ने ही जग में तुझ सा पुत्र-रत्न जाया।।

—जीत कवि/१९६५ ई./हिन्दी

३२. जग में जननियाँ जन्म देती हैं अनेकों पुत्र को।
पर आप के सम प्रसव कर पाई न पूर्ण पवित्र को।।
तारागणों का धारती सब दिशा पूर्ण प्रकाश है।
रवि किन्तु करती प्रकट प्राची, तम करे जो नाश है।।

—के. एल. सेठी/१९६७ ई./हिंदी

३३. स्त्री सैकडों प्रसवती कदि पुत्र झा झा,
हे अन्य को आप सम जो प्रसवै जनेता।
तारै अनेक धरतीज दिशा बँधी अे,
स्फुरै दिव्य रवीने प्रसवैज पूर्वे।।

—हरजीवन रायचन्द्र शाह/१९६८ ई./गुजराती

३४. माताओं ने अनन्ते पुत्रों को जन्म देकर,
आलम को है बसाया जनती है पुत्र घर घर।
है कौनसी वह माता मरूदेवी की हो हमसर,
जो तीन ज्ञानधारी तुम सा जने आदीश्वर।
रोशन दिशा हैं सारी गो सूर्य की प्रभा से,
पूरव ही की दिशा है सूरज को जो उदय दे।।

—दिगम्बर प्रशाद जैन 'वीर'/१९६९ ई./हिन्दी

३५. सुतास जरि शेंकडो जनति त्या स्त्रिया भूतलीं।
तुझ्यासम सुता दुजी प्रसवु ना शके माउली।।
सहस्रकर तो प्रकाशवि दिशेस साऱ्या जरी।
सतेज रविले दिशा जनत एक प्राची तरी।।

—मोतीचंद हिराचंद/१९६९ ई./औरंगाबाद/मराठी/पृथ्वीवृत्त

३६. हैं शतशः माताएँ ऐसी, जो शतशः ही पुत्र जनें।
कौन जगत में जननी है जो, तुझ से सुत की मात बने?
प्रत्येक दिशा ताराओं को ही, निश दिन प्रकट किया करती है।
आलोक पुंज रवि को तो केवल, प्राची जन्म दिया करती है।।

—तिलकधर शास्त्री/१९७०/लुधियाना/हिन्दी

३७. निज-निज सुत को जन्म सदा, देतीं हैं माताएँ सब,
आप सदृश सुत को देती है, जन्म अन्य माता कब?
सभी दिशायें दिशापने तो कहलाती साधारण,
करती पूर्व दिशा ही रवि के प्रकटपने को धारण।।

—पं. गुणभद्र जैन 'कविरत्न'/१९७१ ई./हिन्दी

३८. कोटि पूत जनती मातायें
तुम समान सुत एक न जाया।
तारे जनती सभी दिशायें
प्राची ही ने रवि उपजाया।।

—गुलाबचन्द जैन/१९७१ ई./लखनऊ/हिन्दी

३९. विश्वभर में इस जगत में नारियों ने जना है।
पर नहीं तुम सा अनूपम पुत्र उनने जना है।।
सब दिशाएँ विविध नक्षत्रों को धारण किये हैं।
सूर्य को प्राची दिशा ही पर सदा गोदी लिये है।।

—शेखरचन्द जैन/अप्र. १९७४ ई./तलाजारोड, भावनगर/हिन्दी

४०. नारियों में आपकी जननी पवित्र अनन्य है।
सूर्य की पहली किरण से पूर्व दिक् ज्यों धन्य है।।

—स्थानक मुनि रामप्रसाद/१९७४ ई./हिन्दी

४१. माँ सैंकड़ों जनत पुत्र भले अनेक
दूजी न माँ जन सकी तुझ-सा कहीं भी।
तारे असंख्य धरती सब ही दिशाएँ–
कोई न सूर्य बिन पूर्व दिशा धरे भी ।।

—पं. बालकृष्ण व्यास/१९७६ ई./उदयपुर/हिन्दी/समश्लोक

४२. स्त्रिओ आजे जगत भरमां सैंकडो जन्म आपे,
तारा जेवा अनुपम नहि पुत्र ने जन्म आपे।
नक्षत्रों ने विध विध दिशा धारती रे अनेक,
किन्तु धारे रवि किरण ने पूर्व दिशा ज एक ।।

—मावजी दामजी शाह/१९७७ ई./गुजराती/समश्लोक

४३. असंख्य पुत्र दिये हैं इस संसार को वनिताओं ने।
आप जैसा ज्योति-पुत्र नहीं दिया माताओं ने।।
असंख्य नक्षत्रों का होता है उदय आकाश में।
प्राची से ही किन्तु आता है अरुण आकाश में।।

—मुनि रामकृष्ण/१९७८ ई./हिन्दी

४४. माता अनेक जनती, प्रभु पुत्र तो अनेकों।
तेरे समान सुत को अबलौं जनी न एकों।।
चारों दिशा धरे हैं, रवि की प्रचंड किरणें।
पर सूर्य को उगाहे इक पूर्व ही दिशा ने।।

—माणिकचन्द काला/१९७८ ई./हिन्दी

४५. स्त्रियाँ सैंकड़ों जनती हैं प्रतिदिन सुन्दर सुन्दर बालक।
पर तुम जैसा कोई माता जन सकी नहीं सुत प्रतिपालक।।
जैसे नक्षत्र उगा करते नित लाखों अन्य दिशाओं में।
पर चमकदार सूरज उगता केवल पूरब की बाहों में।।

—हज़ारीलाल काका/१९७९ ई./सकरार/हिन्दी

४६. देव ! हज़ारों स्त्रियाँ हज़ारों पुत्रों को पैदा करतीं।
किन्तु आप जैसा पुत्र-रत्न तो नहीं भेंट कोई धरती।।
तारों को पैदा करने वाली तो सभी दिशाएँ हैं।
किन्तु पूर्व दिशि है केवल जिसने रवि दर्श कराये हैं।।

—मुनि छत्रमल्ल/१९७९ ई./हांसी/हिन्दी

४७. लाखों सुपुत्र जनतीं शत संख्य नारी,
कोई नहीं जन, सकी तुम सा सुपुत्र।
तारा समूह धरतीं सब ही दिशाएँ,
है सूर्य बिम्ब-जननी बस एक प्राची।।

—पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री/१९७९ ई./खुरई/हिन्दी

४८. जन रहीं देखो जननियाँ सैकड़ों सुत कर रमण।
दिशा प्राची जननि सी बढ़ाती रवि संस्करण।।

—लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'/१९७९ ई./जावरा/हिन्दी

४९. असंख्यात सुत जनती जग में जन्म-दात्रियाँ सार-असार।
किन्तु आपसा पुत्र जन सकी एक मात्र मरुदेवी नार।।
अगणित झिलमिल नक्षत्रों की सर्व दिशाओं में भरमार।
किन्तु एक पूरब प्राची ही कर पाई रवि से श्रृंगार।।

—कल्याणकुमार 'शशि'/१९८० ई./रामपुर/हिन्दी

५०. सब नारी जनती सुत घने, पर तुम से सुत नाँही जने।
सर्व दिशा से तारे मान, किन्तु पूर्व दिशि ऊगे भान।।

—मुनिश्री सन्मतिभूषण/अप्र. १९८० ई./हिन्दी

५१. जणे पूत सारी जग नारी, भारी रूप लियां हरखात।
कणी न माता जायो जायो, आप जश्यो सोनारी रात।।
भलां दिशा उजली व्हेवे सब सूरज शूं निश दिन मन भाय।
पण वो उगे पूरव में ही नी पश्चिम में उग्गो जाय।।

—पं. गिरधरलाल शास्त्री/१९८१ ई./उदयपुर/मेवाड़ी

५२. आदिनाथ के श्रीचरणों में सादर शीश झुकाता हूँ।
भक्तामर के अभिनन्दन की मंगल गीता गाता हूँ।।
यहाँ सैकड़ों महिलाएँ
बनती रहतीं माताएँ
सौ-सौ बालक जनती हैं
पुनः प्रसूता बनती हैं
किन्तु आपकी माता सी
भगवत् जन्म प्रदाता सी
नहीं दूसरी होती हैं
मंगल प्रसव सँजोती हैं

सभी दिशाएँ विदिशाएँ
नभ का आँगन चमकाएँ
टिम-टिम नभ के तारों से
गोदी भरी हजारों से
किन्तु एक तेजस्वी को
सूरज से ओजस्वी को
पूर्व दिशा ही जनती है
सच्ची माता बनती है
मानतुंग मुनिवर की कृति को भक्ति-प्रसून चढ़ाता हूँ।
उनके भावों की यह माला भक्तों को पहनाता हूँ।।

—फूलचन्द 'पुष्पेन्दु'/१९८१ ई./खुरई/हिन्दी

५३. सैकड़ों हैं नारियां,
जो पुत्र सौ-सौ प्रसव करतीं
हर दिशा-विदिशा गगन का
प्रांगण तारों से भरतीं.
किन्तु सूरज सा प्रतापी
पुत्र पूरब ही उगाती
आदि प्रभु की जन्मदात्री-
मात्र मरु सौभाग्य पाती
उस जननि के पुत्र की ही
वंदना मैं कर रहा हूँ
अर्चना मैं कर रहा हूँ।।

—शीलचंद 'शील'/१९८१ ई./खुरई/हिन्दी

५४. जामण पूत घणां जाया, पण—
थारा जस्यो एक नी जायो।
तारा दिसा उगावे सगळी—
पण सूरज पूरब सूं आयो।।

—विपिन जारोली/१९८१ ई./कानोड़/राजस्थानी

५५. स्त्रियाँ सौ सौ
जनमतीं
पुत्र सौ सौ
किन्तु

सुत
तुम-सा
न कोई
जनम पायी।
नखत
नाना धारतीं
सारी दिशाएँ
किन्तु
प्राची ही जनमती
सूर्य को तो।

—नेमीचन्द जैन/१९८१ ई./इन्दौर/हिन्दी

५६. बइरो हजारो सुत प्रसूता पण तमारा समकक्ष नो
नथी जन्म आप्यो अन्य सुत जेतांव लक्ष्य प्रत्यक्ष नो
दिशि विदिशि मां ज्यम घणा तारा ग्रह नक्षत्रो उदित छे
पण सूर्य ने उपजाववा प्राची दिशि ज समर्थ छे।।

—भंवरलाल नाहटा/१९८१ ई./कलकत्ता/गूर्जर भाषा/हरिगीत छन्द

५७. अगणित पुत्र प्रसूत किया करती हैं अगणित मातायें।
किन्तु न उनमें शक्ति आप सम महापुत्र को उपजायें।।
सर्व दिशाएँ अगणित तारों को नित ही उगला करती।
पर वह तो प्राची ही है जो गोद प्रभाकर से भरती।।

—अक्षयकुमार गंगवाल/हिन्दी

५८. स्त्रिओ भलो प्रसवती सुत कै अनेका,
त्यारा समो न प्रसव्योह जु पुत्र अेका।
धारे भले हि किरणों सर्व दिशे तथापि,
प्राचीज येक प्रसवे रवि तेज राशी।

—अज्ञात/गुजराती

५९. नारी मुलां प्रसवती शतशो जगांत
त्वत्तुल्य पुत्र न दुजी जननी प्रसूत।
त्या पोषिती इतर सर्व दिशा प्रभेला
प्राची दिशा प्रसवते परि भास्कराला।।

—पं. कल्लापा अनंत उपाध्याय अनंत तनय शास्त्री/नातेपुते/मराठी

६०. कोटि कोटि महिलाएँ जग में सत् पुत्रों को पैदा करतीं
मरुदेवी बिन तुम सा कोई पुत्र उदर में नहिं धरती
सभी दिशाएँ धारण करतीं कोटि-कोटि शुभ तारों को
पूर्व दिशा ही धारण करती है सहस्र रश्मि के धारी को ।।

—कृष्णलाल वर्मा/हिन्दी

६१. जगदो ळेनिवरो पेण्गलिरुतिह–
रगणितद सुतरुगल पडेवरु।
निगम कोविद निन्न सातियनारु पडेवरला।
गमनमणियं पडेव भाग्यवु
मुगुधे मूडल रमणीगल्लदे
मिगुल दिक्कु गलेल्ल तारानिवहमं पडेवर ।।

—के. एस. धरणेंद्रय्य/बैंगलोर/कन्नड़/चाल–भामिनि षट्पदि

६२. मायें अनेक जनती सुतों को,
है किन्तु वे न तुझ से सुत की प्रसूता।
सारी दिशा धर रही रवि का उजेला,
पै एक पूरव दिशा रवि को उगाती ।।

—गिरिधर शर्मा/हिन्दी

६३. या जग माँहि सुमात घनी पै, तो सम कोऊ न पूत जन्यो है।
जा नभ माँहि उडुगण कोटिक, तेज प्रताप तो हु न बन्यो है ।।
प्राची दिशि इक सु मात्र भली, जोने तम नाशक भानु ठन्यो है।
लाख की बात जु एक सही, जग-पालक तो तुही जु भन्यो है ।।

—पं. धर्मचंद शास्त्री/अलवर/हिन्दी

६४. माँ सैकड़ों जनम दे सुत सैकड़ों को,
पै अन्य माँ जन सके तुझ सा न कोई।
तारे असंख्य प्रकटे सब ही दिशा में,
पै सूर्य की जननि तो दिशि पूर्व ही है ।।

—बालमुकुन्द जोशी 'मुकुन्द'/कानोड़/हिन्दी/समश्लोक

६५. —भोलानाथ दरख्शां/उर्दू/अनुपलब्ध

६६. लक्षावधि प्रसवती सुत लक्ष कान्ता–
त्वत्तुल्य ना प्रसवली सुत अन्य माता।
तारे किती प्रसवती सकला दिशा या–
पूर्वाच ती प्रसवते स्फुरदंशु सूर्या ।।

—कवि मकरन्द/मराठी

६७. नारी अनेक शत पुत्र प्रसूत दाता,
ना तो समान जग में दीखे जु माता।
तारे दशों दिशनि में उगि हैं अनेका,
पै तेज सूरज धरै दिशि पूर्व एका।।

—मित्रसेन/अप्र./दिल्ली/हिन्दी

६८. ये सैकड़ों ही पुत्र जनतीं सैकड़ों ही नारियाँ।
तुम सा न जनती पुत्र कोई अन्य दूजी माइयाँ।।
नक्षत्र तो धरतीं दिशायें सर्वदा ही सर्व ही।
पर अंशुमाली सूर्य को जनती दिशा है पूर्व ही।।

—रमेश जैन/बरेली/हिन्दी

६९. पुत्रवती महिलाएँ लाखों जग में सुत जनने हारी।
किन्तु न तो सम पुत्ररत्न जन कर हैं धन्य हुई नारी।।
जैसे सहस्रांशु की किरणें सभी दिशाएँ चमकाती।
पै प्राची दिशि ही दिनकर की जन्मदात्री कहलाती।।

—मा. शकुनचन्द्र जैन 'भूषण'/अप्र./नवगाँवा, अलवर/हिंदी

७०. Hundreds mothers, but matchless one
Is the mother — begets you — son.
All the directions hold stars,
East is one that yields the sun.

—शिव विश्वकर्मा 'प्रशान्त'/खुरई/अंग्रेजी

□□

भक्तामर प्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमो वितानम् ।

□ गणेश ललवानी

'–मौलिमणिप्रभाणाम्' यात्रा मूलाधार से सहस्रार तक

भक्तामर प्रणतमौलिमणिप्रभाणा–
मुद्योतकंदलितपापतमो वितानम् · · ·

साधारणतया इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है– 'भक्त देवों के झुके हुए मुकुट-मणियों की प्रभा को जो चमकाते हैं, पापरूपी अन्धकार के प्रसार को जो नाश करते हैं · · ·।'

किन्तु इन दोनों वाक्यों के भाव में कोई सामञ्जस्य ही नहीं बैठता। देवताओं की मुकुट-मणि की प्रभा को विकसित करने के साथ पापरूपी अन्धकार के प्रसार के नाश का कोई सहज सम्बन्ध ही नहीं है। तो क्या यह केवल प्रशंसा-वाक्य है? मुझे तो ऐसा भी नहीं लगता; कारण, देव भी उन्हें प्रणाम करते हैं यह युगादिदेव के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता देवों की मुकुट-मणियों को चमकाने में उनका गौरव नहीं है; क्योंकि वह तो कोई साधारण मणिकार ही तराश कर कर सकता है। फिर मणि में एकवचन क्यों? मुकुट-मणि यदि इसका अर्थ है तो 'मणीणाम्' होना था। सोचने पर लगता है यह देवों के मुकुटों में लगी कोई साधारण मणि नहीं है; अपितु यह है भक्तों के मस्तक पर स्थित 'सहस्रार' जो कि तेजोमय सहस्रदल कमलरूप है। महायान में इसे मणिपद्म कहते हैं और 'हुँ' बीज से इसे जागृत करने का प्रयास किया जाता है जैसे 'ॐ मणिपद् में।' 'मूलाधार'-स्थित चेतना जब ऊर्ध्वारोहण करती हुई 'सहस्रार' में आती है तो पाप-रूपी अन्धकार का प्रसार स्वतः ही विनष्ट हो जाता है और साधक आत्म-स्वरूप में रमण करता हुआ अमर हो जाता है। हम यदि इस अर्थ को लें तो न केवल 'दलितपापतमोवितानम्' का अर्थ सुसंगत होता है बल्कि 'उद्योतकम्' चमकते हैं, जागृत करते हैं भी अर्थवान् हो जाता है।

'भक्तामर' अर्थात् 'जो भक्त को अमर करता है' यह शीर्षक भी सार्थक हो जाता है। (देखें चित्र १८२)। □

— डॉ. प्रेमसुमन जैन

भक्तामर-यात्रा-कथा

△ वस्तुत: स्तुति में भक्त इतना खो जाता है कि उसके नाम, गाँव, गोत्र सब विलुप्त हो जाते हैं। वह जगत् की संपत्ति हो जाता है। यही कारण है कि मानतुंग की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं है, होनी भी नहीं चाहिये। 20-25 मानतुंग साहित्य के इतिहास में अनायास ही मिल जाते हैं; इस तरह संज्ञा सर्वनाम बन जाता है/बन गया है।

△ स्तोत्र के छन्द ४८ ही क्यों? ४७ या ४९ क्यों नहीं? अथवा ४४ या ५२ क्यों, ४३ या ५३ क्यों नहीं? संभवत: मानतुंग इस बहाने कोई गहरी बात कहना चाहते हों। वे नहीं चाहते कि भगवान् के दरबार में आ कर भी विषमताएँ बनी रहें, संविभाग न हो; इसीलिए 'भक्तामर' के माध्यम से कोई भी २४ तीर्थंकर/२४ अवतार इन ४८ आत्माओं को अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ा सकता है।

मानतुंगाचार्य की जीवनी एवं उनके द्वारा रचित 'भक्तामर स्तोत्र' दोनों ही मध्ययुग की संस्कृति को उजागर करते हैं। अव्यक्त को कैसे व्यक्त किया जाए, यही मूल भावना इस स्तोत्र-रचना की पृष्ठभूमि है। आचार्य ने परमात्मा के गुणों को जन-सामान्य के समक्ष व्यक्त करना चाहा था, ताकि उनकी आत्मा भी अपने मूल गुणों के साथ उजाले में आ सके। वस्तुत: यह काव्य अंधेरे से उजाले में आने की घटना का काव्य है। कवि ने इसके लिए अनेक रूपकों/प्रतीकों का प्रयोग किया है।

इतिहास साक्षी है कि श्रमण-परम्परा पुरुषार्थ की परम्परा है। परमात्म तक पहुँचने का एक छोर है, ज्ञान; दूसरा छोर भक्ति है। ये दोनों – पुरुषार्थ और भक्ति, सदैव इस देश की भूमि में समादृत हुए हैं – आराध्य की प्राप्ति के लिए; किन्तु इनके स्वर भिन्न रहे हैं। भक्ति से प्राप्त होने वाला परमात्मा जहाँ एक-से-अनेक होना चाहता है, अवतार लेता है, भीड़ में खड़ा होता है, समर्पण को स्वीकार करता है, शरण देता है, भक्त की संतुष्टि के लिए नानारूप धारण कर कई चमत्कार करता है, वहाँ पुरुषार्थ – श्रम – तप से उपलब्ध होने वाला परमात्मा जन्मों के जाल को समाप्त कर एकाकी हो जाता है, उसकी यात्रा ऊर्ध्वगामी हो जाती है, वह अपने चारों ओर की भौतिक भीड़ को छोड़ देता है, उसका अभीत चित्त समर्पण और शरण की जगह परीषह और अशरण भावना को स्वीकार करता है। बिना कोई चमत्कार किये वह प्रकाशित हो जाता है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि उस परमात्मा और उसके आराधकों के अस्तित्व का प्रमाणपत्र मध्ययुग का कोई मनचला शासक, दरबारी, कवि माँग बैठे। इसका ही सटीक उत्तर है – मानतुंग और उनका यह 'भक्तामर स्तोत्र'।

स्तोत्र का चमत्कार से जुड़ना आवश्यक है; क्योंकि स्तोत्र व्यक्ति का काव्य नहीं है, भीड़ की पुकार है। भक्त की नाना इच्छाओं का विस्तार है वह; अत: उसका उत्तर भी उतना ही व्यापक और वैविध्य लिये होगा। यह स्वर मानतुंग

और उनके स्तोत्र में सर्वत्र सुनायी पड़ता है। मानतुंग ब्राह्मण, श्वेताम्बर, दिगम्बर इन तीनों परम्पराओं से जुड़े हुए हैं, और इससे सम्बन्धित जो कथाएँ हैं, वे भी यही कहती हैं कि प्रतिभा, कवित्व, भक्ति की कोई जाति नहीं होती; उन पर सब का समान अधिकार होता है। इसमें समय भी बाधा नहीं बनता। इसीलिए मानतुंग ६-७ वीं शताब्दी से १२-१३ वीं शताब्दी तक विचरण करते रहते हैं। वे महाकवि बाण, मयूर, कालिदास, माघ आदि सब के साथ प्रतिष्ठित हैं। इस धारणा का केवल यह अर्थ है कि उनका कवित्व इन में से किसी से कम नहीं है। ऐसे कवियों के लिए राजा विक्रमादित्य , भोज, हर्ष सब बराबर हैं। सभी प्रशासक कवित्व के आगे नतमस्तक हुए हैं।

वस्तुत: स्तुति में भक्त इतना खो जाता है कि उसके नाम, गाँव, गोत्र सब विलुप्त हो जाते हैं। वह जगत् की संपत्ति हो जाता है। यही कारण है कि मानतुंग की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं है, होनी भी नहीं चाहिये। २०-२५ 'मानतुंग' साहित्य के इतिहास में मिल जाते हैं; इस तरह वह संज्ञा से सर्वनाम बन जाता है। अन्यथा मानतुंग 'ऊँचे अभिमान' वाले का भक्ति से क्या सम्बन्ध? केवल इतना सम्प्रेषण कि ऊँचे-से-ऊँचा अभिमान भी भक्ति में हो जाता है। उसकी कोई पहिचान नहीं रहती। जैसे मानतुंगाचार्य की नहीं है।

महाकवि ने स्तोत्र के प्रत्येक छन्द को 'काव्य' कहा है। शब्द और अर्थ से समन्वित रचना को काव्य कहते हैं; अर्थात् स्तोत्र के छन्द मात्र शाब्दिक सूचनाएँ नहीं हैं। उनका स्थूल शरीर नहीं है। उनमें अर्थरूपी चित्त भी है और भक्ति-रस-रूपी आत्मा भी। ये छन्द काव्य के किसी एक अलंकार से बँधे हुए नहीं हैं। प्रत्येक छंद में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक के प्रयोग इस बात के द्योतक हैं कि परमात्मा इन्हीं तीनों माध्यमों से पहिचाना जा सकता है। जब हम उसे किन्हीं उपमाओं में बाँधते हैं, तब वह भक्त-भगवान् का रूप होता है; जब उसे उत्प्रेक्षाओं से घेरते हैं, तब वह काव्यपुरुष हो जाता है; और जब वह जगत् के पदार्थों में रूपायित होता है तब वह अध्यात्म-पुरुष हो जाता है। भक्ति, काव्य और दर्शन की यही त्रिवेणी 'भक्तामर स्तोत्र' में प्रवाहित है।

स्तोत्र के छंद ४८ ही क्यों? ४९ या ४७ क्यों नहीं? अथवा ४४ या ५२ क्यों, ४३ या ५३ क्यों नहीं? संभवत: मानतुंग इस बहाने कुछ गहरी शिक्षा देना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि भगवान् के दरबार में आकर भी विषमताएँ बनी रहें। संविभाग न हो। २४ तीर्थंकर /२४ अवतार इन ४८ दिव्य आत्माओं को कोई भी अपनी श्रद्धा-सुमन चढ़ा सकता है। मानतुंग के समताभाव या उनकी समदृष्टित्व का ही यह उदाहरण है कि इन ४८ छंदों में उन्होंने परमात्मा के जिन गुणों का स्तवन किया है वे किसी एक तीर्थंकर के नहीं हैं। अपितु सभी तीर्थंकरों की स्तुति इन छंदों से की जा सकती है।

मध्ययुग में स्थितियाँ इतनी सामन्ती थीं कि राजा जब तक कोई विलक्षण घटना, काव्य या दृश्य का साक्षात्कार नहीं कर लेता था, तब तक वह उससे प्रभावित नहीं होता था। अन्दर की आँखों की ज्योति इस युग में धुंधला गयी थी।

बाहरी आँखें अधिक प्रामाणिक हो गयी थीं। यही कारण है कि इस युग के चित्रकारों ने भी कान तक खिंची आँखें बनाना प्रारम्भ कर दिया था। इतनी बड़ी आँखों के लिए इतना बड़ा कौतुक ही संतोष दे सकता था। मानतुंगाचार्य ने स्तोत्र के प्रभाव से ४८ तालों व जंजीरों को स्वयमेव टूटने का चमत्कार प्रगट किया। भीड़ के लिए तो ताले टूटे थे, किन्तु आचार्य के लिए शायद यह कर्म-बन्धन टूटने की घटना थी; बाहरी जकड़न से मुक्ति का अहसास था; साध्य के लिए साधन का समर्पण था। इसी बात को व्यक्त करने के लिए रूपक कहता है कि आचार्य के पीछे स्थित मन्दिर उनके सामने उपस्थित हो गया था। भक्त जब भगवान् में लीन होगा तो भगवान् का निवास उसके सम्मुख ही रहेगा, पीछे नहीं। इस तरह के रूपकों की परम्परा जैन साहित्य में बहुत प्राचीन है ।

मानतुंगाचार्य के 'भक्तामर स्तोत्र' की महिमा किसी काल की सीमा में बँधी हुई नहीं है। शब्द-शक्ति व्यापक है। भक्त की तन्मयता से कई लोग प्रभावित हुए हैं। इसका उद्घाटन करती हैं–'भक्तामर स्तोत्र' से जुड़ीं अनेक कथाएँ। प्रत्येक छंद के प्रभाव को जताने वाली कथाएँ-घटनाएँ मिलती हैं। उनका विश्लेषण कथा-साहित्य, कर्म-सिद्धान्त आदि की कई गुत्थियाँ सुलझाता है; इनके सम्प्रेषण-भाव हैं– १. कठिन परिस्थितियों में रक्षा (साँप, अग्नि, सिंह, तूफान, युद्ध, कुए आदि से); २. रोग-निवारण (अधिकतर कुष्ठ रोग से); ३. धन-पुत्र-प्राप्ति; ४. वशीकरण (हाथी, सिंह, आदि); ५. विद्या-प्राप्ति; एवं ६. धर्म-प्रभावना। ये सभी उपलब्धियाँ सांसारिक हैं। भक्त का सम्बन्ध संसार से तब तक छूटता नहीं है, जब तक वह परमात्म का साक्षात्कार नहीं कर लेता; इसीलिए स्तोत्र के माहात्म्य को प्रगट करने वाली विभिन्न कथाएँ अस्तित्व में आयी हैं। कथाकारों ने एक विशेष बात की ओर इंगित किया है कि इन सभी प्राप्तियों में जो दैवी शक्ति सहायक हुई है, वह है स्त्री-चित्त। इन कथाओं में भक्तों की मदद विभिन्न देवियों ने की है, किसी देव ने नहीं। संरक्षण मातृभाव से अधिक जुड़ा हुआ है; अतः कथाकार ने देवियों को सहायक बनाया है। जब तक भक्त का चित्त सांसारिक उपलब्धियों की प्राप्ति में लगा रहेगा, तब तक वह स्त्री-चित्त – समर्पण, संरक्षण, वात्सल्य से ऊपर नहीं उठ सकेगा; अतः ये कथाएँ कहती हैं कि यदि परमात्म तत्त्व की प्राप्ति में निष्ठा है, उस ओर गमन की भावना है तो समर्पण से पुरुषार्थ, शरण से अशरण, और बाहर से भीतर की ओर जाने का प्रयत्न करना होगा। तभी कर्मों की साँकलें टूटेंगी, तभी एक ही परमतत्त्व की स्तुति में कहा जा सकेगा –

> बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा –
> त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
> धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधाना–
> द्व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥

□□

भक्तामर में आत्मदेव की स्तुति

'भक्तामर स्तोत्र' में शुभोपयोग के निमित्त श्री आदिनाथ तीर्थंकर (कार्य-परमात्मा) के अतिरिक्त शुद्धोपयोग या शुद्ध भावना के कारण निजपरमात्मदेव (कारण परमात्मा) की भक्ति या आराधना के बीज सर्वत्र विद्यमान हैं।

☐ पं. नाथूलाल शास्त्री

संसार में दु:खों से मुक्त होने के लिए हम परमात्मा की पूजा, स्तुति एवं ध्यान करते हैं। वीतराग परमात्मा की मूर्ति से हमें प्रेरणा प्राप्त होती है कि जिस प्रकार वे सराग अवस्था या संसारी आत्मा से वीतराग या मुक्त बने, उसी प्रकार हम भी अपने पुरुषार्थ द्वारा आत्मा से परमात्मा बन सकते हैं। पूजा एवं स्तोत्र आदि का यही उद्देश्य है।

पंचपरमेष्ठियों की अष्ट द्रव्यों द्वारा पूजा की अपेक्षा उनके स्तोत्र या स्तुति का अधिक महत्त्व इसलिए बताया गया है कि पूजा में द्रव्यों के लेने और चढ़ाने में काय का व्यापार अधिक होता है; किन्तु स्तोत्र-पाठ में वचन-व्यापार होकर उससे मन भी प्रभावित होता है, जबकि पाठ का उच्चारण करते हुए हम उसका भाव भी समझते हैं और भक्ति से गद्गद हो जाते हैं। स्तोत्र के पश्चात् जप एवं ध्यान का उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है, क्योंकि उनसे अन्त:करण की एकाग्रता अथवा उपयोग की स्थिरता का विशेष संबन्ध है।

स्तोत्रकार/स्तोता किसी के माध्यम से अपने स्वभाव का चिन्तन कर अपनी परमात्म-शक्ति को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। तीर्थंकरों की वीतराग प्रतिमाएँ हमें यही संकेत करती हैं कि हम भी उनके समान बनने का प्रयास करें। इस विषय में निम्नलिखित पद्य ध्यान देने योग्य हैं:

ज्यों तिल माहीं तैल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रभु तुझ में बसे, जाग सके तो जाग॥
घट-घट अन्तर जिन बसें, घट-घट अन्तर जैन।
मोह-मद्य के पान सों, मतवारो समझै न॥

जैन दर्शन या अध्यात्म की अन्य दर्शनों से यही विशेषता है कि वह एक सर्वव्यापी जगत्कर्ता ईश्वर नहीं मानता; किन्तु इस अनादि जगत् के प्रत्येक प्राणी

में परमात्मत्व-शक्ति मानकर उन्हीं में से अपने पुरुषार्थ द्वारा व्यक्त परमात्मा बनकर सिद्धलोक में विद्यमान अनन्त परमात्मा स्वीकार करता है । 'भक्तामर स्तोत्र' में निम्नांकित संबन्धित पद्य महत्त्वपूर्ण है :

नात्यद्भुतं भवन भूषण भूतनाथ, भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भविन्त भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।

(हे भुवन भूषण ! हे समस्त प्राणियों के स्वामी ! आपकी स्तुति कर आपके उत्कृष्ट गुणों से अपने गुणों का मिलान करते हुए भक्तजन आपके समान बन जाते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि स्वामी वही है जो अपने सेवक को अपने समान बना लेता है ।)

'भक्तामर स्तोत्र' में आदिनाथ प्रभु की स्तुति करते हुए भक्त तन्मय होकर अपनी स्तुति करने लगता है, यही जैन अध्यात्म का रहस्य है । जिनेन्द्र प्रभु (परमात्मा) की भक्ति, स्तुति या पहचान अपनी पहचान के लिए है। परमात्मा हमारे सुख-दुःख के कर्ता नहीं हैं। हम उन्हें निमित्त बनाकर अपने सुख-दुःख की उपलब्धि करते हैं । प्रस्तुत स्तोत्र में यदि हम अपने स्तुत्य तीर्थंकरदेव (कार्य-व्यक्त परमात्मा) के विशेषणों से अपने भीतर विद्यमान कारण-शक्त परमात्मा (आत्मदेव) के गुणों का मिलान करें, तो दोनों में समानता दृष्टिगोचर होगी; अतः उनकी स्तुति करते हुए हम अपनी ओर उन्मुख हो जाएँगे । सम्यग्दर्शन का यही स्वरूप है कि हम अपने भीतर परमात्मा के दर्शन करें।

हम में तुम में भेद यों, और भेद कुछ नांहि ।
तुम तन तज परब्रह्म भये, हम दुखिया तन मांहि ।।

उक्त पद्य में द्रव्यदृष्टि से हममें और अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा में कोई भेद नहीं है, किन्तु पर्याय दृष्टि से वे प्रकट मुक्त परमात्मा हैं और हम अभी संसारी आत्मा हैं । जैनधर्म का प्राण अनेकान्त यहाँ घटित हो जाता है ।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मनीन्द्र ! पन्थाः ।।
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।

'भक्तामर स्तोत्र' के उक्त २३ और २४ वें श्लोक में (२५ वें में भी) सभी विशेषण अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा के और अपने परमात्मा आत्मदेव के समान रूप से पाये जाते हैं । हममें शक्ति-रूप में यदि ये गुण नहीं होते; तो वे कैसे व्यक्त होते हैं ? मेंहदी में वर्तमान हरित वर्ण दिखाई देता है, पर उसमें रक्तवर्ण बनने की शक्ति

जानकर ही हम उसे जल में मल कर शरीर के अंगों में लिप्त करते हैं और उसका कुछ समय बाद व्यक्त-रूप (लाल वर्ण) देख लेते हैं।

पूजा या स्तोत्र के पश्चात् पढ़ा जाने वाला एक पद पं. दौलतरामजी का हमें इसके प्रमाण-स्वरूप मिलता है; वह है :

आज मैं परम पदारथ पायो, प्रभु चरनन चित लायो ।।टेक।।
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायो ।
ज्ञान-शक्ति-तप ऐसी जागी, चेतन पद दरसायो।
'दौलत' आज निरख निज प्रभु को, आनन्द उर न समायो ।।

यहाँ जिनेन्द्र-मूर्ति के समक्ष पूजन, स्तोत्र-पाठ करते हुए भक्त अपना उल्लास प्रकट कर रहा है कि मुझे प्रभु के चरणों में भक्ति के परिणाम-स्वरूप परम पदार्थ (सम्यग्दर्शन-आत्मदर्शन) की उपलब्धि हुई है। प्रभु की भक्ति से अशुभ कर्म नष्ट होकर शुभ कर्मों का बन्ध होता है, जबकि वह अपने से भिन्न अपने आराध्य अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा के गुणगान करता है, परन्तु वही भक्त जब उनके स्वरूप को अपने आत्मा के स्वरूप में देखता है और आत्मानुभूति का आनन्द लेता है, तब वह कर्मों के संवर-निर्जरा का फल प्राप्त करता है। इसी भाव को कविवर दौलतरामजी ने '···निरख निज प्रभु को आनन्द उर न समायो' द्वारा दरशाया है।

'भक्तामर स्तोत्र' में अध्यात्म के आनन्द के अतिरिक्त अनेक साहित्यिक विशेषताएँ भी हैं। अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, व्यक्तिरेक, विषम, श्लेष आदि अलंकारों की छटा जगह-जगह दृष्टिगोचर होती है। वैदिक संस्कृति के प्रभाव का इस स्तोत्र पर भी असर हुए बिना नहीं रहा है। इसकी पद-रचना ने मन्त्रों का रूप ले लिया है। भक्तामर कथाकोश आदि के देखने से इसके प्रत्येक पद्य (श्लोक) में यन्त्र, ऋद्धि, मन्त्र रचे गये हैं। कई मन्त्र देवी-देवताओं के हैं, जिनमें ऐहिक लाभ का प्रलोभन दिया गया है। इन सब मन्त्रों के इस काल में सिद्ध न होने से लाभ के स्थान पर हानि अधिक होती देखी जाती है। आत्म-कल्याण के उद्देश्य से दूर होकर लौकिक आकांक्षा की पूर्ति हेतु लालायित हो इन मन्त्रों की साधना में लगा रहे और बिना पुण्य, लाभ से वंचित रहे तथा विक्षिप्त चित्त भी हो जाए, इससे तो यदि वह इन्हीं स्तोत्रों को तथा अन्य परमेष्ठी मन्त्रों को श्रद्धापूर्वक पढ़े या जप करता रहे, तो उन देवी-देवताओं की मन्त्राराधना से होने वाली हानि से बचकर अधिक फल प्राप्त कर सकता है। यह विश्वास रखना चाहिये कि सभी कुछ लाभ पुण्य से संभव है और पंचपरमेष्ठी की पूजा-स्तुति से सातिशय पुण्य प्राप्त होता है।

'भक्तामर' में ४० वें श्लोक से अन्त तक जो सिंह, सर्प, अग्नि, रोग आदि आठ लौकिक भयों का निवारण जिनेन्द्र-स्मरण करने से बताया है। वे सब सम्यग्दृष्टि—आध्यात्मिक व्यक्ति के आत्मश्रद्धा की दृढ़ता से स्वयमेव दूर हो जाते हैं; क्योंकि ये सब भय शरीर के ममत्व के कारण प्रतीत होते हैं। आत्मा से तो निश्चय से इनका कोई संबन्ध नहीं, क्योंकि आत्मा का वे कुछ बिगाड़ नहीं सकते, इसलिए आत्मलोक में विचरण करने वाला इनसे सदा निर्भय रहता है। इन श्लोकों को पढ़ने पर यह भाव स्पष्ट हो जाता है। यहाँ प्रभु आत्मा ही है। स्तोत्र के प्रथम पद्य में 'जिनपादयुगं' में 'जिन' से इस आत्मदेव का बोध होता है। 'युगादौ' पद से मोहांधकार नष्ट कर आत्माराधना के प्रथम काल का 'प्रथमं जिनेन्द्रम्' से तो प्रथम (उत्तम पुरुष), जिसे अंग्रेजी में 'फर्स्ट परसन' कहते हैं, अहं-स्व पहले जिनेन्द्र (आत्मदेव) का बोध होता ही है; क्योंकि संस्कृत व्याकरण की धातुओं (क्रियाओं) में अन्य पुरुष, अंग्रेजी में जिसे 'थर्ड परसन' कहते हैं, मध्यम पुरुष और प्रथम पुरुष ये तीन पुरुष होते हैं। इसी प्रकार कथंचित् आराध्य-आराधक में भेद मानकर स्वयं को मध्यम पुरुष में संबोधित करते हुए आत्मदेव (कारण परमात्मा) से कार्य परमात्मा की अवस्था में समवशरण में अष्ट प्रातिहार्य शुभोपयोग रूप में घटित होते हैं।

इस प्रकार 'भक्तामर स्तोत्र' में शुभोपयोग के निमित्त श्री आदिनाथ तीर्थंकर (कार्य परमात्मा) के अतिरिक्त शुद्धोपयोग या शुद्धभावना के कारण निज परमात्मदेव (कारण परमात्मा) की भक्ति या आराधना के बीज विद्यमान हैं।

इस स्तोत्र के ४२ वें श्लोक में 'बलवतामपिभूपतीनां' प्रचलित पाठ में 'बलवतामरिभूपतीनां' सुधार आवश्यक है।

निराकांक्ष होकर कर्त्तव्य-दृष्टि से 'भक्तामर स्तोत्र' आदि के पाठ द्वारा जिनेन्द्र-भक्ति करना श्रावक का लक्ष्य होना चाहिये।

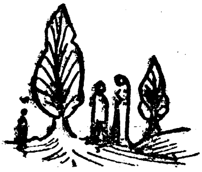

समणसुत्तं-चयनिका

२९. न य संसारम्मि सुहं, जाइजरामरणदुक्खगहियस्स।
जीवस्स अत्थि जम्हा, तम्हा मुक्खो उवादेओ॥७३॥

चूंकि जन्म-जरा-मरण के दुःख से पीड़ित जीव के लिए संसार में सुख नहीं है, (अतः) (उसके लिए) मोक्ष ही स्वीकार किये जाने योग्य (है)।

३०. तं जइ इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरस्स घोरस्स।
तो तवसंजमभंडं, सुविहिय! गिण्हाहि तूरंतो॥७४॥

यदि तू घोर संसार-समुद्र के पार जाने की इच्छा करता है, तो, हे सदाचारी! शीघ्रता करते हुए तप-संयमरूपी उपकरण को ग्रहण कर।

३१. भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं॥८१॥

वस्तु-जगत् से विरक्त मनुष्य दुःख-रहित (होता है); संसार के मध्य में विद्यमान भी (वह) दुःख-समूह की इस अविच्छिन्न धारा से मलिन नहीं किया जाता है, जैसे कि कमलिनी का पत्ता जल से (मलिन नहीं किया जाता है)।

३२. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो॥८२॥

अहिंसा-संयम-तपरूप धर्म सर्वोच्च कल्याण (होता है)। जिसका मन सदा धर्म में (लीन है), उस (व्यक्ति) को देव भी नमस्कार करते हैं।

३३. धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो॥८३॥

वस्तु का स्वभाव धर्म (है); क्षमादि परिणाम भी दस † प्रकार का धर्म (है); रत्नों का तिगड्डा अर्थात् तीन †† रत्नों का समूह भी धर्म (है); (तथा) जीवों की रक्षा करना (भी) धर्म (है)।

३४. खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि॥८६॥

(मैं) सब जीवों को क्षमा करता हूँ; सब जीव मुझे क्षमा करें; मेरी सब प्राणियों से मित्रता (है); किसी से भी मेरा वैर नहीं (है)।

† क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य।
†† सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक् चारित्र।

३५. **जो चिंतेइ ण वंकं, ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं।**
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जव-धम्मो हवे तस्स ।।९१।।

जो (व्यक्ति) कुटिल (बात) नहीं सोचता है, कुटिल (कार्य) नहीं करता है, कुटिल (वचन) नहीं बोलता है तथा (जो) निज दोष को नहीं छुपाता है, उसके आर्जव धर्म होता है।

व्याकरणिक विश्लेषण

२९. **न** (अ)=नहीं **य** (अ)=ही **सुहं** (सुह) १/१. **जाइजरामरणदुक्खगहियस्स** [(जाइ)-(जरा)-(मरण)-(दुक्ख)-(गह) भूकृ ४/१] **जीवस्स** (ज़ीव) ४/१. **अत्थि** (अस) व ३/१ अक. **जम्हा** (अ)=चूंकि **तम्हा** (अ)=अत: **मुक्खो** (मुक्ख) १/१. **उवादेओ** (उवादेअ) १/१ वि.

३०. **तं** (तुम्ह) १/१ स. **जइ** (अ)=यदि. **इच्छसि** (इच्छ) व २/१ सक-**गंतुं** (गम) हेकृ. अनि. **तीरं** (तीर) २/१ **भवसायरस्स** [(भव)-(सायर) ६/१.] **घोरस्स** (घोर) ६/१ वि. **तो** (अ)=तो **तवसंजमभंडं** [(तव)-(संजम)-(भंड) २/१] **सुविहिय** (सुविहिय) ८/१ वि. **गिण्हाहि** (गिण्ह) विधि २/१ सक. **तूरंतो** (तूर) वकृ १/१.

३१. **भावे**[1] (भाव) ७/१. **विरत्तो** (विरत्त) १/१ वि. **मणुओ** (मणुआ) १/१. **विसोगो** (विसोग) १/१ वि. **एएण** (एअ) ३/१ सवि. **दुक्खोहपरंपरेण** [(दुक्ख)+(ओह)+(परंपरेण)] [(दुक्ख)-(ओह)-(परंपर) ३/१]. न (अ)=नहीं **लिप्पई**[2] (लिप) वकर्म ३/१ अनि. **भवमज्झे** [(भव)-(मज्झ) ७/१] वि (अ)=भी. **संतो** (संत) १/१ वि. **जलेण** (जल) ३/१ वा (अ)=जैसे कि; पोक्खरिणीपलासं (पोक्खरिणी)-(पलास) १/१]

३२. **धम्मो** (धम्म) १/१. **मंगलमुक्किट्ठं** [(मंगलं)+(उक्किट्ठं)] मंगलं (मंगल) १/१ उक्किट्ठं (उक्किट्ठ) १/१ वि. **अहिंसा** (अहिंसा) १/१. **संजमो** संजम) १/१ **तवो** (तव) १/१ **देवा** (देव) १/२ **वि** (अ)=भी. **तं** (त) २/१ स **नमंसंति** (नमंस) व ३/१ सक **जस्स** (ज) ६/१ सवि. **धम्मे** (धम्म) ७/१ **सया** (अ)=सदा **मणो** (मण) १/१

1. पंचमी विभक्ति के स्थान पर कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया जाता है।

(शेष पृष्ठ २१८ पर)

भारत की आध्यात्मिक राजधानी

२५ जनवरी से ४ फरवरी १९८२ तक कर्नाटक प्रदेश का धर्मस्थल क्षेत्र भगवान् बाहुबली की मूर्ति-प्रतिष्ठापना के पावन-पुनीत क्षणों में हमारी सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, और राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र बना रहेगा । यह सब वस्तुतः ऐसे समय में होगा जब कि सारा देश राष्ट्रीय चरित्र के एक अत्यन्त संवेदनशील दौर से गुजर रहा है । वास्तव में इस वक्त देश को बाहुबली-निरूपित चरित्र की आवश्यकता है अर्थात् त्याग की, मैत्री की, प्रीति की, परस्पर सहयोग और सहानुभूति की, व्यक्ति-शुद्धि की ।

जहाँ तक हम समझते हैं यह काम धर्मस्थल-जैसे समन्वय-तीर्थ पर ही संभव है। हमारा विश्वास है कि यदि हम किंचित् दूरदर्शिता से काम लें तो नेत्रावती के तट पर बसा यह तीर्थ सारे देश को रचनात्मक नेत्र दे सकता है ।

वस्तुतः धर्मस्थल थोड़े में संपूर्ण भारत ही है । वैविध्य में भी एकप्राण रहना भारतीय संस्कृति की सबमें बड़ी विशेषता है, जिसे मंजुनाथ और चन्द्रनाथ की मंगल युति के रूप में धर्मस्थल में जीवन्त देखा जा सकता है । और अब तो एक नया ही सांस्कृतिक अध्याय खुलने जा रहा है भगवान् बाहुबली की उन्तालीस फुट ऊँची मूर्ति की प्रतिष्ठापना द्वारा । इससे मंजुनाथ-चन्द्रनाथ का अध्यात्म-युग्म एक सांस्कृतिक समभुज त्रिकोण में बदल जाएगा । हमें विश्वास है यह त्रितय/त्रिमूर्ति (भक्ति, मुक्ति, त्याग) युग-युगों तक सिर्फ भारत को ही नहीं अपितु सारे विश्व को शान्ति, एकता और समता का संदेश देती रहेगी ।

जहाँ शैव, वैष्णव, जैन तीनों एक मंच पर जीवन्त भाईचारे में बैठते/भक्ति-विभोर होते/खाते हैं, वहाँ के कण-कण को प्रणाम किये बिना हम कैसे रह सकते हैं ? जहाँ धर्माधिकारी जैन, अर्चक विष्णु और आराध्य शिव हों वहाँ धर्म-निरपेक्षता, धार्मिक सहिष्णुता और मनुष्यता का सांस्कृतिक शंखनाद यदि हेग्गड़े-परिवार कर रहा है तो यह बहुत शुभ-स्वस्तिकर है और हम सबके लिए, जो शान्ति/मैत्री/अहिंसा/सत्य/अपरिग्रह में आस्था रखते हैं, बहुत बड़ा आश्वासन है ।

सुना था कभी कि जब भगवान् बाहुबली की विशाल मूर्ति को कार्कल से धर्मस्थल लाया जा रहा था तब मार्ग में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सारे बन्धु-बांधवों ने बिना किसी भेदभाव के इसका हार्दिक स्वागत किया; क्या यह सब इस तथ्य को पुष्ट नहीं करता कि धर्मस्थल भविष्य में देश की आध्यात्मिक/सांस्कृतिक राजधानी का रूप ग्रहण कर लेगा ? —संपादक

धर्मस्थल

यह क्षेत्र कर्नाटक की राजधानी बंगलौर से ३३० कि. मी. और मंगलूर से ७५ कि.मी. दूर दक्षिण कन्नड़ जिले में सुन्दर मनोहर प्रकृति के मध्य स्थित है। इसके दो मील दूर नेत्रावती नामक पावन नदी है।

१६ वीं शतीमें उडुपि नामक पुण्य-क्षेत्र के श्री सोदेमठ के पीठाधिपति श्री वादिराज स्वामी एक बार यहाँ (कुडुमा) पधारे थे। उन्होंने यहाँ के दान-धर्मादि की उदात्त परम्परा को देखकर आनन्द विभोर होकर इस पुण्यक्षेत्र का नया नामकरण किया श्री धर्मस्थल। उसी समय से यह क्षेत्र 'धर्मस्थल' के नाम से विख्यात होने लगा।

बाहुबली

श्री बाहुबली की ३९ फुट ऊँची और २०० टन वजनी मूर्ति का निर्माण-कार्य कार्कल में सन् १९६७ में शिल्पी श्री रेंजाल गोपाल शेणे ने किया। कार्कल से ४० मील दूर-स्थित धर्मस्थल तक इस विराट् मूर्ति को पहुँचाने के लिए बम्बई से ६४ पहियेवाली विशेष ट्रॉली आयी; जिसे खींचने के लिए २५० अश्वशक्ति वाले यन्त्रों का उपयोग किया गया। यह ४० मील की यात्रा २० फरवरी ७३ से प्रारंभ होकर १९ मार्च ७३ को निर्विघ्न उल्लास-पूर्वक संपन्न हुई। बाहुबली विहार नामक निर्मित होने वाले स्थान पर २५ दिसम्बर १९७५ को विशाल मूर्ति खड़ी की गयी।

हेगड़े-परिवार और श्री वीरेन्द्र हेगड़े

श्री क्षेत्र धर्मस्थल के अधिकारी हेगड़े परम्परा की कहानी ही इसका इतिहास है, क्योंकि इस पुण्य क्षेत्र के प्रत्येक स्तर पर इस परिवार की श्रद्धा, भक्ति, कर्तव्य-पालन, त्यागमय जीवन और श्री मंजुनाथ स्वामी पर अनन्य निष्ठा के दर्शन होते हैं। यहाँ के २० वें धर्माधिकारी स्व. श्री रत्न वर्म हेगड़े थे। उन्हीं के निर्देशन में सन् १९६७ में श्री बाहुबली की मूर्ति का कार्यारंभ हुआ था। २१ वें धर्माधिकारी हैं श्री वीरेन्द्र हेगड़े, जो अपने स्व. पिताजी के सपने को साकार करने में अपनी मातृश्री रत्नम्माजी के साथ तत्पर हैं। वे प्रबुद्ध और निष्ठावान् हैं। ☐

परम्परित भी, आधुनिक भी →

☐ **धर्मस्थल में भारतीय संविधान में निरूपित धर्मनिरपेक्षता पूरी तरह साकार हुई है।**

☐ **आहार, विद्या और औषधिदान तो अन्यत्र भी मिल सकते हैं, किन्तु अभयदान तो मन्दिर में/से ही मिल सकता है।**

☐ **धर्म कोई स्थिर/मृत/या/जड़ वस्तु नहीं है, वह गतिशील जीवन-तत्त्व है; फिर भी उसके मूल तत्त्व/विचार, शाश्वत/अविचल है।**

☐ **धर्म के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए हमारा जो आचार-पक्ष विकसित हुआ है, उसे हमें निःसंकोच मान लेना चाहिये। धर्मस्थल में हम अपनी प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए आधुनिकता के रास्ते चल रहे हैं।**

☐ **बाहुबली की विशाल मूर्ति को देखने के बाद यह प्रेरणा मिलती है कि दुनिया का समस्त ऐश्वर्य क्षणभंगुर है, त्याग और तप ही अमर है।**

☐ **धर्मस्थल में जो भी कार्यक्रम या अनुष्ठान संपन्न होते हैं, उनकी पृष्ठभूमि सर्वधर्म-समन्वय की होती है।**

धर्मस्थल : भारत का एक अभिनव समन्वय-तीर्थ

डॉ. नेमीचन्द : सच, मैं बहुत उल्लसित हूँ हेगड़ेजी, यहाँ आ कर, आपसे, और आपके समन्वय-समर्पित परिवार से मिल कर; कृपया बताइये कि धर्मस्थल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं?

वीरेन्द्र हेगड़े : इस क्षेत्र का इतिहास काफी पुराना है। भगवान् शिवलिंग के रूप में मंजुनाथ कहलाते हैं, यहाँ उनका विशाल मन्दिर है। उधर चार धर्मदेवता* हैं। ये हमारे पुरखों के साथ आये थे; बाद को जब नया मन्दिर बना तो भगवान् मंजुनाथ के साथ ये भी प्रतिष्ठित हुए। प्रतिष्ठित शिवलिंग का नाम मंजुनाथ है। मंजुनाथ का अर्थ है – मंजु यानी शीतल; तथा इस नाम से विख्यात मंगलूर-मठ। उत्तरप्रदेश में नाथपंथ की जो परम्परा है, उससे भी यह संबद्ध है।

ने. : क्या गोरखनाथ की परम्परा?

हे. : हाँ। मंगलूर से यह शिवलिंग आया है। नाथपंथ के सन्दर्भ में मंजुनाथ कहा जा सकता है। उस समय बौद्धों का भी कुछ प्रभाव था। साहित्य में उसका ज़िक्र है, किन्तु पूरी प्रामाणिकता से कुछ भी कहना संभव नहीं है।

ने. : जनश्रुति शायद यही है।

हे. : बताया तो यही जाता है कि वहाँ बौद्ध परम्परा का कोई मन्दिर था, जिसमें नाथपंथी रहा करते थे, संभवतः इसीलिए वह 'मंजुनाथ' कहलाया।

ने. : यह दो परम्पराओं का मेल है।

हे. : बाद में यहाँ मंजुनाथ की प्रतिष्ठा हुई। वैष्णव मन्दिर के स्वामी द्वारा यहाँ वैष्णव मूर्ति की पुनःस्थापना की गयी थी, अतः उनके शिष्य यहाँ पूजा करने आया करते थे। इस तरह यहाँ के मन्दिरों में शिवलिंग और विष्णु दोनों हैं और हम धर्माधिकारी रहते आये हैं, जो जैन हैं। तीनों धर्मों में क़रीब ५–६ सौ सालों से मैत्री है; कभी किसी तरह का कोई मतभेद या टकराव आज तक नहीं हुआ।

ने. : क्या धर्माधिकारी जैन ही रहते आये हैं?

हे. : दिगम्बर जैन। हमारे रीति-रिवाज जैनधर्म के अनुसार चलते हैं; इस दृष्टि से मन्दिर का कोई आग्रह नहीं है। हम दिगम्बर जैन होते हुए भी मंजुनाथ की आराधना कर सकते हैं। हमें इतनी स्वतन्त्रता है। इस प्रकार यहाँ आचार्य वैष्णव हैं, धर्माधिकारी जैन हैं, और आराध्य शिव हैं।

---

* कालरकाई, कालराहु, कुमारस्वामी, कन्याकुमारी।

ने. : यह तो बड़े आश्चर्य की बात है !

हे. : यहाँ ऐसा ही है। हिन्दू, जैन, बौद्ध होते हुए भी किसी को इसका भान नहीं होता कि मैं अमुक हूँ, मैं तमुक हूँ।

ने. : हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता की जो बात कही गयी है, मैं समझता हूँ उसने यहाँ ठोस आकार ग्रहण किया है।

हे. : यहाँ यह तो स्वतन्त्रता प्राप्त† होने के बहुत पहले से है (हँसी)।

ने. : यह आपने बहुत अच्छी बात बतायी; अब इस सर्वधर्म-समन्वय के लिए और क्या कर रहे हैं ?

हे. : प्रतिदिन यहाँ जो भी कार्यक्रम होते हैं, उनका लक्ष्य धर्म-समन्वय ही होता है। मन्दिर में दर्शन के लिए जो लोग आते हैं, उन पर किसी तरह का जातिगत प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ उन्हें समान दर्शन/समान ध्यान की पूरी छूट है। यह भी यहाँ परम्परा से चला आ रहा है कि जो लोग दर्शन के लिए आते हैं, उनकी निःशुल्क भोजन-व्यवस्था यहाँ हो। सब साथ बैठ कर खाना खाते हैं। यह सब भी सर्वधर्म-समन्वय है।

ने. : सामूहिक भोजन की यह परम्परा अद्वितीय है। क्या धर्मस्थल की तरह का देश में और भी कोई तीर्थ हैं, जहाँ यह परम्परा अस्तित्व में है ?

हे. : हर तीर्थ में ऐसा होना चाहिये। यहाँ तो यह मन्दिर में ही है। समन्वय की यह भावना यहाँ परम्परा से चली आ रही है।

ने. : भावना तो होती है, किन्तु अनुयायी उसे निबाहते कहाँ हैं ?

हे. : जो अधिकारी होते हैं, परम्परा को मानने वाले, सब कुछ वस्तुतः उन्हीं पर निर्भर करता है। मैं २१ वाँ हेग्गड़े हूँ।। देखिये न, इतने सालों से यह सिलसिला अक्षुण्ण चला आ रहा है। हमें धर्मदेवता ने जो आज्ञा दी है, हम उसका अक्षरशः पालन कर रहे हैं।

ने. : हेग्गड़ेजी, कृपया यह तो बताइये कि आपको आपके पूज्य पिताश्री से सबमें महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकार क्या मिला ?

हे. : भगवान् मंजुनाथ पर विश्वास। उनका मंजुनाथ पर इतना विश्वास था कि वे जो भी काम करते थे, उनके नाम पर/से करते थे। वे जो बात कहते थे, वही करते थे। उनके मन में त्याग की भावना प्रबल थी। जैनधर्म का उन पर गहरा असर था। शैव मन्दिर के अधिकारी होने पर भी उनके आचरण में दानधर्म की विशिष्टता थी; तभी तो यहाँ शैक्षणिक योजनाएँ – स्कूल/कॉलेज की स्थापना आदि सफल हो रही हैं।

---

† 15 अगस्त 1947 ई.।

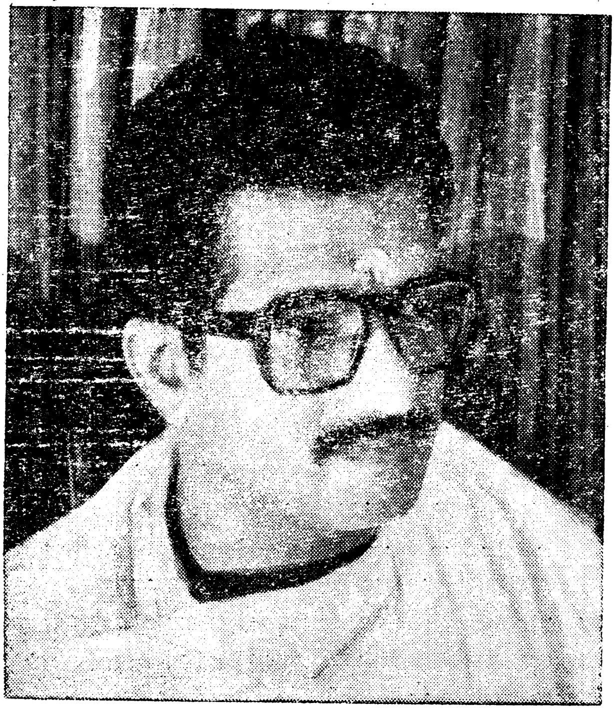

वीरेन्द्र हेगड़े : समन्वय के सांस्कृतिक अग्रदूत

ने. : क्या यहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा होता है?

हे. : धर्मस्थल के ५००-६०० वर्षों के इतिहास में एक बार भी ऐसा नहीं हुआ।

ने. : किसी भी संप्रदाय में नहीं?

हे. : बिलकुल नहीं। एक बार भी नहीं।

ने. : इसका मतलब हुआ कि यहाँ सब लोग मानवीय दृष्टि को शीर्ष महत्त्व देते हैं।

हे. : हाँ।

ने. : एक-दूसरे की मदद करते हैं। क्या यहाँ बीमार लोग भी आते हैं?

हे. : ऐसे बहुत लोग आते हैं। किसी के जीवन में दुःख है; मानसिक कष्ट है, धार्मिक समस्या है, ऐसे काफी लोग यहाँ मन्दिर में आते हैं। मन्दिर में प्रातः ९ से १० तक जो अभिषेक होता है, उसके जल से जो लोग बीमार होते हैं, उनके रोग दूर हो जाते हैं।

ने. : इससे उन्हें मानसिक शान्ति/तुष्टि मिलती होगी?

हे. : हाँ। यहाँ एक प्रथा है, अभयदान की। आहार/विद्यादान तो अन्यत्र भी मिल सकते हैं, लेकिन अभयदान तो मन्दिर में ही मिल सकता है, और मेरे मत में शायद और कहीं से नहीं। पुलिस थाने से जो मिलता है, क़ानून से जो मिलता है, वह अस्थायी होता है; किन्तु मन्दिर से आदमी को जो आत्मबल/अभय मिलता है, वह बहुत बड़ा विचार है, दान है।

ने. : इससे आत्मशान्ति मिलती है।

हे. : हाँ; इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आहार/विद्यादान आदि तो कहीं भी मिल सकते हैं, किन्तु अभयदान मन्दिर में/से ही मिल सकता है। यह बहुत बड़ा आश्वासन है/बल है। इधर लोग आते हैं, भगवान् को अर्ज़ी देते हैं, उनके जो दीवानी झगड़े (सिविल डिस्प्यूट्स) होते हैं – जिन्हें तुळु में 'होयलु' कहा जाता है, के फ़ैसले/समाधान/समझौते यहाँ होते हैं। ऐसे हज़ारों झगड़ों का निपटारा यहाँ होता है। मंजुनाथ भगवान् के क्षेत्र यानी धर्मस्थल की यह विशेषता है कि जो मुँह से एक बार कह दिया, वह करना ही होता है।

ने. : यानी यहाँ कथनी-करनी में कोई भेद नहीं है।

हे. : हाँ। मंजुनाथ का नाम लिया तो फिर वैसा करना ही चाहिये। बहुत सारे लोग यहाँ आते हैं, जो मंजुनाथ के सामने संकल्प/प्रतिज्ञा करते हैं, वचन देते हैं। यदि बाद को वे अपनी प्रतिज्ञा/वचन निभा नहीं जाते तो पुनः मन्दिर में आते हैं और प्रायश्चित्त करते हैं।

ने. : यह तो चरित्र को उठाने वाली बात है।

हे. : आज करीब सौ लोग इस लक्ष्य से यहाँ आये थे।

ने. : जब आप बैठते हैं, तो क्या लोग इसी तरह से आते हैं?

हे. : हाँ। पारिवारिक समस्या हो या सामाजिक; वे, जो मैं कहता हूँ, उसे मान लेते हैं।

ने. : आपकी बात मानते ही हैं?

हे. : मानते ही हैं। मैं एक-दो मिनिटों में फ़ैसला कर देता हूँ। ज्यादातर दो मिनिट लगते हैं; कभी-कभार लोगों को उनके मानसिक तनाव के कारण समझाने में थोड़ा अधिक समय लग जाता है।

ने. : मैंने सुना है कि यहाँ सामुदायिक विवाह भी होते हैं।

हे. : हाँ। दस सालों से यह कार्य चल रहा है। प्रायः शास्त्रीय विधि-विधान से एक शादी १००–२०० रुपयों में हो जाती है, किन्तु धूमधाम से शादी करने में १०–१५ हज़ार से अधिक रुपये लग जाते हैं। इस सन्दर्भ में मुझे एक विचार आया अतः मैंने विज्ञापन दिया कि मन्दिर की ओर से भी शादी हो सकती

है। कपड़े, मंगलसूत्र आदि दिये जाएँगे, किन्तु एक शर्त है कि शादी के बाद कोई भोज नहीं होगा, दारू/शराब नहीं पीयी जाएगी, और दहेज़ बिलकुल नहीं लिया जाएगा। जो लोग इन शर्तों को मानेंगे, उनकी शादी मन्दिर की ओर से हो सकेगी। सामुदायिक विवाह का यह कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुआ। प्रथम वर्ष में ८८ विवाह हुए। १९७८ में इनकी संख्या ४९८ तक पहुँच गयी। कुल ६६ जातियों के लोगों की शादियों यहाँ हुईं, जिनमें ब्राह्मण, जैन, हरिजन आदि सब थे।

ने. : यह तो आपकी बहुत उल्लेखनीय उपलब्धि है।

हे. : शादियाँ भी हरेक की धर्म-विधि के अनुरूप होती हैं, जैसे – जैन अलग बैठते हैं, होम-हवन करते हैं; वैष्णवों को उनकी धर्म/परम्परा के अनुसार विवाह संपन्न कराया जाता है।

ने. : कितना समय लगता है एक शादी के संपन्न होने में ?

हे. : एक दिन।

ने. : एक साथ कितनी शादियाँ संभव होती हैं ?

हे. : शादियाँ तो सब एक ही मुहूर्त में हो जाती हैं। लाउडस्पीकर से घोषित कर देते हैं कि शाम को ७ से ७-३० बजे तक का मुहूर्त है। मुहूर्त के क्षणों में परस्पर माला बदलिये और मंगलसूत्र पहनाइये। इतना होने पर शादी हो जाती है।

ने. : धर्मस्थल में इस समय जो योजनाएँ चल रही हैं, मैं देख रहा हूँ कि इनमें परम्परा के साथ आधुनिकता का निर्वाह भी किया जा रहा है। आपका सारा कुटुम्ब सुशिक्षित है, उसका दृष्टिकोण भी आधुनिक है : आधुनिकता से परम्परा को जोड़ने में आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

हे. : नहीं। मैं मानता हूँ कि हमें बदलना चाहिये; क्योंकि धर्म कोई जड़ वस्तु तो है नहीं, वह तो एक गतिशील अस्तित्व है; हाँ, उसका मूल विचार, उसके बुनियादी तत्त्व अवश्य शाश्वत/अजर-अमर हैं। विज्ञान के इस युग में जबकि जीवन द्रुतगति से बदल रहा है, सुदृढ़ तत्त्वों पर खड़े धर्म में भी बाह्य परिवर्तन अवश्यंभावी है; किन्तु जो भी परिवर्तन हम लायें या स्वीकार करें उसे धर्म के मूलतत्त्व के विरुद्ध नहीं होना चाहिये। हम धर्म के मूलरूप को सुरक्षित रख कर कोई भी परिवर्तन स्वीकार कर सकते हैं।

इस संदर्भ में बंगलौर में १९७७ ई. में मैंने एक 'धर्म जागृति सम्मेलन' का आयोजन किया था, जिसमें विभिन्न धर्मों के २८ स्वामी एक ही मंच पर एकत्रित हुए थे। सम्मेलन में परिवार-कल्याण जैसे विषय पर भी चर्चा की गयी थी। स्पष्टतः इस सदी में जनसंख्या-नियन्त्रण बहुत ज़रूरी है। सरकार ने तो क़ानून बना दिया; अब जैन हो, ब्राह्मण हो, कोई हो उसके सामने विकल्प/च्वाइस नहीं है। प्रश्न है कि

ऐसे क़ानून का परिपालन धार्मिक रीति से कैसे हो सकता है? धर्म का इस विषय में क्या कथन है? ब्रह्मचर्यव्रत तो है, किन्तु धर्म में कितने बच्चे होना चाहिये, कितने नहीं, इसका संकेत नहीं है; अतः इस सिलसिले में किंचित् स्पष्ट होने की आवश्यकता है। हिन्दू आचार्य कहते हैं कि हम वेद का प्रतिपादन करेंगे, उससे संबंधित विषयों/समस्याओं पर ही चर्चा करेंगे, और परिवार-नियोजन आदि पर कोई मार्गदर्शन नहीं देंगे। 'धर्म जागृति सम्मेलन' हमारी समकालीन समस्याओं पर धर्माचार्यों का मार्गदर्शन प्राप्त करने के उद्देश्य से आयोजित था। मुझे खुशी हुई कि आपने मुझसे ऐसा अच्छा प्रश्न किया कि क्या वैज्ञानिक प्रगति के साथ आधुनिक सुविधाओं/आविष्कारों; जैसे – रेडियो, टी.व्ही., यातायात के साधन, भोजन पकाने के उपकरण आदि का उपयोग करते हुए धर्म के मूल स्वरूप को सुरक्षित रखा जा सकता है? धर्मस्थल की पाकशाला में आधुनिक व्यवस्था है। शाकाहारी रह कर भी हम उसका उपयोग कर रहे हैं, क्यों नहीं कर सकते? मुख्य बात तो यह है कि जो वस्तु हम खाने जा रहे हैं, वह शुद्ध है या नहीं; तो फिर उसके बनाने/पकाने के साधन आधुनिक हो सकते हैं। मन्दिर के गर्भगृह में बिजली इसलिए नहीं है कि उससे भावना/वातावरण में अन्तर पड़ सकता है। वस्तुतः तैल की ज्योति का जो स्पर्श मिलता है, तब वह नहीं मिल सकेगा। उसके साथ भक्ति की जो भावना जुड़ी है, उसकी तीव्रता में अन्तर पड़ेगा।

ने. : गोम्मटेश्वर की जिस विशाल मूर्ति की प्रतिष्ठापना करने आप जा रहे हैं, उसकी प्रेरणा आपको कैसे हुई?

हे. : प्रेरणा पूज्य पिताजी को हुई थी।

ने. : आप उस प्रेरणा को जीवन्त कर रहे हैं, यही न?

हे. : बात यह है कि १९६७ ई. के श्रवणबेळगोळ के मस्तकाभिषेक में पिताजी गये थे। तब उनके ध्यान में आया कि धर्मस्थल में भी प्रतिदिन लोग मंजुनाथ के दर्शन के लिए आते हैं जिनमें से ज्यादातर लोग लौकिक प्रार्थनाएँ करते हैं, जैसे— मुझे संतान दो, व्यापार में लाभ मिले, आदि; इस तरह जब भी वे यहाँ आते हैं भौतिक आवश्यकताओं और कामनाओं की पूर्ति के लिए ही प्रार्थना करते हैं। पिताजी को लगा कि यहाँ भगवान् बाहुबली की एक विशाल मूर्ति भी होनी चाहिये, जिससे यात्रियों को त्याग और तपस्या की पवित्र प्रेरणा मिल सके।

ने. : क्या हम मानें कि यहाँ अब ज्ञान और भक्ति का सन्तुलित समन्वय हो जाएगा?

हे. : हाँ।

ने. : यानी ज्ञान बाहुबली का और भक्ति मंजुनाथ की; इस तरह गंगा-यमुना आ मिलेंगी।

हे. : बिलकुल ठीक; क्योंकि बाहुबली से आप कुछ माँग नहीं सकते, उनकी तो साधना ही सबमें बड़ा सन्देश है।

ने. : उस विचार को, जो आपको पिताजी से मिला आपने आगे कैसे बढ़ाया ?

हे. : माताजी की अनुप्रेरणा थी और मेरा भी इस विचार में अटल विश्वास था, इसलिए सहज ही काम आगे बढ़ गया। मूर्ति कारकल से ला कर खड़ी कर ली गयी है। फरवरी १९८२ में प्रतिष्ठापना है।

ने. : मैंने मूर्ति देखी है। बहुत सुन्दर/मनोज्ञ है। पॉलिश हो जाने के बाद उसमें स्निग्धता उभर आयेगी और फिर उसका अति शोभन रूप सामने आ जाएगा। सच; धर्मस्थल एक अद्भुत तीर्थ है जहाँ शिव हैं, विष्णु हैं, बाहुबली हैं – क्या इनमें परस्पर टकराहट की कोई आशंका है ?

हे. : बिल्कुल नहीं। जब इस विशाल मूर्ति को कारकल, जो यहाँ से ६५ किलोमीटर दूर है, से धर्मस्थल लाया जा रहा था, तब मार्ग में मुस्लिम-ईसाई आदि सभी धर्म-बन्धुओं ने इसका स्वागत किया। उन्होंने मार्ग में आवश्यक व्यवस्थाएँ सहर्ष कीं। लोग तो अभी से इसके दर्शन करने आने लगे हैं। असल में लोग मुझे यहाँ जैन की दृष्टि से नहीं देखते। वे मुझे गौरव देते हैं, मुझसे मिलते हैं, आत्मीय परामर्श करते हैं। मैं कई संस्थाओं के समारोहों में जाता हूँ, ऐसे सारे आयोजनों में मेरा घुलना-मिलना सहज ही हो जाता है। चाहे फिर आयोजित समारोह शैक्षिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो। इस क्षेत्र के और इसकी परम्परा के बारे में मेरा समाज से ऐसा संबन्ध है कि लोग जो मैं कहता हूँ, उसे वे बखुशी मान लेते हैं।

ने. : दक्षिण भारत में भगवान् बाहुबली की यह पाँचवीं मूर्ति है या चौथी ?

हे. : चौथी।

ने. : पहली श्रवणबेळगोळ।

हे. : दूसरी कारकल, तीसरी वेणूर।

ने. : चौथी धर्मस्थल, पाँचवीं इन्दौर।

हे. : पाँचवीं फीरोज़ाबाद, छठी इन्दौर।

ने. : फीरोज़ाबाद यानी उत्तरप्रदेश और इन्दौर यानी मध्यप्रदेश। आपके यहाँ, हेग्गड़ेजी, बाहुबली मूर्ति प्रतिष्ठापना समारोह होने जा रहा है, इस अवसर पर लोगों को आप कोई सन्देश देना चाहेंगे ?

हे. : सन्देश यह है कि आज दुनिया जिस तरह बदल रही है, उस बदलाव में से उसे ज्ञान और शिक्षा तो खूब मिल रही है, किन्तु धर्म के प्रति कोई रचनात्मक दृष्टि नहीं बन रही है। लोग बुद्धिमान हो गये हैं और इतने स्वतन्त्र भी कि उन्हें भगवान् क्या है, धर्म क्या है, समाज की मर्यादाएँ क्या हैं, इसकी कोई फिक्र

नहीं रही है। वे तो उन्हें मनचाही खुशियाँ मिलें, इस खातिर कोशिश कर रहे हैं। राष्ट्र की सांस्कृतिक/धार्मिक परम्पराओं को सुरक्षित रखा जाना चाहिये, इसका उन्हें कोई खयाल नहीं है। हम खान-पान, रहन-सहन, शिक्षण, व्यापार-व्यवसाय आदि में आधुनिक हो सकते हैं; किंतु इस 'आधुनिकता' का मतलब 'उच्छृंखलता' नहीं होना चाहिये। ....धर्मस्थल की तो यह विशेषता ही है कि यहाँ के सारे कार्यकर्ता तीस वर्ष से नीचे हैं। बूढ़ा कोई है ही नहीं। बूढ़े तो मन्दिर के पास ही नहीं आते।

ने. : बूढ़े पास नहीं आते (हँसी), यह कौन-सा जादू है?

है. : यह तो आपोआप हो गया है (हँसी)।

ने. : क्या आप कभी बूढ़े नहीं होंगे, हेग्गड़ेजी?

है. : होंगे तो साथ-साथ ही होंगे (हँसी); धार्मिक दृष्टि को माँजेंगे/माँजते जाएँगे।

ने. : धार्मिक दृष्टि से तो आप सदैव तरुण ही रहने वाले हैं, शरीर से भले ही वृद्ध हो जाएँ।

है. : हाँ। युवकों में अभी इतना विश्वास और प्रेम है। उन्हें यदि प्रेम का पुण्य-स्पर्श हो जाए, तो सब ठीक हो जाए। मैं कहता हूँ कि सबको प्रीति का परम स्पर्श मिलना चाहिये; सिर्फ भाषण या प्रवचन से कुछ होने वाला नहीं है; मानिये, जब तक जीवन को प्रेम का स्पर्श नहीं मिलता, तब तक उसे कोई अपेक्षित मोड़ नहीं मिल सकता।

ने. : क्या इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए धर्मस्थलों के साथ जन-कल्याण का कोई कार्यक्रम नहीं जोड़ देना चाहिये?

है. : यहाँ जो पैसा मन्दिर में आता है, वह पूरा-का-पूरा जन-कल्याण में चला जाता है। ऐसा रोज ही होता है। दान सबको मिलता है, कोई खाली हाथ यहाँ से नहीं जाता है।

ने. : सुना है धर्मस्थल ने कुछ गाँव दत्तक लिये हैं?

है. : एक नयी 'स्कीम' बनायी है। अंग्रेजी में एक कहावत है – 'किसी को यदि आहार दोगे तो वह उसके बल एक दिन ही जी सकेगा; किन्तु यदि उसे आहार अर्जित करने/उसे कमाने की कला सिखा दोगे तो वह उससे प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा जीवन ही बिता सकेगा'। अभी तक हम दान देते थे, तो लोग उसे ले कर परितृप्त हो जाते थे, लेकिन कुछ दिनों बाद फिर दान लेने आ जाते थे; इसलिए अब हमने गृहस्थ और उसके समग्र विकास की एक योजना हाथ में ली है।

ने. : क्या आपने इस योजना का सूत्रपात कर दिया है?

हे. : अभी तक हम साड़ी दे रहे थे। एक बार हमने २७ हज़ार साड़ियाँ दीं। लोग रोज आते हैं और दान ले कर चले जाते हैं। अब हम दान देने से पूर्व पात्र के विचार और उसकी भावी योजना को समझने का प्रयत्न करते हैं।

ने. : हेग्गड़ेजी, देखिये न आपसे तो मैंने बहुत सारे सवाल कर लिये, किन्तु आपके निकट ही बैठे हैं श्रवणबेळगोळ के पूज्य भट्टारक स्वामीजी; अब मैं आपकी अनुमति से इनसे भी कुछ प्रश्न करने जा रहा हूँ। स्वामीजी! आपको धर्मस्थल में बाहुबली की जो विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित होने जा रही है, उससे कोई ईर्ष्या तो नहीं हो रही है?

भट्टारक चारुकीर्ति : हमें ईर्ष्या भला क्यों होगी? (हँसी)। देश में भगवान् बाहुबली की जितनी मूर्तियाँ निर्मित होंगी, उनके माध्यम से त्यागधर्म का प्रसार ही होगा। यह तो शुभ संवाद है, इसमें ईर्ष्या कैसी?

ने. : कहीं सत्तावन फुट से ऊँची मूर्ति स्थापित हो गयी तो?

भ. : तो भी हम सन्तोष मनायेंगे; क्यों नहीं मनायेंगे? मूर्ति कोई निजी संपत्ति तो है नहीं। हम तो उस मूर्ति के आराधक हैं। मूर्ति जितनी बड़ी होगी, उपासक भी अनुपात में उतने ही गुणात्मक और अधिक होंगे।

ने. : यानी आपका विश्वास आध्यात्मिक ऊँचाई में है बजाय किसी मूर्ति की भौतिक ऊँचाई के। स्वामीजी, मैं यह जानना चाहता हूँ कि धर्मस्थल में जो यह उत्सव होने जा रहा है इसके माध्यम से आप व्यक्ति को कौन-सी आध्यात्मिक ऊँचाई देना चाहते हैं?

भ. : आध्यात्मिक ऊँचाई यानी सत्प्रेरणा! मूर्ति को देखने से हमें प्रेरणा मिलती है कि दुनिया की सारी भौतिक वस्तुएँ क्षणस्थायी हैं, यहीं रह जाने वाली हैं, त्याग और तपस्या ही श्रेष्ठ है। हम चाहें तो आत्मा को पवित्र बनाते हुए परमात्मा के स्तर तक उसे ले जा सकते हैं। ये सारी मूर्तियाँ सांसारिकों को मोक्षमार्ग की प्रेरणा देती हैं। यही इन समारोहों की आध्यात्मिक उपलब्धि है।

ने. : आप तो हिन्दी बहुत अच्छी बोल लेते हैं। हेग्गड़ेजी हिन्दी का वैसा सधा उपयोग तो नहीं कर पाते, किन्तु अपनी भावनाओं और विचारों को सफलतापूर्वक सम्प्रेषित कर लेते हैं। मैं उन्हें बधाई देता हूँ और आप से पूछना चाहता हूँ कि आज हम धर्म के जो कार्य कर रहे हैं उनमें से कोई नया मनुज जन्म ले रहा है या नहीं? आज हमारे जीवन में खूब भागमभाग है अन्धविश्वास हैं, स्वार्थ हैं, शोषण है संत्रास हैं – तो क्या आप धर्मस्थल और श्रवणबेळगोळ के क्षितिज पर कोई ऐसा मनुष्य ला रहे हैं जो त्यागी होगा, साधनावान्, निष्काम, सेवाभावी और शोषण-मुक्त होगा?

भ. : ऐसे मनुष्य की रचना मुश्किल तो है, किन्तु असंभव नहीं है; फिर मनुष्य प्राय: स्वभाव से विकसित होते हैं, हमारे बनाने से तो बनते नहीं हैं।

ने. : बहुत से लोग तीर्थों पर जो अन्धविश्वास ले कर आते हैं उन्हें निर्मल ज्ञान की धारा से अंध-विश्वासों से विमुख तो किया ही जा सकता है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि हम इस वक्त जो आयोजन कर रहे हैं, उसका आधुनिक जीवन से कोई तालमेल नहीं है। लोग इधर-से-उधर भाग रहे हैं। भीड़ आ रही है, भीड़ जा रही है। क्या हम इस भीड़ को कोई सही दिशा दे पाते हैं? निश्चय ही भगवान् बाहुबली की मूर्ति-प्रतिष्ठापना द्वारा कल आप धर्मस्थल को तत्त्वदर्शन का एक ऐतिहासिक विश्व-केन्द्र बना देंगे। संग्रहालय, पुस्तकालय, अनुसन्धान-कक्ष आदि भी स्थापित करेंगे। यह सब बहुत महत्त्वपूर्ण है, किन्तु मैं बहुत विनम्रतापूर्वक यह जानना चाहूँगा कि इन कार्यक्रमों में कहीं हम उस नये मनुष्य की अगवानी की धड़कन महसूस रहे हैं या नहीं – श्रवणबेळगोळ में या यहाँ, जहाँ कहीं भी?

भ. : नये मनुष्य से आपका आशय क्या है?

ने. : आध्यात्मिक मनुष्य, ऐसा मनुष्य जिसमें अध्यात्म के प्रति आस्था और जिज्ञासा हो, नैतिकता की दृष्टि से जो समृद्ध हो; कहें, नैतिक दृष्टि से संपन्न मनुष्य।

हे. : डॉक्टर साहब, व्यक्ति के जीने के अपने तरीके होते हैं। उसका वातावरण भी भिन्न होता है। जब वह मन्दिर में आता है तब वहाँ कुछ विशिष्ट परम्पराएँ होती हैं, मन्दिर की अपनी कुछ खास विचारधारा होती है; लेकिन वह यहाँ भीड़ में विसर्जित हो जाता है, क्योंकि मन्दिरों में लोग भीड़ में आते-जाते हैं। चर्चों/मस्जिदों में शान्ति रहती है। वहाँ ईसाई और मुसलमान भाई अपनी-अपनी आराधनाएँ शान्तिपूर्वक करते हैं, किन्तु हिन्दू-मन्दिरों में लोग भीड़ में चिल्ला-चिल्ला कर 'जयकारा' करते हैं; इस तरह व्यक्ति भीड़ में पूरी तरह खो जाता है, समाज बन जाता है। यह विचारणीय है। जैसे किसी कॉलेज में प्रवेश के लिए किन्हीं निर्धारित कक्षाओं में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होता है, क्या मन्दिरों में प्रवेश के लिए ऐसी कोई योग्यता/पात्रता आवश्यक नहीं है? हमारे धर्मस्थल इन भक्तों को क्या दे रहे हैं? हमारे तमाम धार्मिक अनुष्ठान और विधि-विधानों का प्रयोजन अन्ततः क्या है/क्या हो? दान के पीछे क्या उद्देश्य है? यात्री के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्षेत्र का संपूर्ण/समग्र प्रभाव क्या होता है/क्या हो? जब कोई यात्री मन्दिर में अपने दुःख, क्लेश, व्यथा, विषमता आदि को निवेदित करता है, तब क्या वह उन सब से मुक्त हो जाता है? क्या वह यहाँ से एक नया मनुष्य बन कर जाता है?

ने. : क्या आपने जिन मुद्दों को उठाया है, वह सब नये मनुष्य की रचना की दिशा में नवचिन्तन नहीं है?

हे. : जब हमारा व्यक्तित्व दुतरफा/दोगला न हो, विभक्त न हो; तभी किसी व्यक्ति को सत्य तक ले जाया जा सकता है।

ने. : स्वामीजी, लोगों को, जो लाखों की तादद में यहाँ आयेंगे, कोई सन्देश दीजिये।

भ. : सन्देश क्या दें; वे स्वयं यहाँ से सन्देश ले जाएँगे। जैसे श्रवणबेळगोळ में बाहुबली की मूर्ति एक हज़ार साल से है और लोगों को त्याग/तपस्या का सन्देश दे रही है, वैसे ही धर्मस्थल में स्थापित होने वाली मूर्ति से जागृति हो, त्याग और साधना की प्रेरणा मिले, यही मैं चाहता हूँ। इस जागृति और प्रेरणा को प्राप्त करने के लिए लोग अधिक-से-अधिक संख्या में यहाँ पधारें, महोत्सव में सम्मिलित हों, और उसे यशस्वी बनायें। उत्तर और दक्षिण का एक भावना-सेतु बने। आपको याद है इसी फरवरी में एक साल पहले उत्तर और दक्षिण एकाकार हुए थे। दुबारा वह मौका आया है, दक्षिण में और कर्नाटक जिले में ही। इस भाग्यशाली अवसर पर हम अखण्ड भारत के लिए फिर से मिल सकते हैं। जैन समाज में तो, मैं चाहता हूँ, उत्तर-दक्षिण का भेद जड़-मूल से मिट जाना चाहिये। धीरे-धीरे हम निकट आ रहे हैं, यह शुभ है, कल्याणकर है।

ने. : मैं समझता हूँ यह सब धर्मस्थल में ही हो सकता है।

भ. : हाँ; यहाँ ऐसी एकता के लिए सुदृढ़ पृष्ठभूमि है। ऐसी एकता यहाँ चिरस्थायी हो सकती है।

भ. : मुझे विश्वास है धर्मस्थल में बन रहे इस सांस्कृतिक इतिहास का विश्व-भर में गौरव के साथ उल्लेख किया जाएगा। □□

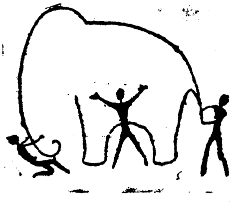

बातचीत : भट्टारक चारुकीर्ति/डॉ. नेमीचन्द जैन
श्रवणबेळगोळ (कर्नाटक), २३ दिसम्बर १९८१

एक और श्रवणबेलगोल

डॉ. नेमीचन्द जैन : स्वामीजी, मैं जानना चाहता हूँ, क्या धर्मस्थल को सर्व-धर्मसमभाव की भूमि बनाया जा सकता है ?

भट्टारक चारुकीर्ति : हाँ। वहाँ अच्छा संदर्भ है। हिन्दू, वैष्णव, शैव – हर सम्प्रदाय के लोग वहाँ आते हैं और वे अपनी भक्ति अर्पित करते हैं। खासतौर से वहाँ भारतीय धर्मों का स्वस्थ समन्वय हो सकता है।

ने. : इसके लिए वहाँ अभी क्या प्रयत्न चल रहा है ?

भ. : वहाँ हर सम्प्रदाय के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। दान धर्म में भी किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है, भेदभाव नहीं है। ऐसे भी धर्म में ग़रीब और अमीर का कोई स्थान नहीं है – सब एक हैं।

ने. : सामाजिक विषमता को मिटाने का प्रयत्न होता है; ऐसा करते हुए आर्थिक विषमता भी मिटती है।

भ. : खास करके अभी जो वीरेन्द्र हेगड़े हैं, वे बहुत ही समन्वयवादी हैं और धर्मस्थल का नाम उनके कारण सुशोभित हो रहा है।

ने. : क्या हम सबकी यह इच्छा नहीं है कि धर्मस्थल दक्षिण भारत का दूसरा श्रवणबेळगोळ कहलाये ?

भ. : श्रवणबेळगोळ क्षेत्र का इतिहास ही अलग है, जो भद्रबाहु मुनि से शुरू होता है। यह तो श्रमणों की भूमि है। यहाँ बारह हजार श्रमणों ने आकर तपस्या की है। अनेक मुनिराजों ने साधना की है। चन्द्रगिरि का ज्यादा महत्त्व इसलिए है, क्योंकि यह श्रमणों की 'सल्लेखना-भूमि' रही है। बाहुबली की मूर्ति तो एक हज़ार वर्ष प्राचीन है, लेकिन इतिहास शुरू हो जाता है दो हज़ार वर्ष पहले से। फिर भी यदि धर्मस्थल में श्रमणों की संख्या बढ़े, उनकी वह साधना/तपस्या-भूमि बने, तो वह भी श्रमणबेळगोळ हो सकता है।

ने. : धर्मस्थल की पष्ठभूमि बिल्कुल अलग है।

भ. : श्रवणबेळगोळ में ऐतिहासिक, कलात्मक, सामाजिक विचारधारा को लेकर चलने का है, जबकि धर्मस्थल की पष्ठ भूमि सर्वधर्म समन्वय की है। अभी

तो इसे भी श्रवणबेळगोळ की पृष्ठभूमि मिल रही है; आगे चलकर यह क्षेत्र भी श्रमणबेळगोळ से प्रेरणा लेकर वैसा बन जाए, आगे बढ़ जाए, तो इससे बड़ी प्रसन्नता/आनन्द की बात और क्या होगी?

ने : इन्दौर में जो गोम्मटगिरि बन रहा है, वह तो कम-से-कम उत्तर भारत का श्रवणबेळगोळ हो जाएगा?

म. : वह उत्तर भारत का श्रवणबेळगोळ नहीं मध्यभारत का श्रवणबेळगोळ होगा या यों कहिये मध्यप्रदेश का होगा, क्योंकि उत्तर भारत में फीरोजाबाद में बाहुबली की मूर्ति है।

ने. : अब तो होड़ है कि कौन बने – फीरोजाबाद या इन्दौर?

म. फीरोजाबाद की तो बन गयी है, प्रतिष्ठा-भर बाकी है। इन्दौर में तो अभी चालू करना है। इन्दौर के जैन समाज में जो उत्सुकता है, इस कारण यह क्षेत्र आगे भी बढ़ सकता है।

ने : आशावादी तो होना ही चाहिये। एक सात्त्विक स्वप्न वहाँ साकार होता है, तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है।

म. : कुछ लोगों का समर्पित जीवन है। वे चाहें कहीं भी हों, उनकी आत्मा, उनकी शक्ति काम कर रही है। इसलिए इन्दौर के गोम्मटगिरि का भविष्य उज्ज्वल है।

ने. : धर्मस्थल के लिए आप लोगों को खासकर उत्तर भारत के लोगों को प्रेरणा दीजिये।

म. : धर्मस्थल शब्द से ही हमें धर्म की प्रेरणा मिलती है और जब वहाँ ऐसा प्रतिष्ठा-महोत्सव हो रहा है तो सबको अवश्य सम्मिलित होना चाहिये। उसे यशस्वी बनाना ही है। हम उत्तर और दक्षिण के लोग मिलकर विचारों का आदान-प्रदान करें। सांस्कृतिक/सामाजिक आदान-प्रदान करें, तो जैन समाज में अखण्डता होगी। उत्तर-दक्षिण का और ज्यादा संगठन होना चाहिये। यह तभी संभव है जब हम बार-बार मिलें।

ने. : मैंने हमेशा आपको और एलाचार्यजी (मुनि विद्यानन्दजी) को उत्तर-दक्षिण के सेतुबन्ध के रूप में देखा है और मुझे विश्वास है यह जो पुल (ब्रिज) है, वह अधिक प्रशस्त होता चला जाएगा। □□

प्रतिष्ठा-कार्यक्रम

२५ जनवरी, १९८२ : मध्याह्न १२-१५ बजे भगवान् श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के मन्दिर में पंचामृताभिषेक पूजा के बाद इन्द्रप्रतिष्ठा विधान होकर जुलूस के साथ उत्सव श्री बाहुबली विहार में आगमन, विहार में तोरणमुहूर्त, विमानशुद्धि विधान, नान्दीमंगल विधान, सायं ४ बजे नव-कलशाभिषेक।

२६ जनवरी : प्रातः ८ बजे १६ कलशाभिषेक, ९ बजे वास्तुदेवता पूजा-विधान, नवग्रह महाशान्ति विधान, ग्राम-बलि, मृत्तिका संग्रहण, यज्ञशाला प्रवेश, अंकुरार्पण विधान।

२७ जनवरी : प्रातः ८ बजे १६ कलशाभिषेक, ९ बजे यक्ष प्रतिष्ठा, ध्वजारोहण विधि, रात्रि ६ बजे भेरीताडन-विधि, यज्ञमण्डप मंगलसूत्र बन्धन विधि।

२८ जनवरी : प्रातः ८ बजे १६ कलशाभिषेक, ९ बजे ग्रहयज्ञविधान, नित्यपूजा विधिपूर्वक, रात्रि १२ बजे ब्रह्मस्तंभ के श्री ब्रह्मयक्ष का प्रतिष्ठा विधान।

२९ जनवरी : प्रातः ८ बजे २४ कलशाभिषेक, ९ बजे श्री पीठयंत्राराधना, नित्यपूजा विधि सहित श्रीबलिविधान।

३० जनवरी : प्रातः ८ बजे नित्य-पूजा विधिपूर्वक ५४ कलशाभिषेक, १० बजे श्री शान्तिचक्रयन्त्राराधना, सायं ४ बजे श्री गणधरवलय यंत्राराधना, जलाग्नि होम विधि।

३१ जनवरी : प्रातः ८ बजे नित्य-पूजा विधिपूर्वक ५४ कलशाभिषेक, मण्डप प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, बृहत् याग-मण्डलाराधना विधान, सायं ६ बजे जलयात्रा महोत्सवपूर्वक मातुराह्वानादि विधियुक्त गर्भावतरणकल्याण।

१ फरवरी : प्रातः ७ बजे (सूर्योदय) जन्मकल्याण, श्री मंजुनाथ स्वामी की सन्निधि में विशेष पूजा, वहाँ से सकल गौरव के साथ श्री बाहुबली विहार पर जन्माभिषेक के १०८ कलशानयन, ९ बजे अष्टदिक्षु धामसंप्रोक्षण विधान, १० बजे १०८ कलशों से भगवान का जन्माभिषेक महोत्सव, नित्यपूजाविधि, सायं ४ बजे नामकरणोत्सव, बाललीलोत्सव, वैभव के साथ राजकुमार का जुलूस और सांस्कृतिक कार्यक्रम।

२ फरवरी : प्रातः ८ बजे नित्यपूजा विधिपूर्वक १०८ कलशाभिषेक, १०-३० बजे साम्राज्य वैभव, राज्यभार, मध्याह्न १ बजे दीक्षाविधिपूर्वक परिनिष्क्रमण-कल्याण, ३ बजे सर्वधर्म-सम्मेलन।

३ फरवरी : प्रातः ८ बजे नित्यपूजा विधिपूर्वक गन्धयंत्राराधना, १०-५४ बजे मन्त्रन्यास कलारोपणापूर्वक भगवान् श्री बाहुबली स्वामी का प्रतिष्ठापना महोत्सव, महाभिषेकपूर्वक केवलज्ञानकल्याण महोत्सव, अपराह्न ३ बजे श्री सिद्धचक्र यन्त्राराधना, अग्नि त्रयार्चनायुक्त निर्वाण-कल्याण महोत्सव, दूसरे दिन कंकण विसर्जन।

४ फरवरी : प्रातः ८ बजे भगवान् बाहुबली स्वामी का १००८ कलशों से महामस्तकाभिषेक महोत्सव, मुनिसंघपूजा, मध्याह्न ३ बजे धार्मिक सभा, रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम।

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य में और धर्मस्थल क्षेत्र के धर्माधिकारी श्री डी. वीरेन्द्र हेग्गड़े के प्रतिष्ठा-कत्व में संपन्न होने वाले उपर्युक्त कार्यक्रमों का शुभारम्भ २५ जनवरी को कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री आर. गुंडूराव करेंगे और ४ फरवरी को महामस्तकाभिषेक में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भी सम्मिलित होंगी। □□

'भक्तामर' : अनूदित साहित्य / १९७४-१९८१

आचार्य मानतुंगसूरि विरचित 'भक्तामर स्तोत्र' एक ऐसा लोकप्रिय और प्रभावशाली स्तोत्र है, जिसकी दुन्दुभि उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम श्वेताम्बर/दिगम्बर दोनों जैन वर्गों में बिना किसी बहस या पूर्वग्रह के निनादित है। जितने इस एक स्तोत्र के विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी में अनुवाद सामने आये हैं, उतने अन्य किसी स्तोत्र के नहीं। उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं में इसके कुल जमा १०० अनुवाद सामने आये हैं, जिनमें पद्यानुवाद अधिक और गद्यानुवाद कम हैं। यहाँ हम उन अनुवादों की चर्चा करने जा रहे हैं, जो १९७४ से १९८१ के बीच की अवधि में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कुछ पुस्तकाकार प्रकाश में आये हैं और कुछ पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं।

भक्तामर स्तोत्र[१] पर पं. हीरालाल जैन 'कौशल' द्वारा संपादित यह पुस्तक लघुकाय होते हुए भी इसलिए उल्लेखनीय है कि इसमें मूल के साथ अनेक पद्यानुवाद सम्मिलित किये गये हैं। हेमराज पाँडे के पद्यानुवाद के साथ पुस्तक में गद्यानुवाद/ऋद्धि/मन्त्र/यन्त्र-चित्र आदि भी दिये हैं, जिनके कारण पुस्तक की उपयोगिता स्वयमेव बढ़ गयी है। यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो यह किताब आज से क़रीब १८ वर्ष पूर्व जबलपुर से पं. मोहनलाल शास्त्री द्वारा संपादित 'श्री भक्तामर महामण्डल पूजा' का ही एक परिवर्द्धित संस्करण है। संक्षेप में 'कौशलजी' की पुस्तक का 'फॉर्मेट' हूबहू वही है; अंग्रेजी अनुवाद दोनों में यकसाँ है।

१९७५ ई. में जोधपुर से डिमाई आकार में एक लाल किताब[२] प्रकाश में आयी, जिसमें 'भक्तामर' के साथ 'रत्नाकर पच्चीसी' और 'सामायिक पाठ' भी हैं। समीक्ष्य पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें कोई पद्यानुवाद नहीं है। हिन्दी और अंग्रेजी के दो गद्यानुवाद हैं तथा श्लोकशः अन्वयार्थ दिया गया है। अन्वयार्थ ने 'भक्तामर' को सुगम बनाया है और एक आम पाठकर्ता को समग्र/सम्यक् रसास्वाद का मौका दिया है। अब तक जितने अंग्रेजी-अनुवाद देखने में आये हैं उन सब में हिम्मतसिंह सरुपारिया का यह अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है—खूब सरल, खूब उपयुक्त। छापे की भूलें हैं, किन्तु अन्य विशेषताओं को देखते इन्हें नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है।

भीलवाड़ा (राजस्थान) से सन् १९७६ में प्रकाशित यह समश्लोकी हिन्दी अनुवाद[३] भावपूर्ण, सहज, और स्वाभाविक है। जैनेतरों ने जो अनुवाद किये हैं उनमें श्री बालकृष्ण व्यास का यह अनुवाद गौरवशाली है और 'भक्तामर' को एक लोकप्रिय आयाम प्रदान करता है।

१९७७ ई. में डॉ. सरयु आर. मेहता ने 'भक्तामर स्तोत्र' की गुजराती में बहुत सारगर्भित विवेचना[४] प्रस्तुत की है। इस प्रकाशन के साथ 'भक्तामर स्तोत्र' के रसास्वाद का एक नया ही अध्याय शुरू होता है। डॉ. महेता ने प्रत्येक श्लोक का गहन विश्लेषण किया है और उसका परमार्थ स्पष्ट किया है। भाषा इतनी सरल-सुबोध है कि गुजराती लिपि का सामान्य ज्ञान होने पर कोई भी हिन्दी-भाषी स्तोत्र की गहराइयों में सहज ही उतर सकता है। पुस्तक में सम्मिलित मावजी दामजी शाह के गुजराती-अनुवाद की भी अपनी निरालगी है। वह मधुर है और मानतुंगसूरि की सूक्ष्मतर अनुभूतियों को रचना के स्तर पर सम्प्रेषित करने में पूर्णतः समर्थ है। कई अनुवाद-पंक्तियाँ तो इतनी चुम्बकीय हैं कि घण्टों मन-मस्तिष्क में घूमती रहती हैं। इस विवेचन/अनुवाद ने मिलकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। यदि यह विवेचन हिन्दी-जगत् को मिल सके तो काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

गणेश ललवानी[५] एक तपे-खपे पत्रकार हैं; जिन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, बाङ्ला, तथा संस्कृत भाषाओं पर समान अधिकार प्राप्त है। 'जैन जर्नल' (अंग्रेजी), 'श्रमण' (बाङ्ला) और 'तित्थयर' (हिन्दी) के तो वे सम्पादक हैं ही, एक कुशल चित्रकार भी हैं। यही कारण है कि 'श्रमण' (मासिक) में मई से अगस्त १९७९ तक धारावाहिक प्रकाशित उनका बाङ्ला अनुवाद एक अपनी अद्वितीय छटा रखता है। बाङ्ला लिपि का सामान्य ज्ञान होने पर कोई भी पाठक इस अनुवाद से लाभान्वित हो सकता है। कई कोष्ठकीय टीपों में अनुवादक ने 'भक्तामर' के गूढ़ार्थों का भी खुलासा किया है। ललवानीजी ने यह प्रतिपादित किया है कि 'भक्तामर' सिर्फ एक भक्तिपरक स्तोत्र ही नहीं है वरन् योगशास्त्र की दृष्टि से भी उसका महत्त्व है। हमारी राय में इसे भी हिन्दी-अनुवाद के साथ स्वतन्त्र रूप में प्रकाशित होना चाहिये।

कल्याणकुमार 'शशि' हिन्दी के जाने-माने जैन कवि हैं। उनका भाषानुवाद[६] कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। स्वाभाविकता, माधुर्य, सारल्य और शब्द-संयोजन की दृष्टि से इसका अपना महत्त्व है। हमारे खयाल में इस तरह के अनुवादों के साथ मूल, रचयिता का जीवन-वृत्त, तथा स्तोत्र की पृष्ठभूमि का दिया जाना ज़रूरी है। यह कमी अखरती है। कुल मिलाकर अनुवाद अच्छा, साफ-सुथरा, और आडम्बर-रहित है।

इन्दौर से १९८० में प्रकाशित यह पुस्तक[७] स्तोत्र-सम्बन्धी जानकारी देने वाली एक किताब है। इसमें अनुवाद, अन्वयार्थ दोनों हैं; किन्तु इस पर सन् १९७७ में प्रकाशित 'सचित्र भक्तामर-रहस्य' के प्रथम संस्करण की सघन छाप स्पष्ट है। कथा-भाग के शीर्षक वही हैं, जो सचित्र भक्तामर-रहस्य में दिये गये हैं। प्रयत्न सामयिक है, किन्तु छापे की भूलों से भरपूर है। आशा की जानी

चाहिये कि इसका आगामी संस्करण अधिक निर्दोष और यथासंभव मौलिक होगा। इस संदर्भ में एक विनम्र सुझाव यह भी है कि पुस्तक में दी गयी संपूर्ण सामग्री को पाठक की सुविधा के लिये पुनर्योजित कर लिया जाए तथा अन्वयार्थ में रह गयी भूलों को भी सुधार लिया जाए।

सचित्र भक्तामर-रहस्य[८] का प्रथम संस्करण सन् १९७७ में तथा द्वितीय संस्करण १९८१ में आया। इतनी बृहत्काय किताब का दुबारा छपना इस बात का सबूत है कि इसे पसंद किया गया और यह 'भक्तामर' पर अनुराग रखने वाले लोगों को काफी नयी/ताज़ा समझ देने में सफल हुआ है। सचित्र होना पुस्तक की सब में बड़ी विशेषता है। अलग-अलग गद्य-पद्यानुवाद, अंग्रेजी-गद्यानुवाद, अन्वयार्थ इत्यादि ने 'भक्तामर स्तोत्र' के लिए स्वस्थ समझ बनाने में काफी मदद की हैं। कहा जा सकता है कि 'सचित्र भक्तामर-रहस्य' अपने पूर्ववर्ती प्रकाशनों का सारपूर्ण आकलन है। 'भक्तामर' के प्रति पं. कमलकुमारजी शास्त्री 'कुमुद' का समर्पण पुस्तक पर स्पष्टतः परिलक्षित है। वे 'भक्तामर स्तोत्र' के पद्यानुवादों का संकलन-कार्य बड़ी लगन से कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि 'पुष्पेन्दु-कुमुद-युगल' जैन साहित्य जैन साहित्य की जो उल्लेखनीय सेवा कर रहा है वह कभी, कहीं, कालबिन्दु पर पहुँच कर इतिहास द्वारा समादृत होगा। इसकी भूमिका जानकारीपूर्ण है, किन्तु भक्तामर-जैसे कालजयी स्तोत्र पर लम्बी-चौड़ी ब हस गैरजरूरी है। वस्तुतः 'भक्तामर स्तोत्र' का मूल्य प्रभावपरक है, वह ज्ञान से कम और भक्ति/चमत्कार से अधिक मूलबद्ध है। चर्चित पुस्तक में मन्त्र-यन्त्र आदि को लेकर जो सामग्री संपादित है, उससे उसका महत्त्व बढ़ गया है। असल में इसका एक पूर्णतः संशोधित/परिवर्द्धित संस्करण भी आना चाहिये जिसमें उन अनेकानेक त्रुटियों का निरसन हो जो पुस्तक के महत्त्व/व्यक्तित्व को घटाती हैं और पाठक की आँखों को चुभती हैं। मूल स्तोत्र को भी समास-विराम, सन्धि-विराम आदि की दृष्टि से पुनरीक्षित किया जाना चाहिये। कथा-शीर्षकों तथा संपूर्ण प्रस्तुति को लेकर भी एक नख-शिख पुनरवलोकन ज़रूरी है।

भक्तामर मंगल गीता[९] भी उक्त 'युगल' का एक सचित्र प्रकाशन है। मुख-पृष्ठ पर ही कहा गया है कि पुस्तक में अभिनव और कलापूर्ण चित्र दिये गये हैं, किन्तु है ऐसा नहीं। चित्र न तो कलापूर्ण ही हैं और न ही अभिनव; हाँ, उन्हें श्लोकों को स्थूलतः व्यक्त करने वाले रेखांकन कहा जा सकता है। चित्रकला में 'एनाटॉमी' का विशेष महत्त्व है। चित्रों में शरीर-सौष्ठव पर कोई ध्यान नहीं गया है। इन्हें श्लोकानुरूप किंचित् प्रतीकात्मक बनाया जाना था, किन्तु संभवतः एक कुशल कलाकार के न मिल पाने के कारण संकल्प पूरी तरह निभ नहीं पाया है। चित्र के अलावा जो सामग्री है वह स्पष्टतः महत्त्व की है। बायीं ओर 'पुष्पेन्दु'जी तथा दायीं ओर 'कुमुद'जी के भक्तामर-अनुवाद हैं। दोनों ने 'भक्तामर

स्तोत्र' को लेकर जो कुछ दिया है वह कालजयी है – सरल, सुबोध, प्रेरक और भावपूर्ण। हमारी समझ में समीक्ष्य पुस्तक की सैकड़ों प्रतियाँ लोगों तक पहुँचनी चाहिये। हमारा सुझाव है कि पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में दो परिशिष्ट जोड़े जाएँ, जिनमें क्रमशः श्लोकानुसार गद्यानुवाद तथा स्तोत्र एवं स्तोत्रकार के संबन्ध में परिचयात्मक, किन्तु अधिकृत जानकारी संक्षेप में दी जाए। इस सुष्ठु प्रकाशन के 'पुष्पेन्दु-कुमुद-युगल' एवं प्रकाशक दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

'भक्तामर स्तोत्र' का मेवाड़ी-अनुवाद[१०] सरस, सुबोध, और पठनीय है। किसी लोकभाषा में संस्कृत की प्रौढ़ता को संपूर्ण प्रसादत्व के साथ परोसना एक दुष्कर कार्य है, किन्तु पं. गिरधरलाल शास्त्री ने इसे सहज ही संपन्न कर दिखाया है। लोकभाषा की मिठास और संस्कृत की प्रौढ़ि दोनों आमने-सामने आ गये हैं और लगता है एक-दूसरे को अभिव्यक्ति-सामर्थ्य की चुनौतियाँ दे रहे हैं। इसी तारतम्य में पठनीय है इसी अंक में पृष्ठ २४ से ११९ तक प्रकाशित विपिन जारोली का राजस्थानी-अनुवाद। यह बिलकुल दूसरी क़िस्म का है। इसकी 'गागर में सागर में समेटने की' विशिष्टता दृष्टव्य है। कम-से-कम शब्दों में प्रत्येक श्लोक की संपूर्णता से सम्प्रेषित करने का काम कवि जारोली ने बड़ी सफलतापूर्वक संपन्न किया है। हमें विश्वास है इस प्रशस्त पगडंडी पर चलकर अन्य लोकभाषाओं में भी 'भक्तामर स्तोत्र' के अनुवाद सामने आयेंगे।

– नेमीचन्द

---

१. **भक्तामर स्तोत्र;** संपा. पं. हीरालाल जैन 'कौशल', श्री पार्श्वनाथ दिग. जैन मन्दिर, बाबाजी की बगीची, सब्जीमण्डी, दिल्ली-६; तृतीय संस्करण; पृ. ८८; १९७४।

२. **भक्तामर;** संपादक - प्रेमराज बोगावत, प्रेम भण्डारी; सम्यग्ज्ञान प्रचार मण्डल, बापूबाज़ार, जयपुर; पृ. १६५; १९७५।

३. **भक्तामर स्तोत्रम्** (समश्लोकी अनुवाद); पं. बालकृष्ण व्यास शास्त्री; धर्म ज्योति परिषद्, १५७ राजेन्द्रनगर, भूपालगंज, भीलवाड़ा; पृ. २५; १९७६।

४. **श्रीभक्तामर स्तोत्र** (विवेचन/गुजराती अनुवाद); विवेचनकर्ता – डॉ. सरयु आर. महेता; अनुवाद - मावजी दामजी शाह; पृष्ठ ११६; १९७७।

५. **भक्तामर स्तोत्र** (बाङला अनुवाद); गणेश ललवानी; 'श्रमण' बाङला मासिक, कलकत्ता के मई से अगस्त १९७९ के अंकों में धारावाहिक प्रकाशित।

६. **भक्तामर** (भाषानुवाद); कल्याणकुमार जैन 'शशि'; बा. आनन्दकुमार जैन संस्थान, रामपुर (उ. प्र.); पृ. २२; १९८०।

७. **भक्तामर स्तोत्र** (महाकाव्य); मानमल खाब्या 'चरणरज'; योगेन्द्रकुमार मानमल खाब्या, १६० रानीपुरा रोड, इन्दौर; पृ. १३७; १९८०।

८. **सचित्र भक्तामर-रहस्य** (बृहत् संस्करण); पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'; फूलचन्द 'पुष्पेन्दु'; श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई (म.प्र.); पृ. ४३२; १९८१।

९. **भक्तामर मंगल गीता;** संपादक - कपूरचन्द जैन शास्त्री; पद्यानुवाद - 'पुष्पेन्दु', 'कुमुद'; रतनलाल जैन कालकावाले, १२८६ वकीलपुरा, दिल्ली-६; पृष्ठ ९८; १९८१।

१०. **भक्तामर स्तोत्र** (मेवाड़ी); पं. गिरिधरलाल शास्त्री; सम्यग्ज्ञान पीठ, गणेशघाटी मार्ग, उदयपुर; पृष्ठ ३९; १९८१।

संपादक-त्रय का निधन

श्री डाह्याभाई मूलचन्द कापड़िया

'जैन मित्र' (साप्ताहिक), सूरत के ऑनरेरी संपादक और प्रकाशक श्री डाह्याभाई मूलचन्द कापड़िया का गत १८ जनवरी, ८२ को आकस्मिक देहावसान हो गया। वे ५६ वर्ष के थे।

८३ वर्षों से प्रकाशित होने वाले इस पत्र के पूर्व ऑनरेरी संपादक और प्रकाशक स्व. श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया, जिनका निधन गत १ अगस्त, ८१ को ९९ वें वर्ष में हुआ था, उन्होंने श्री डाह्याभाई को गत २० अक्टूबर, १९४६ को दत्तक पुत्र लिया था। वयोवृद्ध स्व. कापड़ियाजी को श्री डाह्याभाई की उत्तरदायित्व संभालने की क्षमता और कुशलता पर संतोष था। वे उत्साही लगनशील और मिलनसार थे। समाज को उनसे आशा/अपेक्षा थी।

पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

'जैन बोधक' (मराठी साप्ताहिक), सोलापुर के संपादक पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री का निधन गत २८ दिसम्बर, ८१ को ७३ वर्ष की आयु में लम्बी बीमारी से हो गया। वे सन् १९३२ से 'जैन बोधक' का संपादन कर रहे थे। उन्होंने जैन गजट, विश्वबन्धु, रत्नत्रय आदि पत्रों का भी संपादन किया।

उनका जन्म मूडबिद्री (कर्नाटक) में हुआ था। वे कन्नड़, मराठी, हिन्दी, संस्कृत और इंग्लिश के ज्ञाता थे।

समाज ने श्री शास्त्रीजी को विद्यावाचस्पति, व्याख्यानकेसरी, धर्मालंकार, विद्यालंकार, सिद्धान्ताचार्य, सिद्धान्तरत्न, समाजरत्न आदि की उपाधियों से विभूषित किया था। ऐसे वरिष्ठ संपादक, लेखक और वक्ता के निधन से समाज में अपूरणीय क्षति हुई है।

श्री रतनलाल डोशी

'सम्यग् दर्शन' (मासिक), सैलाना (रतलाम) के वयोवृद्ध संपादक श्री रतनलाल डोशी का देहान्त गत १३ जनवरी, ८२ को हो गया। उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए जोधपुर में गत २३ मार्च, ८० को श्री जैन ज्ञान श्रावक संघ की ओर से ७६ वर्षीय श्री डोशी का सम्मान किया गया था।

उपर्युक्त तीनों संपादकों को 'तीर्थंकर'-परिवार की ओर से श्रद्धांजलि !

'—हमारी सामाजिक व धार्मिक (श्वेताम्बर दिगम्बर स्थानकवासी व तेरापन्थी) एकता का स्वरूप व उसके उपाय' नामक निबन्ध-प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है। आठ पुरस्कार वाली इस प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि ३१ मार्च, ८२ है। अपेक्षित जानकारी के लिए लिख सकते हैं :

आचार्य, श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ, दि. महेश सोसायटी, आकाशवाणी के सामने, जलगाँव (महाराष्ट्र) ४२५००१।

—जैन मठ, श्रवणबेलगोल द्वारा समीपवर्ती दस गाँवों को दत्तक रूप में स्वीकार कर उनमें जनकल्याण और निर्माण-कार्य का शुभारंभ किया गया है।

—श्रवणबेलगोल में जनमंगल महाकलश स्मारक भवन का शिलान्यास केन्द्रीय गृहमंत्री श्री ज्ञानी जेलसिंह ने किया।

—पी. एस. जैन गेस्ट हाउस का उद्घाटन-समारोह श्रवणबेलगोल में एलाचार्य

मुनिश्री विद्यानन्दजी के मंगल विहार की पूर्व संध्या में हुआ। ज्ञातव्य है, इस गेस्ट हाउस का निर्माण श्री रमेशचन्द्र जैन, दिल्ली (पी. एस. जैन मोटर्स) ने भ. बाहुबली सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक के उपलक्ष्य में करवाया था।

—नई दिल्ली में महावीर स्तम्भ शिलान्यास-समारोह ६ दिसम्बर, ८१ को संपन्न हुआ।

—श्री जैन बाला विश्राम आरा (बिहार) के ६० वर्ष पूर्ण होने पर 'हीरक जयन्ती स्मारिका' प्रकाशित की जा रही है।

—श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में १५ दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का समापन १० दिसम्बर, ८१ को उल्लासपूर्ण वातावरण में अनेक उपलब्धियों के साथ हुआ।

—इन्दौर में ३ जनवरी, ८२ को श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वर की १५५ वीं जयन्ती और ७५ वीं पुण्यतिथि के निमित्त आयोजित समारोह में साध्वीश्री मणिप्रभाजी का सारपूर्ण प्रवचन हुआ। डा. नेमीचन्द जैन का संस्मरणात्मक व्याख्यान भी हुआ।

—धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े का सार्वजनिक अभिनन्दन ३ जनवरी, ८२ को जैन समाज इन्दौर द्वारा किया गया।

—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, रोटरी क्लब एवं मेडिकल एसोसिएशन शाखा, जावरा के सहयोग से बड़ावदा (रतलाम) में आयोजित स्वास्थ्य परीक्षण-शिविर में ६०० मरीजों का स्वास्थ्य परीक्षण कर निःशुल्क दवाई वितरित की गई। शिविर का संचालन श्री मानवमुनि ने किया।

—कलकत्ता में ३ से ७ जनवरी, ८२ तक होने वाला पंचकल्याणक महोत्सव स्थगित किया गया है।

आजीवन सदस्य रु. १५१

५०९. श्री राजेन्द्रकुमार जैन
राजेन्द्र मेडिकल स्टोर
पो. कोतमा ४९७४४९
जि. शहडोल (म.प्र.)

५१०. श्री जम्बुकुमार जैन
दाल मिल
भैरों बाजार, बेलनगंज
पो. आगरा २८२००४ (उ.प्र.)

५११. श्री देवेन्द्रकुमार जैन
क्वाटर नं. १८/३०,
साउथ टी. टी. नगर
पो. भोपाल ४६२००३ (म.प्र.)

५१२. श्री सुरेशचन्द जैन गोटेवाले
१३२३, गली गुलियां
दरीबाकलाँ
पो. दिल्ली ११०००६

५१३. श्री प्राचार्य महोदय
एस. एस. जैन सुबाध महाविद्यालय
रामबाग सर्किल
पो. जयपुर ३०२००४ (उ.प्र.)

५१४. श्री रामस्वरूप इन्द्रभान जैन
द्वारा : जैन एण्ड कम्पनी
१३/२५, नुनिहाई
पो. आगरा २८२००३ (उ.प्र.)

५१५. चौधरी श्री बाबूलाल हुकमचन्द जैन
जनरल मर्चेंट्स
पो. चन्देरी ४७७४४६
जि. गुना (म.प्र.)

५१६. श्री अजितप्रसाद जैन, मन्त्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र
शोध पुस्तकालय
पारस सदन, आर्यनगर
पो. लखनऊ २२६००१ (उ.प्र.)

(संपादकीय ··· पृष्ठ ८ का शेष)

काव्य* को हम तनिक हटा लें तो यह श्लोक स्तोत्र के बिलकुल बीचोंबीच खड़ा मुस्करा रहा है। संक्षेप में सारे भक्तामर का हृदय इस एक श्लोक में धड़क रहा है। इस तरह २/८/८/८ के रहस्य को समझने की कोशिश हमें करनी चाहिये।

'भक्तामर' में जिन प्रतीकों और रूपकों का प्रयोग हुआ है, वे भी महत्त्व के हैं। इनके माध्यम से जैनधर्म के बुनियादी सिद्धान्त तो विवेचित हैं ही, आत्म-बोध के लिए भी राजमार्ग खुल गया है।

श्लोक ३८ से ४६ तक जिन भयों/उपसर्गों का वर्णन है, उन्हें लौकिक तल पर सोचने की अपेक्षा अलौकिक और आध्यात्मिक तल पर सोचने/जानने/परखने की आवश्यकता है। श्लोक ३८, ३९, ४० और ४१ को ही हम लें। ३८ वें श्लोक में जिस मत्तद्विपेन्द्र (मदोन्मत्त हाथी) का उल्लेख है उसे समझने का प्रयत्न हम करें। परम्परा में हाथी को मन का उपमान/प्रतीक माना गया है। चूँकि मन और मान दोनों अधिक फासले पर नहीं है, इसीलिए हाथी को मान का प्रतीक भी माना गया है। भगवान् बाहुबली के संदर्भ में कथा है कि जब तक वे हाथी पर से नहीं उतरे, तब तक उनमें कैवल्य प्रकट नहीं हुआ। 'मत्तद्विपेन्द्र' में उसी मन/मान का संकेत है। घाति कर्मों के अगुआ मोहनीय को कौन नहीं जानता? मान, क्रोध, माया, लोभ की चौकड़ी का सरदार भी मान ही है। मानतुंगसूरि ने मान की चोटी ही सबमें पहले पकड़ी है। मान यदि अंकुश के नीचे आ गया तो मन को आकिंचन्य/विनय का बोध होगा। विनय महत्त्वपूर्ण है। झुका हुआ/विनीत मन क्रोध की ओर दौड़ ही नहीं पायेगा। इसी क्रम में आप आयें सिंह/मृगराज/मृगाधिप पर। वह क्रोध का प्रतीक है। क्रोध में विवेक और संतुलन मुट्ठी से खिसक जाते हैं। अविवेकी कुछ भी कर सकता है। वह साध्य/साधन की पवित्रता-अपवित्रता नहीं देखता। उसे चाहिये संपदा, फिर चाहे वह खून में सनी ही क्यों न हो? ३९वें श्लोक में वर्णित रक्तरंजित गजमुक्ताओं पर ध्यान दें। यहाँ आचार्य मानतुंग ने हमारा ध्यान साध्य-साधन की पावनता की ओर आकर्षित किया है। यह एक सर्वोत्तम काव्य है। इस तरह के श्लोक आत्मावलोकन/आत्ममूल्यांकन का अमूल्य अवसर प्रदान करते हैं। इस एक श्लोक को पकड़ कर समग्र जैन समाज पवित्रताओं की ओर मुड़ सकता है। आज मंदिर/मूर्तियाँ हैं, किन्तु कई जगह वे रणस्थल बने हुए हैं। इस तरह हमारे साधन आज दूषित हैं, इस ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये।

४० वाँ श्लोक दावाग्नि से संबन्धित है। वन का रूपक योगपरक है। योग में वन संसार का प्रतीक माना गया है। अग्नि माया के उपमान के रूप में परम्परित है। माया अग्नि की भाँति सर्वभक्षी है। इस अग्नि-कुण्ड में भला क्या बचा रह सकता है? किन्तु जैसे ही आराध्य ध्यान में आते हैं/उनका नामोच्चार गूँजता

* भक्तामर के संदर्भ में यह शब्द श्लोक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

है, दावानल शान्त हो जाते हैं (त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्)। प्रभु का नाम-जल उसे पूर्णतः बुझा देता है। मान पर, क्रोध पर, और माया पर अंकुश पा लेने के बाद लगभग तीन-चौथाई संग्राम जूझा जा सकता है; शेष एक चौथाई मैदान लोभ का है; किन्तु प्रायः हाथी निकल जाता है और पूँछ अटक जाती है। मान/मन का हाथी तो निकल गया; किन्तु लोभ की पूँछ रह गयी। ४१ वें श्लोक का रक्तेक्षण (लाल-लाल आँखों वाला) नाग, लोभ का प्रतीक है। फन उठाये इसने आता लोभ किसे मुआफ कर सकता है? इससे निबटना प्रायः मुश्किल ही होता है। बड़े-बड़े लोग लोभ के कर्दम में बुरी तरह फँसते देखे गये हैं। यदि जीवन में निर्लोभ वृत्ति विकसित हो जाए तो फिर शायद करने को कुछ रह नहीं जाता है। लोभ को परम्परा में पाप का बाप कहा गया है; इसीलिए मानतुंगसूरि ने इकतालीसवें श्लोक में लोभ का रूपक खड़ा किया है और कहा है कि भगवान् आदिनाथ की भक्ति मान, क्रोध, माया और लोभ की चौकड़ी का अन्त करने वाली है। इसके वशीभूत होते ही मोहनीय कर्म अंकुश-तले आ जाते हैं और व्यक्ति काफी ऊँचा उठ जाता है। इससे आगे के प्रतीक वेदनीय, जो अघाति कर्मों का सरगना है, से संबन्धित हैं।

४२ और ४३ वें श्लोक मनुष्य के भीतर अनुक्षण छिड़े महाभारत के दृश्यों से संबन्धित हैं। ये दोनों मिलकर जैन गीता की संरचना करते हैं। आत्मा और कर्म का युद्ध सनातन है। इन दो श्लोकों में यही संग्राम प्रतीक रूपेण चित्रित है। इन्द्रिय-समूह युद्धरत है। युद्ध घमासान है। हाथी-घोड़े, मान-मन चिंघाड़/हिनहिना रहे हैं; इस युद्धान्धकार पर विजय वही पा सकता है, जिसके पास भेदविज्ञान का ब्रह्मास्त्र है। ये दोनों श्लोक संग्राम के जीवन्त प्रतीक हैं। संग्राम समूहवाची शब्द है। ग्राम/संग्राम दोनों की व्युत्पत्तियों पर ध्यान दें। ग्राम समूह को कहें, संग्राम से विशिष्ट समूह का अर्थ लें। मानतुंगसूरि ने ४७ वें श्लोक में 'संग्राम' शब्द ही काम में लिया है। वे चाहते तो किसी अन्य शब्द को चुन सकते थे, किन्तु तब वे अपने प्रयोजन में हार जाते। इस विशिष्ट शब्द-संयोजन में उनकी विजय हुई है।

सागर संसार का प्रतीक है। उसे भी हम उसके पूर्ववर्ती श्लोकों की संगति और संदर्भ में समझने का प्रयत्न करें।

सारे शरीर में पेट का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सारे रोगों की शुरूआत वहीं से होती है। अच्छे चिकित्सक का ध्यान सबमें पहले पेट पर ही जाता है। जलोदर पेट का असाध्य रोग माना गया है। जिस तरह कायिक रोगों में उदर का उक्त रोग असाध्य है, वैसे ही आत्मविकृतियों में कर्म सबमें बड़ा शत्रु है। उदर पर काबू पाने के बाद किसी और पर अंकुश पाने की आवश्यकता जिस तरह नहीं रह जाती है, ठीक वैसे ही कर्म पर नियंत्रण पाने के उपरान्त फिर व्यक्ति निर्बन्ध/मुक्त हो जाता है/होने लगता है।

इस तरह ४६ वें श्लोक में मुक्ति को एक जीवन्त रूपक के रूप में संजो दिया गया है। जिन बन्धनों का वर्णन इस श्लोक में हुआ है, उन्हें किंचित् गहरे उतर कर समझने की आवश्यकता है। भक्ति का क्षेत्र – विशेषत: जिन भक्ति का क्षेत्र – इन सारे बन्धनों को हँसते-गाते खोल सकता है। श्रेष्ठ भक्ति भक्त को संसार से विभक्त कर देती है। भक्ति का मतलब ही है कि वह व्यक्ति को संसार से काटे और उसे आत्मा की जीवन्त सत्ता से जोड़े। इस तरह 'भक्तामर' के सारे प्रतीकों को समझने की कोशिश की जानी चाहिये।

ऐसा नहीं है कि 'भक्तामर स्तोत्र' के रचयिता आचार्य मानतुंग ने अपने इस अप्रतिम स्तोत्र में सिर्फ एक ही अर्थ निनादित किया है। वस्तुत: इनमें से नाना अर्थध्वनियाँ युगपत् सुनी जा सकती हैं।

३८ वें और ३९ वें श्लोकों में उस स्वैराचारी सामन्त का सांगोपांग वर्णन हुआ है जो धार/वाराणसी, भोज/हर्ष; कहीं का/कोई भी हो सकता है। इशारा है कि न दिनों राजा का अपना कोई विवेक नहीं होता था। वह अपने निर्णयों में जीहुजूरुओं पर निर्भर करता था। हाथी है, उन्मत्त है, भ्रमरावली ने उसके क्रोध को बढ़ा दिया है। यह मदोन्मत्त हाथी ही उन दिनों का राजा/सामन्त है और भौंरों की पंक्ति दरबारी हैं। दरबारी राजा को भड़काते, हाँ-में-हाँ मिलाते, और जनता पर क़हर ढाते थे। मानतुंगसूरि ने अपने इन श्लोकों में ऐसे सामन्तों का ही वर्णन किया है। ४६ वाँ श्लोक कैसी सजाएँ उन दिनों होती थीं, इसका जीवन्त चित्र है। मानतुंग ने इन श्लोकों में आपबीतियों की जो रामकथा कही है, वह प्रतीकात्मक होते हुए भी इतिहास में एकमेव है।

मानतुंग जिनकल्पी मुनि नहीं हैं, किन्तु जिनकल्पी-जैसे साधु तो हैं ही। वे अभीत हैं। भक्ति ने उनके सारे भय नष्ट कर दिये हैं। मानतुंग पर उपसर्ग है, किन्तु ध्यान में उन्होंने उसे नकार दिया है। ताले टूट गये हैं। बन्धन कट गये हैं। यह है भक्ति, अनन्य वीतरागा भक्ति। वे सिंह की तरह विचरण करते हैं, किसी के अधीन नहीं हैं; राजा का शासन लौकिकों पर हो सकता है, अलौकिकों पर शासन करने का उन्हें अधिकार इस देश में कभी नहीं रहा है। मानतुंगसूरि ने चुनौती झेल कर साधुओं के लिए उस युग में जो ज़मीन तैयार की थी, वह आज भी कायम है।

उस समय की राजनीति का चित्रण भी 'भक्तामर' के अन्तिम श्लोकों में दृष्टव्य है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी ३८ से ४७ तक के श्लोक विश्लेषणीय हैं। इनमें उन दिनों के व्यापार और दण्डविधान को संक्षेप में परिभाषित कर दिया गया है। बिन्दु में सिन्धु समेटा गया है। व्यापार का वर्णन भी हुआ है। समुद्र की यात्राएँ कितनी कठिन थीं, फिर भी भारतीय उन्हें संपन्न करते थे, इस तथ्य की

अभिव्यक्ति भी हुई है। युद्ध-चित्र भी प्रस्तुत हुए हैं। उन दिनों जो दार्शनिक बहसें थीं उनका समाहार भी इस स्तोत्र में हुआ है।

आचार्य मानतुंग न केवल एक महामनीषी कवि थे, अपितु भाषा पर भी उन्हें अपरिसीम अधिकार प्राप्त था। सहज/बोधगम्य संस्कृत का जैसा प्रयोग 'भक्तामर स्तोत्र' में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस एक स्तोत्र ने कइयों को संस्कृत सीखने पर विवश किया है। भक्तामर सुगेय है। उसका अपना निराला शब्द/नाद-सौंदर्य है। काव्य की दृष्टि से तो वह महत्त्वपूर्ण है ही, आत्मविद्या की दृष्टि से भी उसका काफी महत्त्व है। यदि अखण्ड पाठ के क्षणों में हमारा ध्यान स्तोत्र में अनुगुंजित अर्थ पर जाता है तो ही हम ऐसे पाठ को अखण्ड कह सकते हैं, अन्यथा उसे खण्डित ही मानिये। क्या हम कभी प्रयत्न करेंगे कि 'भक्तामर' की सतहें भेद कर उसकी तहों में छुपे परमार्थ को जानें और उससे कृतकृत्य हों ? □

(पृष्ठ १९२ का शेष)

३३. **धम्मो** (धम्म) १/१. **वत्थुसहावो** [(वत्थु)-(सहाव) १/१] **खमादिभावो** (खमा) + (आदि) + (भावो) [(खमा)-(आदि)-(भाव) १/१] **य** (अ) =भी **दसविहो** (दसविह) १/१ वि. **रयणतयं** [(रयण)-(तय) १/१)] **च** (अ)=भी. **जीवाणं** (जीव) ६/१. **रक्खणं** (रक्खणं) १/१.

३४. **खम्मामि** (खम्म) व १/१ सक. **सव्वजीवाणं**[1] [(सव्व)-(जीव) ६/२)] **सव्वे** (सव्व) १/२ सवि **जीवा** (जीव) १/२ **खमंतु** (खम) विधि ३/२ सक **मे** (अम्ह) २/१ स. **मित्ती** (मित्ति) १/१. **मे** (अम्ह) ६/१ स. **सव्वभूदेसु**[2] [(सव्व)- (भूद) ७/२)] **वेरं** (वेर) १/१ **मज्झं** (अम्ह) ६/१. **ण** (अ)= नहीं **केण** (क) ३/१ स. **वि** (अ)=भी.

३५. **जो** (ज) १/१ स. **चिंतेइ** (चिंत) व ३/१ सक. **ण**. (अ)=नहीं **वंकं** (वंक) २/१ वि. **कुणदि** (कुण) व ३/१ सक. **जंपदे** (जंप) व ३/१ सक **य** (अ)=और. **गोवदि** (गोव) व ३/१ सक. **णियदोसं** [(णिय) वि.-(दोस) २/१)] **अज्जव-धम्मो** [(अज्जव)-(धम्म) १/१)] **हवे** (हव) व ३/१ अक. **तस्स** (त) ६/१ स.

---

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)
2. आदरसूचक शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति होती है। यहाँ आदरसूचक शब्द 'मित्ति' है।

धर्मस्थल (कर्नाटक) में २५ जनवरी से ४ फरवरी १९८२ तक आयोजित बाहुबली मूर्ति प्रतिष्ठापना महोत्सव महामस्तकाभिषक के पुण्य-पुनीत अवसर पर जैनमठ श्रवणबेलगोल के धर्माभिनन्दन

"श्रवणबेलगोल में गोम्मटेश्वर की
मंगलमूर्ति खड़ी है
शिव-सायुज्य की अर्घ्यस्वरूपा
जिसके अवलोकन-मात्र से
असीम शान्ति का अनुभव होता है।

कार्कल/वेणूर में
(अब धर्मस्थल में भी)
गोम्मटजिन के दिव्य दर्शन सुलभ हैं।
मूर्ति-ध्यान से दिव्य चारित्र्य की अलौकिक स्फूर्ति
आँखों के सामने दीपित है, ज्योतित है।

भरतेश की सुख-सम्पत्ति/धन-वैभव
और बाहुबली का वैराग्य !!!
यदि धरती का मनुज समझेगा
तो पायेगा सुख – यहाँ भी, वहाँ भी।

–एक कन्नड़ लोकगीतांश

तीर्थंकर के तीन मननीय विशेषांक

१ णमोकार मन्त्र विशेषांक – १ ; नवम्बर, दिसम्बर १९८०
पृष्ठ १६० मूल्य– सात रुपये

२ णमोकार मन्त्र विशेषांक – २ ; जनवरी १९८१
पृष्ठ १६० मूल्य– सात रुपये

दोनों मँगाने पर मूल्य दस रुपये; डाक-खर्च पृथक्

३ भक्तामर स्तोत्र विशेषांक : जनवरी १९८२
पृष्ठ २२४ मूल्य– इक्कीस रुपये

तीनों अंक एक साथ मँगाने पर मूल्य तीस रुपये;
डाक-खर्च नहीं

प्राप्ति-स्थान–

प्रबन्ध संपादक 'तीर्थंकर', ६५, पत्रकार कालोनी,
कनाड़िया मार्ग, इन्दौर ४५२००१, मध्यप्रदेश

With best compliments from

Shanti Roadways

शान्ति रोडवेज

Transport Contractors, Truck Fleet Owners
&
Railway Freight Forwarders

Niranjanpur, Dewas Naka, INDORE (M. P.)
Phones : 39323, 30372, 5562

Head Office:

5, NAWAB LANE, CALCUTTA-700 070
Phones : Office : 339024, 332474, 335535; Resi. 339016

Branches:

Jaipur: Kota: Bhilwara: Kanpur : Delhi: Bombay:
Ahmedabad: Bareilly: Bhadravati: Madras: Hyderabad:
Bangalore: Vijayawada: Gauhati

मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा विदर्भ-खानदेश की जनता के लिए
पिछले ३५ बरसों से, स्वस्थ, उत्तम और रुचिकर मनोरंजन
और जन-रंजन की फिल्म-वितरक संस्था

दि कल्याण पिक्चर्स प्रा. लि.

अमरावती (महाराष्ट्र)

के

विनीत अभिवादन और शुभकामनाएँ

(जवाहरलाल मूणोत, डायरेक्टर)

नव वर्ष का यह संदेश : हरा भरा हो मध्यप्रदेश

* पर्यावरण और प्राकृतिक संतुलन कायम रखने के लिये वन संवर्धन और वनों की सुरक्षा।
* गत वर्ष ६४,००० हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में पौधे लगाये गये।
* सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत ६३४५० हेक्टेयर भूमि में वन लगाने की योजना।
* चम्बल के भू-क्षरित बीहड़ों का वनीकरण करने के लिये हवाई जहाज से बीजों का छिड़काव।
* पंचायतों, शिक्षण संस्थाओं, स्वायत्तशासी और स्वयंसेवी संस्थाओं को खाली पड़ी जमीन पर वन लगाने के लिये प्रोत्साहन।
* प्रदेश में सब से अधिक ८ राष्ट्रीय उद्यान और २४ अभ्यारण्य स्थापित।
* धार, रीवा, रतलाम, भोपाल और ग्वालियर में वनों की कटाई बिल्कुल बन्द।

भूमि संरक्षण और बाढ़ की रोकथाम तथा स्वच्छ पर्यावरण के लिये वन जरूरी

सू.प्र.सं./300/J/82

जयको जीलर

अलार्म टाइमपीस एवं दीवार-घड़ियाँ

भारत में जर्मन शिल्प के
सहयोग से सर्वप्रथम निर्मित

निर्माता :

जैना टाइम इण्डस्ट्रीज प्रा. लिमिटेड

7/32, दरियागंज, दिल्ली–6

तार : "जैनाटाइम" फोन : 271483

Gram : 'BHARAT' BIRLAGRAM Phone : 26, 35 & 71 NAGDA

With best compliments from :

BHARAT COMMERCE & INDUSTRIES

PO. BIRLAGRAM : NAGDA

MANUFACTURERS OF :

Quality 'NAGDA' Staple, Synthetic and Fancy Yarns
in the wide range of counts in Grey and Dyed

Regd. & Head Office :

'Surya Kiran' 5th floor, 19 Kasturba Gandhi Marg,
NEW DELHI 110 001

Bharat Radiators For Cool Confidence

Quality and Ruggedness has put us as original equipment on most leading vehicles manufactured in India.

FOLLOWING RADIATORS ARE READILY AVAILABLE

Cars & Jeeps:

Ambassador
Mahindra Jeeps
Premier Padmini

Trucks:

Bajaj Matador
Dodge & Fargo
Hindustan B/Ford
Mahindra F. C.
Leyland
Tata

Tractors:

Escort 335 & 345
Foad-3000 & 3600
H M T Zetor
Massey Fergusson
PTL Harvestor Combine
Swaraj (PTL)

Bharat Radiators Pvt. Ltd.

Regd. Off. & Factory:
Vidyanagari Marg,
Santacruz (East),
BOMBAY-400 098.

Branch Office:
D-60, Ind. Estate,
S. A. S. Nagar,
MOHALI- 160 055.
(DIST: ROPAR)

Head Office:
81, Bajaj Bhavan,
Nariman Point,
BOMBAY-400 021

Tel. Nos: 53 29 65
: 54 34 57
: 53 08 57

Tel. Nos: 22 14 97
: 23 03 71
: 23 00 85
TELEX : 011-4661

Gram : PRESSWORK
Grams: RADIATOR
Grams : SMOOTHRUN

With best Compliments from :-

P. S. JAIN MOTORS

GRAND TRUNK ROAD

JULLUNDUR CITY

□

Authorised Dealers for :

TATA DIESEL VEHICLES AND SPARE PARTS

FOR PUNJAB

Grams : PASJAN

Tel. No. 73530
75972
2884
TLX No. 2781-ND

□

BRANCHES :

1. 7A, Rajpur Road,
   DELHI—110054
   Tel. No. 227410/223720
2. Gurdaspur Road,
   PATHANKOT
   Tel. No. 347
3. Roshan Road,
   HOSHIARPUR
4. Nagrota Bagwan,
   Distt. KANGRA

इन्दौर डी. एन./६२ म. प्र. लायसेन्स नं. एल. ६२
जनवरी १९८२ (पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त)

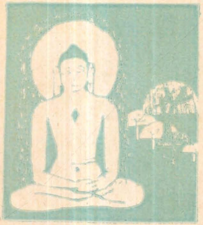

मोर/चन्दन/साँप

- जिस तरह मोर के आते ही चन्दन के बिरवे से लिपटे साँप श्लथ (ढीले) पड़ जाते हैं, उसी तरह आपका ध्यान आते ही क्षण-भर में बड़े-बड़े कर्म-बन्धन भी शिथिल हो जाते हैं।

- जिस तरह तेजस्वी गुवाल (गो-स्वामी) के दीखते ही चोर चुराई हुई गायों को छोड़ कर भाग खड़े होते हैं; उसी तरह आपका ध्यान आते ही अनेक भयंकर उपद्रव/संकट/विपदाएँ मनुष्यों को छोड़कर भाग जाती हैं।

- आपके दर्शन करने की शुभकामना मात्र से पुण्य-रूपी वृक्ष लहलहा उठता है; आपके सान्निध्य से वह कुसुमित हो उठता है, और साक्षात् दर्शन प्राप्त होते ही उसमें फल लग जाते हैं।

- जैसे पृथ्वी में गढ़ा हुआ धन कुदाली के बिना प्राप्त नहीं होता, वैसे ही कर्म-रूपी आवरण में छुपा आत्मज्ञान आपके स्तोत्रों के बिना प्राप्त नहीं होता।

- जिस तरह सूर्य की प्रखर किरणों द्वारा रात्रि का निबिड़ अन्धकार जड़मूल से नष्ट हो जाता है, उसी तरह आपके स्तोत्र से साधकों के परम्परित अज्ञान-अन्धकार नष्ट हो जाते हैं।

- जिस प्रकार अशुद्ध स्वर्ण तेज आँच से अपने अशुद्ध व्यक्तित्व को छोड़ मूल व्यक्तित्व में लौट आता है, वैसे ही आपके ध्यान/स्मरण से साधक भी शरीर के प्रति ममत्व-रहित हो कर परमात्म-दशा को पहुँच जाता है।

- इस लोक में कुलीन पुरुष प्रायः सुलभ हैं, शास्त्रों का परिशीलन करने वाले भी सुलभ हैं, तथा उत्तम शील वाले लोग भी सुलभ हैं, किन्तु तत्त्व के मर्म को जानने वाले लोग दुर्लभ हैं।

[श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राजस्थान) द्वारा प्रचारित]